MATS UNIVERSITY

NAAC GRADE A+ ACCREDITED UNIVERSITY

MATS CENTRE FOR OPEN & DISTANCE EDUCATION

भारतीय ज्ञान प्रणाली दर्शन

बैचलर ऑफ़ आर्ट्स (बी.ए.)

चतुर्थ सेमेस्टर

SELF LEARNING MATERIAL

COURSE DEVELOPMENT EXPERT COMMITTEE

1- Prof.(Dr.) Reshma Ansari, HOD Hindi Department , MATS University Raipur Chhattisgarh
2- Dr. Sudhir Sharma , Subject Expert ,HOD Hindi Department, Kalyan College, Bhilai
3- Dr. Kamlesh Gogia Associate Professor, MATS University ,Raipur, Chhattisgarh
4- Dr. Sunita Shashikant Tiwari Associate Professor, MATS University Raipur Chhattisgarh
5- Dr. Rajesh Kumar Dubey , Subject Expert, Principal , Shahid Rajeev Pandey Government College ,Bhatagaon , Raipur ,Chhattisgarh

COURSE COORDINATOR

Surbhi Singh, Asst. Prof. Hindi Department , MATS University Raipur Chhattisgarh

COURSE /BLOCK PREPARATION

Prof.(Dr.) Reshma Ansari, HOD Hindi Department , MATS University Raipur Chhattisgarh

March, 2025

ISBN-978-93-49916-44-9

@MATS Centre for Distance and Online Education, MATS University, Village- Gullu, Aarang, Raipur-(Chhattisgarh)

All rights reserved. No part of this work may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from MATS University, Village- Gullu, Aarang, Raipur-(Chhattisgarh)

Printed & Published on behalf of MATS University, Village-Gullu, Aarang, Raipur by Mr. Meghanadhudu Katabathuni, Facilities & Operations, MATS University, Raipur (C.G.)

Disclaimer-Publisher of this printing material is not responsible for any error or dispute from contents of this course material, this is completely depends on AUTHOR'S MANUSCRIPT.
Printed at: The Digital Press, Krishna Complex, Raipur-492001(Chhattisgarh)

अनुक्रमणिका

माड्यूल	विषय	
माड्यूल 1	भारतीय ज्ञान परंपरा का परिचय	
	इकाई-1 भारतीय ज्ञान प्रणाली की अवधारणा	1-6
	इकाई 2: वेद उपवेद, वेदांग, दर्शन पुराण आदि का परिचय	7-18
	इकाई-3 ज्ञान के स्त्रोत: श्रुति, स्मृति, तर्क और अनुभव	19-23
	इकाई-4 भारतीय और पाश्चात्य ज्ञान प्रणाली में अंतर	24-33
माड्यूल 2	इकाई-5 वेदों की संरचना: ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद	34-44
	इकाई-6 वेदों का साहित्यिक और दार्शनिक पक्ष	*45-51*
	इकाई-7 वेदांग: शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्योतिष	52-61
माड्यूल 3	इकाई-8 : वेदों में सामाजिक और नैतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति	62-72
	इकाई-9 उपनिषद और दर्शन, मोक्ष की अवधारणा, षट्दर्शन, सांख्य और योग दर्शन	73-82
	इकाई-10 रामायण और महाभारत में दर्शन और मूल्य	83-88
माड्यूल 4	इकाई-11 पुराणों का ज्ञान, लोकनृत्य और दर्शन	89.101
	इकाई-12 : नीति ग्रंथ, चाणक्य नीति, हितोपदेश, पंचतंत्र	102-108
	इकाई-13 स्त्री दृष्टिकोण और सामाजिक संरचना	109-119
माड्यूल 5	इकाई-14 भक्ति आंदोलन, ज्ञान मार्ग, प्रेममार्ग, और सूफीवाद	120-129
	इकाई-15 तुलसीदास, कबीर, मीराबाई का दर्शन और भक्ति	130-151

Acknowledgement

The Material (Pictures and images) we have used is purely for educational purpose. Every effort has been made to trace the copyright holders of material reproduced in this book. Sould any infringement have occurred, the publishers and editors apologize and will be pleased to make the necessary corrections in future of this book.

मॉड्यूल 1

भारतीय ज्ञान परंपरा का परिचय

उद्देश्य

- भारतीय ज्ञान प्रणाली की अवधारणा को समझना और उसकी विशेषताओं को स्पष्ट करना।
- वेद, उपवेद, वेदांग, दर्शन और पुराणों की संरचना एवं महत्व का ज्ञान प्राप्त करना।
- श्रुति, स्मृति, तर्क और अनुभव जैसे ज्ञान के स्त्रोतों का विश्लेषण करना।
- भारतीय और पाश्चात्य ज्ञान परंपराओं के बीच मूलभूत अंतर को समझना।
- भारतीय दर्शन के विकासक्रम और सांस्कृतिक संदर्भ को पहचानना।
- पारंपरिक ज्ञान को आधुनिक संदर्भों से जोड़ने की क्षमता विकसित करना।
- भारतीय ज्ञान परंपरा में अंतर्निहित नैतिक और सामाजिक मूल्यों की पहचान करना।
- भारतीय ज्ञान की विविधता को समग्र दृष्टिकोण से समझना।

इकाई 1: भारतीय ज्ञान प्रणाली की अवधारणा

भारतीय ज्ञान प्रणाली की अवधारणा

भारतीय ज्ञान प्रणाली भारत के प्राचीन समय से चली आ रही विचार और ज्ञान की परंपरा है। यह एक ऐसी संरचना है जिसने सदियों से भारतीय समाज, संस्कृति और इसके लोगों के जीवन को प्रभावित किया है। भारतीय ज्ञान प्रणाली में वह समग्र दृष्टिकोण है जो जीवन के सभी पहलुओं को एकीकृत करता है - धर्म, दर्शन, विज्ञान, कला, स्वास्थ्य, राजनीति, अर्थशास्त्र और समाज। इस प्रणाली की विशेषता यह है कि यह ज्ञान को एक समग्र रूप में देखती है और यह मानती है कि सत्य के विभिन्न आयाम एक दूसरे के पूरक हैं, विरोधी नहीं। इस प्रणाली का निर्माण सदियों के अनुभव, चिंतन, परीक्षण और परिष्करण से हुआ है। भारतीय ज्ञान प्रणाली की जड़ें वैदिक काल से शुरू होती हैं जब ऋषियों और मुनियों ने प्रकृति और मानव जीवन के गहन अध्ययन से ज्ञान का भंडार एकत्रित किया था। वेद, उपनिषद, पुराण, रामायण, महाभारत जैसे ग्रंथ इस ज्ञान प्रणाली के आधार हैं। इन ग्रंथों में न केवल आध्यात्मिक ज्ञान है, बल्कि विज्ञान, चिकित्सा, गणित, ज्योतिष, वास्तुशास्त्र, संगीत, नृत्य और अन्य कई विषयों पर भी गहन जानकारी मिलती है। बौद्ध और जैन परंपराओं ने भी भारतीय ज्ञान प्रणाली को समृद्ध किया है। इन परंपराओं ने अहिंसा, करुणा, मैत्री

और अनेकांतवाद जैसे मूल्यों को प्रतिष्ठित किया जो आज भी प्रासंगिक हैं। भारतीय ज्ञान प्रणाली का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यह मानव और प्रकृति के बीच एक गहरा संबंध मानती है। यह प्रणाली प्रकृति को एक जीवित इकाई के रूप में देखती है और उसके साथ सामंजस्य स्थापित करने पर बल देती है। इस दृष्टिकोण से, पर्यावरण संरक्षण और प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित उपयोग भारतीय ज्ञान प्रणाली का अभिन्न अंग है। आयुर्वेद, जो भारतीय चिकित्सा विज्ञान है, इसका एक उदाहरण है जहां औषधियों के लिए प्राकृतिक स्रोतों का उपयोग किया जाता है और शरीर और मन के संतुलन पर जोर दिया जाता है।

भारतीय ज्ञान प्रणाली में शिक्षा का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्राचीन भारत में गुरुकुल प्रणाली थी जहां छात्र गुरु के संरक्षण में रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे। यह शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित नहीं थी बल्कि व्यावहारिक ज्ञान, नैतिक मूल्य और आत्मज्ञान भी इसमें शामिल था। तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालय इस शिक्षा प्रणाली के उदाहरण हैं जहां दुनिया भर के छात्र विभिन्न विषयों का अध्ययन करने आते थे। भारतीय ज्ञान प्रणाली में विज्ञान और तकनीकी का विकास भी उल्लेखनीय रहा है। आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य जैसे गणितज्ञों ने अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति, खगोलशास्त्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। शून्य की अवधारणा और दशमलव प्रणाली भारत की देन है जिसने विश्व गणित को प्रभावित किया। चरक, सुश्रुत जैसे चिकित्सकों ने आयुर्वेद और शल्य चिकित्सा में अभूतपूर्व कार्य किया। धातु विज्ञान, रसायन विज्ञान, भौतिकी और इंजीनियरिंग में भी भारतीय ज्ञान प्रणाली का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। भारतीय ज्ञान प्रणाली में दर्शन का विशेष स्थान है। षड्दर्शन - न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदांत - भारतीय दार्शनिक परंपरा के मुख्य स्तंभ हैं। इन दर्शनों ने ज्ञान के स्वरूप, सत्य की प्रकृति, जीवन के उद्देश्य और मुक्ति के मार्ग पर गहन चिंतन किया है। भारतीय दर्शन का एक विशिष्ट पहलू यह है कि यह सिद्धांत और व्यवहार, ज्ञान और कर्म के बीच संतुलन पर बल देता है। गीता का कर्मयोग इसका उदाहरण है जो कर्म के महत्व पर जोर देता है लेकिन फल की आसक्ति से मुक्त होने की शिक्षा देता है।

भारतीय ज्ञान प्रणाली में कला, संगीत, नृत्य, साहित्य और वास्तुकला का भी विशेष स्थान है। ये कलाएँ केवल मनोरंजन के माध्यम नहीं हैं बल्कि आध्यात्मिक अनुभूति और ज्ञान प्राप्ति के साधन भी हैं। नाट्यशास्त्र, रस सिद्धांत, अलंकार शास्त्र जैसे ग्रंथों में कला के सिद्धांतों का विस्तृत वर्णन मिलता है। भारतीय संगीत में राग और ताल की अवधारणा, नृत्य में मुद्राओं और भावों का महत्व, साहित्य में रस और छंद की महत्ता और वास्तुकला में स्थान और ऊर्जा के संतुलन पर जोर दिया गया है। भारतीय ज्ञान प्रणाली में व्यक्ति और समाज के बीच संबंध को महत्वपूर्ण माना गया है। वर्णाश्रम धर्म, पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम,

मोक्ष) की अवधारणा इसके उदाहरण हैं। ये सिद्धांत व्यक्ति के कर्तव्यों और अधिकारों, सामाजिक संरचना और व्यवस्था को परिभाषित करते हैं। हालांकि कालांतर में इनके कुछ पहलुओं का दुरुपयोग भी हुआ, लेकिन मूल रूप से ये समाज के संतुलित विकास के लिए थे। भारतीय ज्ञान प्रणाली का एक अन्य महत्वपूर्ण आयाम अर्थशास्त्र और राजनीति है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र, शुक्रनीति, विदुर नीति जैसे ग्रंथों में राज्य संचालन, अर्थव्यवस्था, विदेश नीति, युद्ध और शांति के सिद्धांतों का विस्तृत वर्णन मिलता है। इन सिद्धांतों में राजा (शासक) के अधिकारों के साथ-साथ उसके कर्तव्यों और जवाबदेही पर भी जोर दिया गया है। लोककल्याण और सुशासन इन सिद्धांतों का मूल आधार है। भारतीय ज्ञान प्रणाली के विकास में विभिन्न धर्मों और संप्रदायों का योगदान रहा है। हिंदू, बौद्ध, जैन, सिख और इस्लामिक परंपराओं ने अपने-अपने तरीके से इस प्रणाली को समृद्ध किया है। भक्ति आंदोलन, सूफी परंपरा, सिख गुरुओं के उपदेश इसके उदाहरण हैं जिन्होंने धार्मिक सहिष्णुता, सामाजिक समानता और आध्यात्मिक एकता का संदेश दिया। भारतीय ज्ञान प्रणाली का अंतरराष्ट्रीय प्रभाव भी उल्लेखनीय रहा है। प्राचीन काल से ही भारतीय ज्ञान दक्षिण पूर्व एशिया, मध्य एशिया, चीन, जापान, कोरिया और पश्चिमी देशों तक पहुंचा। बौद्ध धर्म के माध्यम से भारतीय दर्शन, कला, वास्तुकला और चिकित्सा विज्ञान का प्रसार हुआ। अरबी और फारसी अनुवादों के माध्यम से भारतीय गणित, खगोलशास्त्र और चिकित्सा विज्ञान यूरोप तक पहुंचा। आधुनिक युग में योग, ध्यान, आयुर्वेद का वैश्विक प्रसार इस प्रभाव का प्रमाण है।

औपनिवेशिक काल में भारतीय ज्ञान प्रणाली को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा। पश्चिमी शिक्षा और विचारधारा के प्रभाव से परंपरागत ज्ञान प्रणाली उपेक्षित हुई। लेकिन स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान स्वदेशी ज्ञान और संस्कृति के पुनरुत्थान का प्रयास हुआ। गांधी, टैगोर, विवेकानंद, श्री अरबिंदो जैसे विचारकों ने भारतीय ज्ञान प्रणाली के महत्व को पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया। स्वतंत्रता के बाद भारत ने आधुनिक और परंपरागत ज्ञान के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया। विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में प्रगति के साथ-साथ भारतीय ज्ञान परंपरा के संरक्षण और प्रसार पर भी ध्यान दिया गया। आयुष मंत्रालय की स्थापना, योग को अंतरराष्ट्रीय मान्यता दिलाने का प्रयास, भारतीय भाषाओं और साहित्य के संरक्षण के प्रयास इसके उदाहरण हैं। वर्तमान युग में भारतीय ज्ञान प्रणाली अनेक चुनौतियों और अवसरों का सामना कर रही है। वैश्वीकरण और डिजिटलीकरण के युग में परंपरागत ज्ञान के संरक्षण और प्रसार की चुनौतियां हैं। दूसरी ओर, आधुनिक विज्ञान और तकनीकी के साथ भारतीय ज्ञान परंपरा के समन्वय के अवसर भी हैं। योग, आयुर्वेद, ध्यान जैसी प्राचीन प्रथाओं का वैज्ञानिक अध्ययन और उनके लाभों की पुष्टि

इसका उदाहरण है। भारतीय ज्ञान प्रणाली की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसकी समावेशीता है। यह विविध विचारधाराओं, दृष्टिकोणों और अनुभवों को स्वीकार करती है। वेदांत का "एकं सद विप्रा बहुधा वदन्ति" (सत्य एक है, विद्वान उसे अलग-अलग नामों से पुकारते हैं) यह दर्शाता है कि भारतीय परंपरा में विविधता और एकता का गहरा संबंध है। यह समावेशीता आज के विभाजित और संघर्षरत विश्व के लिए एक महत्वपूर्ण संदेश है। भारतीय ज्ञान प्रणाली में सत्य की खोज के विभिन्न मार्ग हैं। ज्ञान मार्ग (ज्ञान के माध्यम से), भक्ति मार्ग (भक्ति के माध्यम से), कर्म मार्ग (कर्म के माध्यम से) और राज मार्ग (योग के माध्यम से) ये विभिन्न मार्ग हैं जो व्यक्ति की प्रकृति और क्षमता के अनुसार चुने जा सकते हैं। यह विविधता यह दर्शाती है कि भारतीय परंपरा में एक ही आकार का समाधान सभी के लिए उपयुक्त नहीं माना जाता। भारतीय ज्ञान प्रणाली में प्रकृति और पर्यावरण के प्रति सम्मान का भाव है। प्रकृति को माता के रूप में पूजने की परंपरा, वृक्षों, नदियों, पर्वतों की पूजा, पशु-पक्षियों के प्रति करुणा का भाव यह दर्शाता है कि भारतीय परंपरा में पर्यावरण संरक्षण एक नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य है। आज के पर्यावरणीय संकट के युग में यह दृष्टिकोण विशेष महत्व रखता है।

भारतीय ज्ञान प्रणाली में स्वास्थ्य और कल्याण का एक समग्र दृष्टिकोण है। आयुर्वेद, योग, ध्यान और प्राणायाम आदि प्राचीन पद्धतियां शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य के बीच संतुलन पर जोर देती हैं। ये पद्धतियां न केवल रोग के उपचार पर बल्कि रोग की रोकथाम और समग्र स्वास्थ्य पर भी ध्यान केंद्रित करती हैं। आज की स्वास्थ्य सेवा प्रणालियों में इन दृष्टिकोणों को शामिल करने का प्रयास हो रहा है। भारतीय ज्ञान प्रणाली में भाषा और संचार का महत्वपूर्ण स्थान है। संस्कृत, जो एक प्राचीन भाषा है, न केवल साहित्य और धर्म की भाषा रही है बल्कि विज्ञान, गणित, दर्शन और अन्य विषयों के लिए भी एक शक्तिशाली माध्यम रही है। पाणिनि का अष्टाध्यायी, जो संस्कृत व्याकरण का ग्रंथ है, विश्व का पहला औपचारिक व्याकरण माना जाता है। यह अपनी संरचनात्मक शुद्धता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के लिए जाना जाता है। भारतीय ज्ञान प्रणाली में मनोविज्ञान और आत्मज्ञान का गहरा अध्ययन मिलता है। योग दर्शन, वेदांत, बौद्ध दर्शन में मन की प्रकृति, चेतना के स्तर, मानसिक प्रक्रियाओं का विस्तृत विश्लेषण मिलता है। ये सिद्धांत न केवल मानसिक स्वास्थ्य बल्कि आत्मज्ञान और आध्यात्मिक विकास के लिए भी महत्वपूर्ण हैं। आधुनिक मनोविज्ञान और न्यूरोसाइंस के अध्ययनों ने इन प्राचीन सिद्धांतों की वैज्ञानिक वैधता को पुष्ट किया है। भारतीय ज्ञान प्रणाली में नैतिक मूल्यों और आचार संहिता का विशेष महत्व है। यम-नियम (योग के अनुसार), पंचशील (बौद्ध धर्म के अनुसार), महाव्रत (जैन धर्म के अनुसार) ये सभी नैतिक

आचरण के सिद्धांत हैं जो व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), अपरिग्रह (संग्रह न करना) जैसे मूल्यों पर बल देते हैं। ये मूल्य आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने प्राचीन काल में थे। भारतीय ज्ञान प्रणाली में अध्यात्म और विज्ञान के बीच कोई विरोध नहीं माना जाता। प्राचीन ऋषियों ने प्रकृति के नियमों का अध्ययन करते हुए आध्यात्मिक सत्यों की खोज की। न्याय दर्शन में प्रमाण मीमांसा (ज्ञान प्राप्ति के साधनों का अध्ययन), वैशेषिक दर्शन में पदार्थ विज्ञान, सांख्य में प्रकृति और पुरुष का विश्लेषण, ये सभी वैज्ञानिक दृष्टिकोण के उदाहरण हैं। आधुनिक विज्ञान और भारतीय दर्शन के बीच संवाद से नए ज्ञान के क्षितिज खुल सकते हैं। भारतीय ज्ञान प्रणाली की एक और विशेषता इसकी लचीलापन और अनुकूलन क्षमता है। सदियों से यह प्रणाली नए विचारों, प्रभावों और चुनौतियों के अनुरूप स्वयं को ढालती रही है। विभिन्न काल खंडों में विभिन्न विचारकों और सुधारकों ने इस प्रणाली को पुनर्व्याख्यायित और पुनर्जीवित किया है। यह लचीलापन इस प्रणाली की शक्ति है जो इसे आज भी प्रासंगिक बनाए रखता है।

भारतीय ज्ञान प्रणाली में शिक्षा का उद्देश्य केवल जानकारी या कौशल प्रदान करना नहीं बल्कि व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना है। "सा विद्या या विमुक्तये" (वह ज्ञान है जो मुक्ति देता है) यह वाक्य इस दर्शन को व्यक्त करता है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति न केवल जीविकोपार्जन के योग्य बनता है बल्कि एक बेहतर इंसान और नागरिक भी बनता है। चरित्र निर्माण, नैतिक मूल्य, सामाजिक जागरूकता और आत्मज्ञान शिक्षा के अभिन्न अंग माने जाते हैं। भारतीय ज्ञान प्रणाली में कला और सौंदर्य बोध का विशेष स्थान है। कला को केवल मनोरंजन का साधन नहीं बल्कि सत्य की अभिव्यक्ति और आध्यात्मिक अनुभूति का माध्यम माना जाता है। "सत्यम शिवम सुंदरम" (सत्य, कल्याण और सौंदर्य) इस त्रिविध आदर्श में सौंदर्य का महत्व उजागर होता है। भारतीय कला, संगीत, नृत्य, वास्तुकला, साहित्य में इस दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति मिलती है। भारतीय ज्ञान प्रणाली में व्यक्ति और समष्टि के बीच संबंध को गहराई से समझा गया है। "वसुधैव कुटुम्बकम" (पूरी धरती एक परिवार है), "सर्वे भवन्तु सुखिनः" (सभी सुखी हों) जैसे सिद्धांत इस समझ को व्यक्त करते हैं। व्यक्ति का कल्याण समाज के कल्याण से जुड़ा है और समाज का कल्याण प्रकृति और विश्व के कल्याण से। यह समग्र दृष्टिकोण आज के विभाजित और संघर्षरत विश्व के लिए एक महत्वपूर्ण संदेश है। भारतीय ज्ञान प्रणाली में स्त्री का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। वैदिक काल में गार्गी, मैत्रेयी जैसी विदुषी महिलाओं का उल्लेख मिलता है जो दार्शनिक चर्चाओं में सक्रिय भागीदारी करती थीं। देवी के रूप में शक्ति, सरस्वती, लक्ष्मी की पूजा भारतीय संस्कृति में स्त्री शक्ति के सम्मान का प्रतीक है। हालांकि

कालांतर में पितृसत्तात्मक प्रभावों से स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आई, लेकिन आधुनिक काल में अनेक सुधारकों ने स्त्री अधिकारों के लिए भारतीय परंपरा के इन प्रगतिशील पहलुओं का आह्वान किया। भारतीय ज्ञान प्रणाली में वैज्ञानिक अन्वेषण और तर्क का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। चार्वाक दर्शन जैसी भौतिकवादी और तर्कवादी परंपराएं, बौद्ध और जैन दर्शन में तर्क और अनुभव पर जोर, आयुर्वेद और धातु विज्ञान जैसे क्षेत्रों में प्रयोगात्मक विधियों का उपयोग, यह सब दर्शाता है कि भारतीय परंपरा में वैज्ञानिक सोच का गहरा आधार था। आज के युग में विज्ञान और अध्यात्म के बीच संवाद से समग्र विश्व दृष्टि का निर्माण हो सकता है।

इकाई 2: वेद उपवेद, वेदांग, दर्शन पुराण आदि का परिचय

भारतीय ज्ञान परंपरा का इतिहास अत्यंत प्राचीन और समृद्ध है। यह सहस्राब्दियों से मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं को समझने, उसे आध्यात्मिक और भौतिक दोनों स्तरों पर विकसित करने का माध्यम रही है। इस अध्याय में हम भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल स्तंभों - वेद, उपवेद, वेदांग, दर्शनशास्त्र, पुराण और अन्य शास्त्रों का परिचय प्राप्त करेंगे। यह ग्रंथ मात्र सूचनाओं का संकलन नहीं, बल्कि उस जीवन दृष्टि का प्रतिबिंब हैं जिसने भारतीय संस्कृति और विचारधारा को हजारों वर्षों तक प्रभावित किया है। भारतीय ज्ञान परंपरा की विशेषता यह है कि इसमें अध्यात्म और भौतिक विज्ञान, कला और व्यवहार, दर्शन और लोक परंपरा का अद्‌भुत समन्वय मिलता है। वेद इस परंपरा के मूल स्रोत हैं, जिनसे अनेक धाराएँ निकलकर विभिन्न शास्त्रों के रूप में विकसित हुई हैं। इस अध्याय में हम इन्हीं धाराओं का विस्तृत अध्ययन करेंगे, जिससे भारतीय ज्ञान परंपरा की व्यापकता और गहराई को समझ सकें।

वेद: ज्ञान के मूल स्रोत

वेद शब्द संस्कृत के 'विद्' धातु से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है - जानना या ज्ञान प्राप्त करना। इस प्रकार वेद का शाब्दिक अर्थ होता है - ज्ञान का भंडार। भारतीय संस्कृति और दर्शन में वेदों का स्थान सर्वोपरि है, इन्हें सनातन धर्म की आधारशिला माना जाता है। वैदिक साहित्य विश्व का प्राचीनतम साहित्य है, जिसकी रचना लगभग 5000-6000 वर्ष पूर्व मानी जाती है। भारतीय परंपरा में वेदों को 'अपौरुषेय' कहा गया है, अर्थात इनकी रचना किसी मनुष्य द्वारा नहीं, बल्कि ब्रह्म-शक्ति द्वारा की गई है और ऋषियों ने अपनी तपस्या और साधना के माध्यम से इन्हें 'देखा' या 'साक्षात्कार' किया। इसलिए ऋषियों को 'मंत्रद्रष्टा' कहा जाता है, न कि 'मंत्रकर्ता'। वेदों को 'श्रुति' भी कहा जाता है, क्योंकि प्राचीन काल में इन्हें गुरु-शिष्य परंपरा में मौखिक रूप

से सुनकर याद किया जाता था। यह परंपरा हजारों वर्षों तक बिना किसी लिखित माध्यम के चली आई, जो वैदिक शिक्षा पद्धति की अनूठी विशेषता है।

वेद चार हैं - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। प्रत्येक वेद के चार भाग हैं - संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद। संहिताएँ मूल मंत्रों का संग्रह हैं, जिनमें विभिन्न देवताओं की स्तुति, प्रार्थनाएँ और यज्ञ विधियाँ वर्णित हैं। ब्राह्मण ग्रंथों में यज्ञ की प्रक्रियाओं, अनुष्ठानों और उनके महत्व का विस्तृत वर्णन है। आरण्यक वन में रहकर किए जाने वाले गहन अध्ययन और साधना से संबंधित हैं, इनमें यज्ञों के आध्यात्मिक और दार्शनिक पहलुओं पर विचार किया गया है। उपनिषद वेदों का सार्वधिक गहन और दार्शनिक भाग हैं, जिनमें ब्रह्म, आत्मा, मोक्ष, जीवन, मृत्यु जैसे गहन विषयों पर चिंतन-मनन किया गया है। उपनिषदों को 'वेदांत' भी कहा जाता है, अर्थात वेदों का अंतिम और चरम लक्ष्य। वेदों का अध्ययन भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन, विज्ञान और समाज व्यवस्था को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। ये प्राचीन ग्रंथ केवल धार्मिक महत्व के ही नहीं, बल्कि वैज्ञानिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी अत्यंत मूल्यवान हैं।

ऋग्वेद

ऋग्वेद वैदिक साहित्य का प्राचीनतम और सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ है। 'ऋच्' का अर्थ है स्तुति या प्रार्थना, इसलिए ऋग्वेद का अर्थ होता है - स्तुति या प्रार्थना का ज्ञान। ऋग्वेद में कुल 10 मंडल, 1028 सूक्त और लगभग 10,552 मंत्र हैं। इनकी रचना विभिन्न ऋषि परिवारों द्वारा की गई है। दूसरे से सातवें मंडल को 'परिवार मंडल' या 'ऋषि मंडल' कहा जाता है, क्योंकि इनकी रचना विशिष्ट ऋषि परिवारों द्वारा की गई थी। जैसे - दूसरा मंडल गृत्समद ऋषि परिवार का, तीसरा विश्वामित्र का, चौथा वामदेव का, पाँचवा अत्रि का, छठा भरद्वाज का और सातवाँ वसिष्ठ ऋषि परिवार का है। पहला और दसवाँ मंडल सबसे बाद में जोड़े गए माने जाते हैं, जबकि आठवाँ और नौवाँ मंडल विशेष प्रकार के हैं। नौवें मंडल में केवल सोम देवता की स्तुति है, इसलिए इसे 'सोम मंडल' भी कहा जाता है। ऋग्वेद के मंत्र विभिन्न देवताओं की स्तुति में रचे गए हैं, जिनमें इंद्र, अग्नि, वरुण, सूर्य, रुद्र, मरुत, अश्विनी कुमार आदि प्रमुख हैं। इंद्र और अग्नि सबसे अधिक पूजित देवता हैं। इंद्र को वर्षा, बिजली और युद्ध का देवता माना गया है, जबकि अग्नि को यज्ञ का मुख वाहक और देवताओं का दूत माना गया है। वरुण नियम और व्यवस्था के देवता हैं, जो सत्य और न्याय के संरक्षक हैं। सूर्य प्रकाश और ऊर्जा के देवता हैं, जो जीवन का आधार हैं। ऋग्वेद के देवता केवल पौराणिक

कल्पनाएँ नहीं, बल्कि प्रकृति के विभिन्न रूपों और शक्तियों के प्रतीक हैं। ऋग्वैदिक ऋषियों ने प्रकृति के विभिन्न तत्वों और शक्तियों को पहचाना और उन्हें देवताओं के रूप में स्थापित कर उनकी स्तुति की। यह प्रकृति पूजा का एक उन्नत रूप है, जिसमें बौद्धिक और आध्यात्मिक गहराई है।

ऋग्वेद के दसवें मंडल में 'पुरुष सूक्त', 'नासदीय सूक्त', 'हिरण्यगर्भ सूक्त' जैसे महत्वपूर्ण दार्शनिक सूक्त संग्रहित हैं, जो विश्व की उत्पत्ति, ब्रह्मांड की रचना और मानव के अस्तित्व के गहन प्रश्नों पर विचार करते हैं। 'पुरुष सूक्त' में विराट पुरुष से सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है, जिसमें वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति का भी उल्लेख है। 'नासदीय सूक्त' में सृष्टि के आरंभ से पहले की स्थिति का विवेचन है, जब न सत था, न असत्, न स्वर्ग था, न पृथ्वी। यह सूक्त सृष्टि के रहस्य को उजागर करता है और ज्ञान की सीमाओं पर प्रश्न उठाता है। 'हिरण्यगर्भ सूक्त' में ब्रह्मांड के आदि बीज या सुनहरे गर्भ (हिरण्यगर्भ) से सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है। ये सूक्त भारतीय दर्शन के मूल स्रोत हैं और आज भी हमें अपनी गहराई से प्रभावित करते हैं। ऋग्वेद में न केवल धार्मिक और आध्यात्मिक विषयों का वर्णन है, बल्कि तत्कालीन समाज, संस्कृति, भूगोल, इतिहास और विज्ञान के बारे में भी मूल्यवान जानकारी मिलती है। इसमें आर्य जनजीवन, उनके आचार-विचार, रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा, व्यवसाय, कला-कौशल, मनोरंजन के साधन, विवाह पद्धति, पारिवारिक और सामाजिक संबंध, राजनीतिक व्यवस्था आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है। ऋग्वेद के अनुसार, आर्य समाज में स्त्रियों का सम्मानजनक स्थान था। वे शिक्षा, धार्मिक अनुष्ठान, यज्ञ और सभाओं में भाग लेती थीं। कई महिला ऋषिकाओं के नाम और उनके द्वारा रचित सूक्त ऋग्वेद में मिलते हैं, जैसे - घोषा, लोपामुद्रा, विश्ववारा, अपाला आदि। ऋग्वेद में वर्णित समाज व्यवस्था में चार वर्ण - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र थे, जो कर्म और गुण पर आधारित थे, न कि जन्म पर। ऋग्वेद में 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' (सत्य एक है, विद्वान उसे अनेक नामों से पुकारते हैं) जैसे महत्वपूर्ण सिद्धांत मिलते हैं जो भारतीय अध्यात्म की एकता में विविधता की अवधारणा को प्रदर्शित करते हैं। ऋग्वेद के कई सूक्तों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण और तत्कालीन विज्ञान का परिचय मिलता है। इसमें गणित, ज्योतिष, खगोल विज्ञान, भूगोल, भौतिकी, रसायन, आयुर्वेद और कृषि विज्ञान से संबंधित जानकारी है। ऋग्वेद में संख्या पद्धति, दशमलव प्रणाली, बड़ी संख्याओं के नाम, ज्यामिति के सिद्धांत, सूर्य, चंद्र और ग्रहों की गति का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद के 'पवमान सूक्त' में जल चक्र का वर्णन है, जिसमें बताया गया है कि सूर्य के ताप से समुद्र का जल वाष्प बनकर आकाश में जाता है, वहाँ से बादल बनकर वर्षा के रूप में पृथ्वी पर आता है, और फिर नदियों के माध्यम से समुद्र में

पहुँचता है। इस प्रकार ऋग्वेद में प्राकृतिक चक्रों और प्रक्रियाओं का सटीक वर्णन मिलता है। ऋग्वेद का अध्ययन भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

यजुर्वेद

यजुर्वेद का संबंध प्रमुख रूप से यज्ञों और उनकी विधियों से है। 'यजुस्' शब्द का अर्थ है - यज्ञ करना या पूजा करना। अतः यजुर्वेद का अर्थ है - यज्ञ संबंधी ज्ञान। यजुर्वेद में यज्ञ के संचालन के लिए आवश्यक मंत्र और विधियाँ संकलित हैं। यह वेद मुख्य रूप से 'अध्वर्यु' नामक पुरोहित के लिए है, जो यज्ञ की व्यवस्था और क्रियाविधि का प्रबंधन करता है। यजुर्वेद के दो भाग हैं - शुक्ल यजुर्वेद (वाजसनेयी संहिता) और कृष्ण यजुर्वेद (तैत्तिरीय संहिता)। शुक्ल यजुर्वेद में केवल मंत्र हैं, जबकि कृष्ण यजुर्वेद में मंत्रों के साथ-साथ उनकी व्याख्या भी दी गई है। शुक्ल यजुर्वेद का प्रवर्तन याज्ञवल्क्य ऋषि ने किया था, जबकि कृष्ण यजुर्वेद वैशंपायन ऋषि से संबंधित है। शुक्ल यजुर्वेद में 40 अध्याय और लगभग 1975 मंत्र हैं, जबकि कृष्ण यजुर्वेद में 7 कांड और लगभग 2098 मंत्र हैं। यजुर्वेद का केंद्रीय विषय यज्ञ है, जो वैदिक संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग था। यज्ञ केवल धार्मिक अनुष्ठान ही नहीं, बल्कि प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करने, समाज में एकता बनाए रखने और मानसिक शुद्धि का साधन भी था। यज्ञ के माध्यम से प्रकृति और मानव के बीच ऊर्जा का आदान-प्रदान होता है। वेदों में यज्ञ को बहुत व्यापक अर्थ में लिया गया है। घर में भोजन पकाना, खेतों में फसल उगाना, ज्ञान का आदान-प्रदान करना, समाज सेवा करना - ये सभी यज्ञ के ही रूप हैं। यजुर्वेद में विभिन्न प्रकार के यज्ञों - दर्शपूर्णमास, अग्निष्टोम, वाजपेय, राजसूय, अश्वमेध आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है। प्रत्येक यज्ञ का अपना विशेष उद्देश्य, प्रक्रिया और फल है। दर्शपूर्णमास यज्ञ अमावस्या और पूर्णिमा के दिन किया जाता है, अग्निष्टोम यज्ञ वसंत ऋतु में किया जाता है, वाजपेय यज्ञ राजा के स्वास्थ्य और समृद्धि के लिए किया जाता है, राजसूय यज्ञ राजा के राज्याभिषेक के समय किया जाता है, और अश्वमेध यज्ञ राजा की सार्वभौम सत्ता की स्थापना के लिए किया जाता है।

यजुर्वेद में न केवल यज्ञ विधि का वर्णन है, बल्कि जीवन के विभिन्न पहलुओं से जुड़े सिद्धांत भी मिलते हैं। इसमें राज्य व्यवस्था, समाज नियमन, पर्यावरण संरक्षण और आध्यात्मिक उन्नति के सिद्धांत निहित हैं। यजुर्वेद के अनुसार, राजा का प्रमुख कर्तव्य प्रजा की रक्षा, न्याय व्यवस्था का पालन और समाज में धर्म की स्थापना है। राजा को 'धर्म की रक्षा करने वाला' और 'प्रजा का पालक' कहा गया है। यजुर्वेद में वर्णित राज्य व्यवस्था लोकतांत्रिक सिद्धांतों पर आधारित थी, जिसमें राजा की निरंकुशता पर अंकुश था। राजा को

मंत्रिपरिषद, सभा और समिति के साथ परामर्श करके निर्णय लेने होते थे। सभा और समिति प्राचीन भारत की संसदीय संस्थाएँ थीं, जिनमें प्रजा के प्रतिनिधि शामिल होते थे। यजुर्वेद में पर्यावरण संरक्षण पर विशेष बल दिया गया है। इसमें वनस्पतियों, वन्य जीवों, जल स्रोतों, वायु और पृथ्वी के संरक्षण के लिए नियम और सिद्धांत बताए गए हैं। यजुर्वेद में कहा गया है कि प्रकृति और मानव एक-दूसरे के पूरक हैं, इसलिए प्रकृति का संरक्षण मानव का परम कर्तव्य है। यजुर्वेद का 'ईशावास्य उपनिषद' भाग दार्शनिक विचारों का खजाना है, जिसमें ईश्वर और जीव के संबंध, जीवन के उद्देश्य और मोक्ष की अवधारणा का गहन विवेचन किया गया है। इसमें कहा गया है - 'ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्' अर्थात इस संसार में जो कुछ भी है, वह सब ईश्वर से व्याप्त है। यह सिद्धांत बताता है कि ईश्वर सर्वव्यापी है और सृष्टि का कण-कण उससे प्रभावित है। ईशावास्य उपनिषद में त्याग और भोग के समन्वय का सिद्धांत भी मिलता है - 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा', अर्थात त्याग भाव से भोग करो। यह संतुलित जीवन जीने की कला सिखाता है, जिसमें न तो अति भोग है, न ही अति त्याग। यजुर्वेद में मनुष्य के जीवन लक्ष्य के रूप में चार पुरुषार्थ - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का वर्णन है। धर्म का अर्थ है - नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का पालन, अर्थ का अर्थ है - धन और संपत्ति का उपार्जन, काम का अर्थ है - इच्छाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति, और मोक्ष का अर्थ है - आत्मा की परम शांति और मुक्ति। इन चारों पुरुषार्थों का संतुलित विकास ही जीवन का उद्देश्य है।

सामवेद

सामवेद को वेदों का संगीत माना जाता है। 'साम' का अर्थ है - संगीत या गान, इसलिए सामवेद का अर्थ है - संगीत का ज्ञान। वेदों में सामवेद का विशेष स्थान है, क्योंकि इसे माधुर्य और आनंद का वेद माना जाता है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है - 'वेदानां सामवेदोऽस्मि', अर्थात वेदों में मैं सामवेद हूँ। सामवेद में अधिकांश मंत्र ऋग्वेद से लिए गए हैं, लेकिन इन्हें विशेष स्वर और लय में गाने के लिए संगीतबद्ध किया गया है। सामवेद के मंत्रों को 'साम' कहा जाता है। ये मंत्र यज्ञों के दौरान विशेष रूप से 'उद्गाता' नामक पुरोहित द्वारा गाए जाते थे। सामवेद में कुल 1875 मंत्र हैं, जिनमें से 1771 मंत्र ऋग्वेद से लिए गए हैं। सामवेद की दो शाखाएँ प्रचलित हैं - कौथुम और राणायनीय। सामवेद की रचना में मुख्य योगदान जैमिनि ऋषि का माना जाता है। सामवेद भारतीय संगीत का मूल स्रोत माना जाता है। इसमें सात स्वर - सा, रे, ग, म, प, ध, नि का उल्लेख मिलता है। ये स्वर प्राकृतिक ध्वनियों से प्रेरित हैं, जैसे - 'सा' मयूर की आवाज से, 'रे' बैल की आवाज से, 'ग' बकरे की आवाज से, 'म' क्रौंच पक्षी की आवाज से, 'प' कोयल की आवाज से, 'ध' घोड़े की आवाज से, और 'नि' हाथी की आवाज से। सामवेद में 'उद्धात्त' (ऊपर उठा हुआ), 'अनुदात्त'

(नीचे का) और 'स्वरित' (मध्य) - इन तीन प्रकार के स्वरों का वर्णन है। इन स्वरों के आधार पर ही भारतीय शास्त्रीय संगीत के राग-रागिनियों का विकास हुआ। सामवेद में 'ग्रामगेय गान', 'आरण्यगेय गान' और 'ऊहगान' इन तीन प्रकार के गानों का उल्लेख है। ग्रामगेय गान गाँव में गाए जाते थे, आरण्यगेय गान वन में, और ऊहगान विशेष अवसरों पर गाए जाते थे। सामवेद के मंत्रों का गायन विभिन्न रागों में किया जाता था, जिससे उनका प्रभाव अधिक गहरा होता था।

सामवेद के अध्ययन से न केवल संगीत की समझ विकसित होती है, बल्कि आध्यात्मिक उन्नति भी होती है। सामवेद के मंत्रों का गायन मन की एकाग्रता, शरीर की स्वस्थता और आत्मा की शुद्धि के लिए महत्वपूर्ण माना जाता है। प्राचीन ऋषियों ने संगीत को साधना का माध्यम बनाया था। वे मानते थे कि संगीत के माध्यम से मनुष्य का मन शांत होता है, उसकी चेतना विकसित होती है और वह आत्म-साक्षात्कार की ओर अग्रसर होता है। सामवेद में इंद्र, अग्नि, सोम आदि देवताओं की स्तुतियाँ संगीतबद्ध रूप में हैं। ये स्तुतियाँ न केवल देवताओं को प्रसन्न करने के लिए हैं, बल्कि मनुष्य के अंतर्मन को जागृत करने और उसे दिव्य शक्ति से जोड़ने के लिए भी हैं। सामवेद के मंत्रों का गायन विशेष अनुष्ठानों, यज्ञों और धार्मिक अवसरों पर किया जाता था। इसका उद्देश्य न केवल देवताओं का आह्वान करना था, बल्कि वातावरण को शुद्ध और सकारात्मक ऊर्जा से भरना भी था। वैदिक ऋषियों ने ध्वनि के प्रभाव को गहराई से समझा था। वे जानते थे कि विशेष प्रकार की ध्वनियाँ और स्वर मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा पर विशिष्ट प्रभाव डालते हैं। इसी ज्ञान के आधार पर उन्होंने सामवेद के मंत्रों की रचना की। आधुनिक विज्ञान भी इस बात की पुष्टि करता है कि ध्वनि तरंगें हमारे शरीर के कोशिकाओं, अंगों और मस्तिष्क की कार्यप्रणाली को प्रभावित करती हैं। सामवेद के सूक्त विषय और प्रयोजन के अनुसार विभिन्न प्रकार के हैं। कुछ सूक्त प्रकृति के तत्वों - सूर्य, चंद्र, वायु, अग्नि, जल आदि की स्तुति में हैं, जो इन तत्वों की महत्ता और उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। कुछ सूक्त मानव जीवन की विभिन्न अवस्थाओं और संस्कारों से जुड़े हैं, जैसे - जन्म, विवाह, गृहप्रवेश आदि। कुछ सूक्त यज्ञ और अनुष्ठानों के लिए हैं, जो विशेष लय और ताल में गाए जाते हैं। कुछ सूक्त सामाजिक और नैतिक मूल्यों पर आधारित हैं, जो सद्भाव, समरसता और सहयोग का संदेश देते हैं। सामवेद के इन विविध सूक्तों का गायन मानव जीवन को समृद्ध और सार्थक बनाता है। सामवेद का अध्ययन और अभ्यास आज भी भारतीय शास्त्रीय संगीत की परंपरा में जीवित है, और इसका महत्व कालातीत है।

अथर्ववेद

अथर्ववेद वैदिक साहित्य का चौथा और अंतिम वेद है। इसे 'ब्रह्मवेद' भी कहा जाता है, क्योंकि यज्ञों में 'ब्रह्मा' नामक पुरोहित इसका उपयोग करता था। ब्रह्मा पुरोहित यज्ञ का निरीक्षक होता था, जो यज्ञ में होने वाली त्रुटियों को सुधारता था। अथर्ववेद का नाम ऋषि अथर्वन के नाम पर पड़ा है, जिन्हें इस वेद का प्रवर्तक माना जाता है। अथर्ववेद में 20 कांड, 731 सूक्त और लगभग 6000 मंत्र हैं। अथर्ववेद की दो प्रमुख शाखाएँ हैं - शौनक और पैप्पलाद। अथर्ववेद की विषय-वस्तु अन्य वेदों से भिन्न है। जहाँ अन्य वेद मुख्य रूप से यज्ञ, देव-स्तुति और धार्मिक अनुष्ठानों से संबंधित हैं, वहीं अथर्ववेद में जीवन के व्यावहारिक पहलुओं, समाज व्यवस्था, राज्य संचालन, चिकित्सा विज्ञान और तंत्र-मंत्र का विस्तृत वर्णन है। अथर्ववेद में आयुर्वेद, गणित, अर्थशास्त्र, राजनीति, युद्ध विज्ञान, ज्योतिष, वास्तुशास्त्र और तंत्र-मंत्र का वर्णन मिलता है। अथर्ववेद में चिकित्सा विज्ञान और औषधियों का विशेष महत्व है। इसमें विभिन्न रोगों के कारण, लक्षण और उपचार का विस्तृत वर्णन है। अथर्ववेद के अनुसार, रोग शरीर, मन और आत्मा के असंतुलन से उत्पन्न होते हैं, इसलिए उपचार भी समग्र होना चाहिए। अथर्ववेद में वर्णित चिकित्सा पद्धति में औषधियों, मंत्रों, ध्यान, आहार-विहार और जीवन शैली में परिवर्तन का समावेश है। अथर्ववेद में 300 से अधिक औषधीय पौधों और उनके गुणों का वर्णन है, जिनका उपयोग विभिन्न रोगों के उपचार में किया जाता था। अथर्ववेद के इस ज्ञान ने बाद में आयुर्वेद के विकास को प्रेरित किया, जो भारत की प्राचीनतम और समग्र चिकित्सा पद्धति है। अथर्ववेद में विभिन्न रोगों - ज्वर, क्षय रोग, हृदय रोग, मानसिक रोग, त्वचा रोग, विष, संक्रमण आदि के उपचार के लिए मंत्र और औषधियाँ बताई गई हैं। इसमें प्रसूति विज्ञान, बाल चिकित्सा, शल्य चिकित्सा और मनोचिकित्सा से संबंधित जानकारी भी मिलती है।

अथर्ववेद में कई मंत्र दीर्घायु, आरोग्य और समृद्धि के लिए हैं। इसमें 'आयुष्य सूक्त', 'पुष्टि सूक्त', 'मेधा सूक्त' जैसे विशेष सूक्त हैं, जो मनुष्य के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए हैं। 'आयुष्य सूक्त' में दीर्घ और स्वस्थ जीवन के लिए प्रार्थना है, 'पुष्टि सूक्त' में शारीरिक बल और ऊर्जा के लिए प्रार्थना है, और 'मेधा सूक्त' में बुद्धि, स्मरण शक्ति और ज्ञान की वृद्धि के लिए प्रार्थना है। अथर्ववेद में मनुष्य के जीवन के विभिन्न पहलुओं - जन्म, विवाह, गृहप्रवेश, शिक्षा, व्यवसाय, संतान प्राप्ति आदि से संबंधित मंत्र और विधियाँ हैं। इनका उद्देश्य जीवन की बाधाओं और चुनौतियों को दूर करना और सुख-समृद्धि प्राप्त करना है। अथर्ववेद में 'शांति कर्म' का भी विस्तृत वर्णन है, जिसका उद्देश्य प्राकृतिक आपदाओं, महामारियों, सामाजिक अशांति और मानसिक अस्थिरता से निपटना है। अथर्ववेद के अतिरिक्त, अथर्ववेद में वशीकरण, उच्चाटन, विद्वेषण जैसे तांत्रिक विधियों का भी वर्णन है। ये विधियाँ विशेष मंत्रों, औषधियों

और अनुष्ठानों पर आधारित हैं, जिनका उद्देश्य मनुष्य की इच्छाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति करना है। यह ध्यान देने योग्य है कि अथर्ववेद इन विधियों के दुरुपयोग के प्रति सावधान करता है और नैतिक मूल्यों और धर्म के पालन पर बल देता है। अथर्ववेद के अनुसार, किसी भी विद्या या शक्ति का उपयोग दूसरों की हानि के लिए नहीं, बल्कि स्वयं और समाज के कल्याण के लिए होना चाहिए। अथर्ववेद में 'वशीकरण' का अर्थ किसी को मोहित करना नहीं, बल्कि विरोधी या शत्रु को मित्र बनाना और उसके मन में सद्भाव उत्पन्न करना है। इसी प्रकार, 'उच्चाटन' का अर्थ किसी को बाधित करना नहीं, बल्कि बुरे विचारों और आदतों को दूर करना है। 'विद्वेषण' का उद्देश्य घृणा उत्पन्न करना नहीं, बल्कि बुराई और अन्याय से दूर रहना है।

अथर्ववेद में राष्ट्र की सुरक्षा, राजा के कर्तव्य, प्रजा के अधिकार और सामाजिक व्यवस्था के सिद्धांत भी वर्णित हैं। इसमें राष्ट्र की एकता, अखंडता और सुरक्षा पर विशेष बल दिया गया है। 'राष्ट्राभिवर्धन सूक्त' में राष्ट्र की उन्नति और समृद्धि के लिए प्रार्थना है। इसमें कहा गया है कि राष्ट्र की शक्ति उसके नागरिकों की एकता, परस्पर सहयोग और सामाजिक सद्भाव पर निर्भर करती है। अथर्ववेद में राजा के कर्तव्यों और गुणों का विस्तृत वर्णन है। राजा को न्यायप्रिय, दयालु, विद्वान, साहसी और प्रजाहितैषी होना चाहिए। उसका मुख्य कर्तव्य प्रजा की रक्षा, न्याय व्यवस्था का पालन और समाज में धर्म की स्थापना है। अथर्ववेद में प्रजा के अधिकारों का भी उल्लेख है। प्रजा को राज्य से सुरक्षा, न्याय और मूलभूत सुविधाओं की प्राप्ति का अधिकार है। साथ ही, प्रजा का कर्तव्य है राष्ट्र के प्रति निष्ठा, कानूनों का पालन और समाज के कल्याण में योगदान देना। अथर्ववेद में 'पृथिवी सूक्त' में पृथ्वी के महत्व और उसके संरक्षण का विस्तृत वर्णन है। इसमें पृथ्वी को माता के रूप में संबोधित किया गया है और उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त की गई है। पृथ्वी हमें भोजन, जल, वायु, आश्रय और जीवन के सभी आवश्यक तत्व प्रदान करती है, इसलिए उसका संरक्षण और सम्मान हमारा परम कर्तव्य है। अथर्ववेद में प्रदूषण, वनों की कटाई, जल संसाधनों के दुरुपयोग और पर्यावरण के विनाश के प्रति चेतावनी दी गई है। इसमें प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाए रखने, संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग करने और पर्यावरण संरक्षण के लिए नियम और सिद्धांत बताए गए हैं। अथर्ववेद में धरती की समृद्धि के लिए विशेष यज्ञ और अनुष्ठान भी वर्णित हैं, जिनका उद्देश्य मिट्टी की उर्वरता, जल संचय और वनस्पतियों की रक्षा करना है। अथर्ववेद में ब्रह्मांड की उत्पत्ति, जीव-जगत का विकास और प्रकृति के नियमों का गहन विश्लेषण मिलता है। इसमें सृष्टि के आरंभ, ब्रह्मांड की संरचना, समय की अवधारणा, जीवन और मृत्यु के चक्र और प्राकृतिक नियमों पर गहन चिंतन किया गया है। अथर्ववेद के अनुसार, ब्रह्मांड अनंत और अनादि है, जिसमें अनेक लोक और प्रणालियाँ हैं। हमारा सौर मंडल इस

विशाल ब्रह्मांड का एक छोटा सा हिस्सा है। अथर्ववेद में ग्रहों, नक्षत्रों, तारों और आकाशीय पिंडों का वर्णन है, जिनके आपसी संबंध और गतियाँ प्राकृतिक नियमों द्वारा निर्धारित होती हैं। अथर्ववेद में जीवन की उत्पत्ति और विकास का सिद्धांत भी मिलता है, जिसके अनुसार सभी जीव एक ही मूल स्रोत से उत्पन्न हुए हैं और उनका विकास क्रमिक रूप से हुआ है। अथर्ववेद में समय की अवधारणा भी अत्यंत गहन है। इसमें काल या समय को अनंत और अनादि माना गया है, जो सृष्टि के आरंभ से पहले भी था और सृष्टि के अंत के बाद भी रहेगा। समय को चक्रीय माना गया है, जिसमें सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का चक्र चलता रहता है।

अथर्ववेद में मानव मन और चेतना के विभिन्न स्तरों का भी विवेचन है। इसमें मन की स्थितियों, विचार प्रक्रिया, स्वप्न, संकल्प-विकल्प और मानसिक शक्तियों का विस्तृत वर्णन है। अथर्ववेद के अनुसार, मन एक शक्तिशाली साधन है, जिसे नियंत्रित और निर्देशित करके मनुष्य अद्भुत उपलब्धियाँ हासिल कर सकता है। ध्यान, एकाग्रता, संकल्प शक्ति और आत्मविश्वास के माध्यम से मन की अंतर्निहित शक्तियों को जागृत किया जा सकता है। अथर्ववेद में मन की शुद्धि, विचारों की एकाग्रता और चेतना के उच्च स्तरों तक पहुँचने के लिए विभिन्न साधनाएँ और प्रक्रियाएँ बताई गई हैं। ये साधनाएँ मनुष्य को आत्म-ज्ञान और आत्म-साक्षात्कार की ओर ले जाती हैं, जिससे उसे जीवन के परम लक्ष्य - मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस प्रकार, अथर्ववेद मानव जीवन के सभी पहलुओं - शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक - को समेटे हुए है। यह वेद न केवल तत्कालीन समाज का दर्पण है, बल्कि आधुनिक युग में भी प्रासंगिक है। अथर्ववेद के सिद्धांत और उपदेश आज भी हमारे जीवन को सुखी, स्वस्थ और सार्थक बनाने में सहायक हो सकते हैं। अथर्ववेद का अध्ययन हमें प्रकृति, समाज और स्वयं के साथ सामंजस्य स्थापित करने और जीवन के विभिन्न पहलुओं में संतुलन बनाए रखने की कला सिखाता है। वेद भारतीय संस्कृति और सभ्यता के आधारस्तंभ हैं, जिनसे भारतीय दर्शन, धर्म, विज्ञान, कला, साहित्य और जीवन पद्धति का विकास हुआ है। वेदों का ज्ञान कालातीत है और आज भी मानव जीवन को दिशा देने में सक्षम है। वैदिक ऋषियों की दृष्टि अंतर्मुखी थी, उन्होंने अपनी तपस्या और साधना के माध्यम से सत्य का साक्षात्कार किया और उसे मंत्रों के रूप में व्यक्त किया। इन मंत्रों का अध्ययन और मनन हमें भी उसी सत्य की ओर ले जा सकता है। वेदों का संदेश सार्वभौमिक और सार्वकालिक है, जो विविधता में एकता, सर्वजन हिताय और विश्व शांति का आह्वान करता है। वसुधैव कुटुम्बकम् (सारा विश्व एक परिवार है) की वैदिक अवधारणा आज

के वैश्विक युग में और भी प्रासंगिक है। वेदों के अध्ययन और अनुशीलन से हम न केवल अपनी सांस्कृतिक विरासत से जुड़ते हैं, बल्कि एक समृद्ध, संतुलित और सार्थक जीवन जीने की कला भी सीखते हैं।

उपवेदः व्यावहारिक ज्ञान की शाखाएँ

उपवेद वेदों की व्यावहारिक शाखाएँ हैं, जिनमें जीवन के विभिन्न पहलुओं से संबंधित ज्ञान-विज्ञान का विस्तृत वर्णन है। प्रत्येक वेद का एक उपवेद है। ये उपवेद अपने संबंधित वेद के व्यावहारिक अनुप्रयोग हैं और जीवन के विविध क्षेत्रों में उपयोगी ज्ञान प्रदान करते हैं।

आयुर्वेद

आयुर्वेद अथर्ववेद का उपवेद है और प्राचीन भारतीय चिकित्सा पद्धति का विज्ञान है। 'आयु' का अर्थ है जीवन और 'वेद' का अर्थ है ज्ञान, अतः आयुर्वेद का शाब्दिक अर्थ है - जीवन विज्ञान। आयुर्वेद में स्वास्थ्य संरक्षण, रोग निवारण और दीर्घायु प्राप्ति के सिद्धांत और विधियाँ वर्णित हैं। आयुर्वेद के प्रमुख ग्रंथ चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, अष्टांग हृदय और अष्टांग संग्रह हैं। इन ग्रंथों में शरीर रचना, शरीर क्रिया विज्ञान, रोग निदान, औषधि विज्ञान और चिकित्सा पद्धतियों का विस्तृत वर्णन है। आयुर्वेद के अनुसार, मानव शरीर पंच महाभूतों - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश से बना है। शरीर में तीन दोष - वात, पित्त और कफ का संतुलन स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। आयुर्वेद में रोग निवारण पर विशेष बल दिया गया है। दिनचर्या, ऋतुचर्या, सात्म्य, रसायन और वाजीकरण द्वारा स्वास्थ्य संरक्षण के उपाय बताए गए हैं। रोग होने पर पंचकर्म - वमन, विरेचन, बस्ति, नस्य और रक्तमोक्षण द्वारा शरीर की शुद्धि की जाती है। आयुर्वेद में अनेक जड़ी-बूटियों, खनिज पदार्थों और पशु उत्पादों से बनी औषधियों का वर्णन है, जिनका उपयोग विभिन्न रोगों के उपचार में किया जाता है। आयुर्वेद का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत है - "स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणं, आतुरस्य विकार प्रशमनं च"। अर्थात् स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना और रोगी के रोग को दूर करना आयुर्वेद का मुख्य उद्देश्य है। आयुर्वेद केवल शारीरिक स्वास्थ्य ही नहीं, बल्कि मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य पर भी बल देता है। इसमें योग, ध्यान, प्राणायाम और सात्विक जीवनशैली का महत्व बताया गया है।

धनुर्वेद

धनुर्वेद यजुर्वेद का उपवेद है और युद्ध कला का विज्ञान है। इसमें अस्त्र-शस्त्र निर्माण, युद्ध विद्या, सेना संचालन और रक्षा प्रणालियों का विस्तृत वर्णन है। धनुर्वेद का नाम धनुष से लिया गया है, जो प्राचीन काल का प्रमुख हथियार था। धनुर्वेद में विभिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों - धनुष-बाण, तलवार, भाला, गदा, चक्र आदि के निर्माण और प्रयोग की विधियाँ बताई गई हैं। इसके अतिरिक्त, दिव्यास्त्रों - ब्रह्मास्त्र, पाशुपतास्त्र, नारायणास्त्र, वायव्यास्त्र आदि का भी वर्णन मिलता है। ये दिव्यास्त्र मंत्र शक्ति से संचालित होते थे और इनका प्रयोग केवल अत्यंत आवश्यक परिस्थितियों में किया जाता था। धनुर्वेद में युद्ध के विभिन्न प्रकार - धर्मयुद्ध, कूटयुद्ध, तुषनीम युद्ध और प्रकाश युद्ध का वर्णन है। इसमें युद्ध नीति, रणनीति, व्यूह रचना और सैन्य संचालन के सिद्धांत बताए गए हैं। धनुर्वेद में युद्ध के नैतिक पहलू पर भी बल दिया गया है। इसमें स्पष्ट किया गया है कि युद्ध केवल धर्म की रक्षा के लिए और अंतिम विकल्प के रूप में ही किया जाना चाहिए। धनुर्वेद का उद्देश्य केवल युद्ध कौशल सिखाना ही नहीं, बल्कि योद्धा में अनुशासन, साहस, नैतिकता और आत्मनियंत्रण जैसे गुणों का विकास करना भी है। इसमें शारीरिक व्यायाम, आहार-विहार और मानसिक प्रशिक्षण का भी महत्व बताया गया है। धनुर्वेद के अनुसार, एक आदर्श योद्धा न केवल शारीरिक रूप से बलवान, बल्कि नैतिक रूप से भी श्रेष्ठ होना चाहिए।

गान्धर्ववेद

गान्धर्ववेद सामवेद का उपवेद है और संगीत, नृत्य और नाट्य कला का विज्ञान है। इसका नाम गंधर्वों से लिया गया है, जो देवलोक के संगीतकार माने जाते हैं। गान्धर्ववेद में स्वर, राग, ताल, वाद्य यंत्र, गायन शैलियों, नृत्य मुद्राओं और नाट्य कला का विस्तृत वर्णन है। गान्धर्ववेद के मुख्य ग्रंथ नाट्यशास्त्र (भरत मुनि), संगीत रत्नाकर (शारंगदेव), संगीत दर्पण (दामोदर पंडित) और अभिनय दर्पण (नंदिकेश्वर) हैं। इन ग्रंथों में संगीत के सप्त स्वर, बाईस श्रुतियाँ, राग-रागिनियाँ, ताल और वाद्य यंत्रों का विस्तृत वर्णन मिलता है। गान्धर्ववेद के अनुसार, संगीत का जन्म ब्रह्मांडीय नाद से हुआ है और यह मनुष्य को ब्रह्मांडीय चेतना से जोड़ता है। गान्धर्ववेद में नृत्य के दो प्रमुख रूप - तांडव और लास्य का वर्णन है। तांडव शिव का उग्र नृत्य है, जबकि लास्य पार्वती का सौम्य नृत्य है। इसके अतिरिक्त, विभिन्न शास्त्रीय नृत्य शैलियाँ - भरतनाट्यम, कथकली, कथक, ओडिसी, कुचिपुड़ी आदि का भी उल्लेख मिलता है। इन नृत्य शैलियों में मुद्राओं, भावों और रसों का विशेष महत्व है। गान्धर्ववेद में नाट्य कला का भी विस्तृत वर्णन है। इसमें नाट्य के तत्व - वस्तु, नेता, रस और अभिनय का विश्लेषण किया गया है। नाट्य के प्रमुख रस - श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शांत का वर्णन मिलता है। गान्धर्ववेद के अनुसार, नाट्य का उद्देश्य

मनोरंजन के साथ-साथ शिक्षा और आध्यात्मिक उन्नति भी है। गान्धर्ववेद संगीत, नृत्य और नाट्य को केवल कला ही नहीं, बल्कि आध्यात्मिक साधना का माध्यम भी मानता है। इसमें स्पष्ट किया गया है कि इन कलाओं के माध्यम से मन की एकाग्रता, भावनात्मक शुद्धि और आत्म-साक्षात्कार संभव है। गान्धर्ववेद का अध्ययन न केवल कलात्मक प्रतिभा के विकास में सहायक है, बल्कि व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

स्थापत्यवेद

स्थापत्यवेद ऋग्वेद का उपवेद है और वास्तुकला, शिल्पकला और नगर निर्माण का विज्ञान है। इसमें भवन निर्माण, मंदिर स्थापत्य, नगर नियोजन, जल प्रबंधन और भूमि परीक्षण की विधियों का विस्तृत वर्णन है। स्थापत्यवेद के प्रमुख ग्रंथ मयमतम्, मानसार, वास्तुराज वल्लभ और शिल्परत्न हैं। स्थापत्यवेद में भवन निर्माण के विभिन्न पहलुओं - स्थान चयन, दिशा निर्धारण, भूमि परीक्षण, वास्तुपुरुष मंडल, आयाम निर्धारण और निर्माण सामग्री का विस्तृत वर्णन मिलता है। इसमें विभिन्न प्रकार के भवनों - राजप्रासाद, मंदिर, आवास, सभागृह आदि के निर्माण की विधियाँ बताई गई हैं। स्थापत्यवेद में भवन के विभिन्न अंगों - द्वार, गवाक्ष, स्तंभ, छत, मेहराब, शिखर आदि की डिजाइन और निर्माण के सिद्धांत भी वर्णित हैं।

स्थापत्यवेद में मंदिर स्थापत्य का विशेष महत्व है। इसमें मंदिर के विभिन्न शैलियों - नागर, द्राविड़ और वेसर का वर्णन मिलता है। मंदिर के विभिन्न भागों - गर्भगृह, मंडप, शिखर, ध्वजस्तंभ आदि की स्थापना के नियम और सिद्धांत बताए गए हैं। स्थापत्यवेद के अनुसार, मंदिर निर्माण में मात्राओं, अनुपात और गणितीय सूत्रों का विशेष महत्व है। स्थापत्यवेद में नगर नियोजन और जल प्रबंधन का भी विस्तृत वर्णन है। इसमें विभिन्न प्रकार के नगरों - राजधानी, बंदरगाह, व्यापारिक केंद्र, तीर्थ स्थल आदि के नियोजन के सिद्धांत बताए गए हैं। नगर में सड़कों, चौराहों, बाजारों, सार्वजनिक भवनों और आवासीय क्षेत्रों के नियोजन के नियम भी वर्णित हैं। स्थापत्यवेद में कुओं, बावड़ियों, जलाशयों, नहरों और सीवेज सिस्टम के निर्माण की विधियाँ भी बताई गई हैं।

इकाई 3: ज्ञान के स्त्रोत: श्रुति, स्मृति, तर्क और अनुभव

मानव सभ्यता के विकास में ज्ञान की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। प्राचीन काल से ही मनुष्य ने अपने चारों ओर के संसार को समझने, उसके रहस्यों को सुलझाने और अपने अस्तित्व के गहन प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास किया है। इस प्रक्रिया में ज्ञान के विभिन्न स्रोतों का उद्भव हुआ, जिन्होंने हमारी समझ को आकार दिया और हमारे चिंतन को दिशा प्रदान की। भारतीय दर्शन परंपरा में ज्ञान के चार प्रमुख स्रोतों को पहचाना गया है - श्रुति, स्मृति, तर्क और अनुभव। ये स्रोत न केवल हमारे ज्ञान के आधार हैं, बल्कि हमारी संस्कृति, धर्म, विज्ञान और दर्शन के विकास के मूल में भी हैं। श्रुति वह ज्ञान है जो सुनकर प्राप्त होता है, जिसे हमने अपने पूर्वजों, गुरुओं और ऋषियों से प्राप्त किया है। स्मृति वह ज्ञान है जो हमारी स्मरण शक्ति में संग्रहित है, जो हमारे अतीत के अनुभवों और शिक्षाओं से निर्मित होता है। तर्क वह ज्ञान है जो विवेचन, विश्लेषण और अनुमान के माध्यम से प्राप्त होता है। और अनुभव वह ज्ञान है जो हमारे प्रत्यक्ष अनुभव से उपजता है, जो हमारे इंद्रियों के माध्यम से हमें प्राप्त होता है। इस अध्याय में हम इन चारों ज्ञान स्रोतों का विस्तृत अध्ययन करेंगे, उनकी विशेषताओं, महत्व और परस्पर संबंधों का विश्लेषण करेंगे। हम यह भी समझेंगे कि कैसे ये स्रोत हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन को प्रभावित करते हैं, और कैसे वे हमारे दैनिक निर्णयों से लेकर हमारे दार्शनिक और आध्यात्मिक चिंतन तक सभी क्षेत्रों में हमारा मार्गदर्शन करते हैं।

श्रुति: सुना हुआ ज्ञान

श्रुति शब्द संस्कृत के 'श्रु' धातु से बना है, जिसका अर्थ है 'सुनना'। यह वह ज्ञान है जो मौखिक परंपरा के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचता है। भारतीय परंपरा में, श्रुति का सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण वेद हैं, जिन्हें अपौरुषेय (न किसी मनुष्य द्वारा रचित) माना जाता है और जिन्हें ऋषियों ने सुना और फिर मौखिक रूप से संरक्षित किया। श्रुति की मूल अवधारणा यह है कि कुछ ज्ञान ऐसा होता है जो मनुष्य के साधारण अनुभव और बुद्धि से परे होता है, और इसे केवल उच्च चेतना वाले व्यक्तियों द्वारा ही ग्रहण किया जा सकता है। ये व्यक्ति - ऋषि, मुनि, संत या गुरु - इस ज्ञान को अपने शिष्यों को प्रदान करते हैं, जो बदले में इसे अगली पीढ़ी तक पहुंचाते हैं। इस प्रकार, श्रुति एक जीवंत परंपरा बनती है, जो हजारों वर्षों से निरंतर प्रवाहित होती रही है। श्रुति के ज्ञान की एक प्रमुख विशेषता इसकी अखंडता और अविकारता है। वैदिक मंत्रों को स्वर, मात्रा और उच्चारण की सटीकता के साथ संरक्षित किया गया है, ताकि उनका मूल अर्थ और शक्ति अक्षुण्ण रहे। यही कारण है कि आज भी, हजारों वर्षों बाद, वेद मंत्रों का उच्चारण उसी शुद्धता और स्पष्टता के साथ किया जाता है जैसे प्राचीन काल में किया जाता था।

श्रुति का महत्व केवल धार्मिक या आध्यात्मिक ज्ञान तक ही सीमित नहीं है। इसमें जीवन के विभिन्न पहलुओं - चिकित्सा, ज्योतिष, वास्तुशास्त्र, संगीत, नृत्य, और यहां तक कि विज्ञान और गणित के क्षेत्र में भी ज्ञान शामिल है। उदाहरण के लिए, आयुर्वेद, जो प्राचीन भारतीय चिकित्सा पद्धति है, अथर्ववेद से निकला है और इसे गुरु-शिष्य परंपरा के माध्यम से संरक्षित और प्रसारित किया गया है। श्रुति ज्ञान की एक और महत्वपूर्ण विशेषता इसका समग्र दृष्टिकोण है। यह मनुष्य को न केवल भौतिक संसार के साथ, बल्कि आध्यात्मिक और परमार्थिक वास्तविकताओं के साथ भी जोड़ता है। यह हमें सिखाता है कि हम केवल शरीर या मन नहीं हैं, बल्कि आत्मा भी हैं, और हमारा अंतिम लक्ष्य इस आत्मा की सच्ची प्रकृति को पहचानना है। श्रुति ज्ञान का एक महत्वपूर्ण पहलू इसकी सार्वभौमिकता है। हालांकि यह विशिष्ट सांस्कृतिक और ऐतिहासिक संदर्भों में विकसित हुआ, श्रुति द्वारा प्रतिपादित मूल सिद्धांत - जैसे अहिंसा, सत्य, दया, परोपकार - सार्वभौमिक मूल्य हैं जो सभी समाजों और संस्कृतियों में प्रासंगिक हैं। इसी तरह, श्रुति में निहित आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि - आत्मा की प्रकृति, ब्रह्मांड के साथ हमारे संबंध, और मानव अस्तित्व के उद्देश्य के बारे में - सभी धर्मों और आध्यात्मिक परंपराओं में एक या दूसरे रूप में मिलती है।

आधुनिक युग में, जब प्रौद्योगिकी और विज्ञान ने हमारे जीवन को इतना बदल दिया है, श्रुति ज्ञान की प्रासंगिकता पर सवाल उठाया जा सकता है। फिर भी, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि श्रुति केवल प्राचीन ग्रंथों और रीति-रिवाजों का संग्रह नहीं है। यह एक जीवंत परंपरा है जो निरंतर विकसित होती रहती है और नए संदर्भों और चुनौतियों के अनुरूप स्वयं को अनुकूलित करती है। उदाहरण के लिए, आज के बहुत से आध्यात्मिक गुरु और शिक्षक श्रुति के मूल सिद्धांतों को आधुनिक भाषा और संदर्भों में प्रस्तुत करते हैं, जिससे वे आज के लोगों के लिए अधिक सुलभ और प्रासंगिक बन जाते हैं। इसके अलावा, श्रुति ज्ञान की कुछ अंतर्दृष्टियां आधुनिक विज्ञान द्वारा पुष्ट की जा रही हैं। उदाहरण के लिए, वैदिक काल से ही योग और ध्यान के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभावों की बात की जाती रही है, और आज, वैज्ञानिक अध्ययन इन प्रभावों की पुष्टि कर रहे हैं। इसी तरह, श्रुति में वर्णित प्रकृति के साथ सद्भाव में रहने का सिद्धांत आज के पर्यावरण संकट के समय में विशेष रूप से प्रासंगिक है। श्रुति ज्ञान की एक और महत्वपूर्ण विशेषता इसकी अखंडता है। यह केवल सैद्धांतिक ज्ञान नहीं है, बल्कि एक जीवन शैली है, एक ऐसा तरीका है जिसके द्वारा हम अपने दैनिक जीवन को जीते हैं। श्रुति हमें केवल यह नहीं सिखाती कि क्या सोचना है, बल्कि यह भी सिखाती है कि कैसे जीना है - कैसे खाना है, कैसे बातचीत करनी है, कैसे काम करना है, कैसे ध्यान करना है। इस प्रकार, श्रुति ज्ञान जीवन के सभी पहलुओं को समाहित करता है और

हमें एक संपूर्ण और संतुलित जीवन जीने में मदद करता है। अंत में, यह समझना महत्वपूर्ण है कि श्रुति ज्ञान अंधविश्वास या अंधानुकरण का पर्याय नहीं है। बल्कि, यह एक ऐसी परंपरा है जो आलोचनात्मक सोच और व्यक्तिगत अनुभव को प्रोत्साहित करती है। उपनिषदों में, गुरु अक्सर अपने शिष्यों को सवाल पूछने और स्वयं के अनुभव के माध्यम से सत्य को खोजने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। इसी तरह, बुद्ध ने अपने अनुयायियों को अपने शब्दों को अंधविश्वास से स्वीकार न करने, बल्कि उन्हें अपने अनुभव की कसौटी पर परखने की सलाह दी। इस प्रकार, श्रुति एक ऐसा ज्ञान है जो हमें न केवल सुनने, बल्कि सोचने, समझने और अनुभव करने के लिए आमंत्रित करता है।

स्मृति: स्मरण किया हुआ ज्ञान

स्मृति शब्द संस्कृत के 'स्मृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ है 'याद करना' या 'स्मरण करना'। भारतीय दर्शन में, स्मृति वह ज्ञान है जो श्रुति के आधार पर मनुष्यों द्वारा रचित और स्मरण किया गया है। स्मृति ग्रंथों में धर्मशास्त्र, इतिहास (पुराण), महाकाव्य (रामायण, महाभारत) और अन्य ग्रंथ शामिल हैं जो वैदिक सिद्धांतों की व्याख्या करते हैं और उन्हें दैनिक जीवन में लागू करने के लिए मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। स्मृति की प्रमुख विशेषता इसकी प्रयोगात्मकता और अनुकूलनशीलता है। जबकि श्रुति अपरिवर्तनीय और शाश्वत है, स्मृति समय, स्थान और परिस्थितियों के अनुसार बदल सकती है। यह लचीलापन स्मृति को विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संदर्भों में प्रासंगिक बनाता है। उदाहरण के लिए, विभिन्न स्मृति ग्रंथ विभिन्न काल और क्षेत्रों में लिखे गए, और वे अपने समय और स्थान की विशिष्ट आवश्यकताओं को प्रतिबिंबित करते हैं। स्मृति का एक महत्वपूर्ण कार्य श्रुति के सिद्धांतों को व्यावहारिक दिशानिर्देशों में परिवर्तित करना है। उदाहरण के लिए, वेदों में 'धर्म' की अवधारणा का उल्लेख है, लेकिन धर्म के विशिष्ट नियमों और सिद्धांतों का विस्तृत विवरण मनुस्मृति जैसे स्मृति ग्रंथों में मिलता है। इसी तरह, उपनिषदों में आत्मा और ब्रह्म के बारे में गहन दार्शनिक विचार हैं, लेकिन इन सिद्धांतों को सामान्य लोगों के लिए सुलभ बनाने का कार्य भगवद्गीता और पुराणों जैसे स्मृति ग्रंथों ने किया।

स्मृति का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू इसका शैक्षिक मूल्य है। स्मृति ग्रंथ अक्सर कहानियों, दृष्टांतों और अन्य सरल और आकर्षक रूपों का उपयोग करते हैं जो जटिल सिद्धांतों को आम लोगों के लिए सुलभ बनाते हैं। उदाहरण के लिए, रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्य धर्म, नैतिकता और जीवन के अन्य महत्वपूर्ण पहलुओं पर शिक्षा प्रदान करने के लिए कहानियों और पात्रों का उपयोग करते हैं। स्मृति का एक अन्य

महत्वपूर्ण कार्य सामाजिक संरचना और व्यवस्था प्रदान करना है। स्मृति ग्रंथ समाज के विभिन्न पहलुओं - परिवार, विवाह, राज्य, अर्थव्यवस्था, और न्याय प्रणाली के बारे में विस्तृत दिशानिर्देश प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए, अर्थशास्त्र राज्य के संचालन और अर्थव्यवस्था के प्रबंधन के विषय में विस्तृत मार्गदर्शन प्रदान करता है, जबकि धर्मशास्त्र न्याय, दंड और सामाजिक नियमों पर केंद्रित हैं। स्मृति का एक महत्वपूर्ण पहलू इसकी नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा है। स्मृति ग्रंथ न केवल कानूनी और सामाजिक नियमों पर केंद्रित हैं, बल्कि वे व्यक्तिगत नैतिकता, आचरण और आध्यात्मिक विकास पर भी ध्यान केंद्रित करते हैं। वे सद्गुणों जैसे सत्य, अहिंसा, दया, और दान की महत्ता पर जोर देते हैं, और मनुष्य को आत्मज्ञान और मोक्ष की ओर ले जाने वाले मार्ग का वर्णन करते हैं।

स्मृति ग्रंथों की एक विशेषता उनकी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्ता है। वे न केवल धार्मिक और नैतिक शिक्षाओं का भंडार हैं, बल्कि वे प्राचीन भारतीय समाज, संस्कृति, राजनीति, और अर्थव्यवस्था के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी भी प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए, महाभारत और रामायण जैसे महाकाव्य प्राचीन भारतीय जीवन के विभिन्न पहलुओं - युद्ध, शांति, प्रेम, द्वेष, परिवार, राज्य - का विस्तृत चित्रण प्रस्तुत करते हैं। आधुनिक संदर्भ में, स्मृति ग्रंथों की प्रासंगिकता और व्याख्या चुनौतीपूर्ण हो सकती है। कुछ प्रथाएं और विचार, जैसे वर्ण व्यवस्था या लिंग भूमिकाओं के संबंध में, आधुनिक मूल्यों और विचारों के विपरीत हो सकते हैं। हालांकि, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि स्मृति की मूल अवधारणा ही अनुकूलन और विकास की है। स्मृति ग्रंथों का यह अनुकूलनशील चरित्र हमें उन्हें सार्थक तरीके से पुनर्व्याख्यित करने और आधुनिक संदर्भों में उनकी शिक्षाओं को लागू करने की अनुमति देता है। इसके अलावा, स्मृति ग्रंथों में निहित कई मूल्य और सिद्धांत - जैसे न्याय, समानता, करुणा, और सत्य - आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने प्राचीन काल में थे। उदाहरण के लिए, भगवद्गीता में निष्काम कर्म (बिना फल की आशा के कर्म) का सिद्धांत आज के व्यस्त और प्रतिस्पर्धी जीवन में एक महत्वपूर्ण मार्गदर्शक सिद्धांत हो सकता है।

स्मृति का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू इसकी सांस्कृतिक और सामाजिक पहचान में भूमिका है। स्मृति ग्रंथ, विशेष रूप से महाकाव्य और पुराण, भारतीय संस्कृति और पहचान के महत्वपूर्ण स्तंभ हैं। वे न केवल धार्मिक और नैतिक शिक्षाओं का स्रोत हैं, बल्कि सामूहिक स्मृति और सांस्कृतिक निरंतरता के वाहक भी हैं। उदाहरण के लिए, रामायण और महाभारत के कहानियों और पात्रों का प्रभाव भारतीय कला, साहित्य, नृत्य, और संगीत पर गहरा और स्थायी रहा है। अंत में, यह समझना महत्वपूर्ण है कि स्मृति और श्रुति परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि पूरक हैं। श्रुति मूल सिद्धांत और शाश्वत सत्य प्रदान करती है, जबकि स्मृति इन

सिद्धांतों की व्यावहारिक अभिव्यक्ति और अनुप्रयोग प्रदान करती है। दोनों मिलकर एक संपूर्ण और समग्र ज्ञान प्रणाली बनाते हैं जो हमारे जीवन के सभी पहलुओं को समाहित करती है।

तर्क: विवेचनात्मक ज्ञान

तर्क या युक्ति वह ज्ञान है जो विचार, विश्लेषण, और विवेचन के माध्यम से प्राप्त होता है। यह मनुष्य की वैचारिक क्षमता पर आधारित है, जिसके द्वारा वह निष्कर्ष निकालता है, समस्याओं का समाधान करता है, और नए विचारों का निर्माण करता है। भारतीय दर्शन में तर्क की परंपरा अत्यंत समृद्ध है, जिसमें न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा, और उत्तर मीमांसा (वेदांत) जैसे विभिन्न दर्शन शामिल हैं, जो सभी तर्क और युक्ति का उपयोग करते हैं। तर्क की प्रमुख विशेषता इसकी स्वतंत्रता और आलोचनात्मक प्रकृति है। तर्क श्रुति या स्मृति की तरह प्राधिकरण या परंपरा पर निर्भर नहीं करता, बल्कि यह स्वतंत्र सोच और विश्लेषण पर आधारित है। तर्क के माध्यम से, हम किसी भी विचार, विश्वास या दावे की जांच कर सकते हैं, भले ही वह कितना भी प्राचीन या सम्मानित क्यों न हो। तर्क का एक महत्वपूर्ण पहलू इसकी विश्लेषणात्मक प्रकृति है। तर्क के माध्यम से, हम जटिल विषयों को उनके घटक भागों में विभाजित कर सकते हैं, और फिर प्रत्येक भाग का अध्ययन कर सकते हैं। यह विधि हमें किसी भी विषय की गहराई से समझ विकसित करने में मदद करती है। उदाहरण के लिए, न्याय दर्शन में, ज्ञान प्राप्ति के साधनों को प्रत्यक्ष (प्रत्यक्ष अनुभव), अनुमान (अनुमान), उपमान (तुलना), और शब्द (शब्द या प्रमाण) जैसे श्रेणियों में विभाजित किया गया है। तर्क का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू इसकी संश्लेषणात्मक प्रकृति है। तर्क के माध्यम से, हम विभिन्न विचारों और अवधारणाओं को एक साथ जोड़कर नए विचारों और सिद्धांतों का निर्माण कर सकते हैं। यह क्षमता नवाचार और रचनात्मकता का आधार है, जो मानव प्रगति के लिए आवश्यक है। उदाहरण के लिए, आधुनिक विज्ञान में, विभिन्न क्षेत्रों के विचारों और अवधारणाओं को एक साथ जोड़कर नई सिद्धांतों और प्रौद्योगिकियों का विकास किया जाता है।

इकाई 4: भारतीय और पाश्चात्य ज्ञान प्रणाली में अंतर

मानव सभ्यता के विकास में ज्ञान की भूमिका सर्वोपरि रही है। विश्व के विभिन्न भागों में अलग-अलग संस्कृतियों ने अपनी विशिष्ट परिस्थितियों, दार्शनिक मान्यताओं और आवश्यकताओं के अनुरूप अपनी ज्ञान प्रणालियों का विकास किया है। इन ज्ञान प्रणालियों में भारतीय और पाश्चात्य ज्ञान परंपराएँ अपनी विशिष्टता के कारण विशेष स्थान रखती हैं। दोनों ज्ञान परंपराओं का इतिहास हजारों वर्षों का है और दोनों

ने मानव जाति के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। फिर भी, इन दोनों ज्ञान प्रणालियों के बीच मौलिक अंतर हैं जो इनके दर्शन, पद्धति, उद्देश्य और परिणामों में परिलक्षित होते हैं। भारतीय ज्ञान प्रणाली, जिसकी जड़ें वैदिक काल (लगभग 1500 ई.पू.) से भी पूर्व की हैं, आध्यात्मिकता, अनुभवजन्य ज्ञान, अंतर्दृष्टि और समग्र दृष्टिकोण पर आधारित है। इसके विपरीत, पाश्चात्य ज्ञान प्रणाली, जिसका विकास यूनानी दार्शनिकों के समय से हुआ और जो आधुनिक युग में वैज्ञानिक क्रांति के साथ परिपक्व हुई, तर्क, प्रयोगात्मकता, वस्तुनिष्ठता और विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण पर बल देती है। यह पुस्तक अध्याय भारतीय और पाश्चात्य ज्ञान प्रणालियों के बीच मौजूद विभिन्न अंतरों का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है, साथ ही यह भी समझने का प्रयास करता है कि ये अंतर किस प्रकार इन संस्कृतियों के विकास, उनकी वर्तमान स्थिति और वैश्विक चुनौतियों के समाधान में उनके संभावित योगदान को प्रभावित करते हैं।

दार्शनिक आधार: आत्मा बनाम पदार्थ

भारतीय और पाश्चात्य ज्ञान प्रणालियों के बीच सबसे मौलिक अंतर उनके दार्शनिक आधार में निहित है। भारतीय दर्शन मूलतः आत्मा, चेतना और अंतर्मन की प्रकृति पर केंद्रित है, जबकि पाश्चात्य दर्शन पदार्थ, भौतिक जगत और बाह्य वास्तविकता पर अधिक ध्यान देता है। भारतीय दर्शन में, ब्रह्म (परम सत्य) और आत्मा (व्यक्तिगत चेतना) की अवधारणाओं को सर्वोच्च महत्व दिया जाता है। उपनिषदों का प्रसिद्ध वाक्य "अहं ब्रह्मास्मि" (मैं ब्रह्म हूँ) और "तत्त्वमसि" (वह तू है) इस दार्शनिक दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करते हैं। भारतीय दर्शन के अनुसार, सत्य की खोज का मार्ग बाहर नहीं, बल्कि अंतर्मन की ओर जाता है। यहाँ, ज्ञान का अर्थ है स्वयं की वास्तविक प्रकृति को जानना, जो कि परम सत्य से अभिन्न है। इसके विपरीत, पाश्चात्य दर्शन, विशेष रूप से आधुनिक काल में, भौतिक जगत, प्रकृति के नियमों और वस्तुनिष्ठ वास्तविकता पर अधिक बल देता है। डेकार्ट का प्रसिद्ध कथन "मैं सोचता हूँ, इसलिए मैं हूँ" (Cogito, ergo sum) पाश्चात्य दर्शन में मन और शरीर के द्वैतवाद को प्रतिबिंबित करता है, जहाँ मन और पदार्थ को अलग-अलग माना जाता है। इस दृष्टिकोण में, ज्ञान का अर्थ है बाह्य वास्तविकता को समझना और उसके नियमों को खोजना।

भारतीय दर्शन में आत्मा और चेतना की केंद्रीयता के कारण, यहाँ ज्ञान को आंतरिक अनुभव, आत्म-जागरूकता और आध्यात्मिक उन्नति से जोड़ा जाता है। वेदांत, योग, बौद्ध धर्म और जैन धर्म जैसे दार्शनिक परंपराओं में आत्म-ज्ञान को परम लक्ष्य माना जाता है। इसके विपरीत, पाश्चात्य परंपरा में ज्ञान को अधिकतर बाह्य जगत के अध्ययन, वैज्ञानिक अनुसंधान और तार्किक विश्लेषण से जोड़ा जाता है। यह

दार्शनिक अंतर दोनों ज्ञान प्रणालियों की मूलभूत प्रकृति को प्रभावित करता है। भारतीय प्रणाली में आत्म-ज्ञान, मुक्ति और आध्यात्मिक उन्नति पर जोर दिया जाता है, जबकि पाश्चात्य प्रणाली में प्रकृति पर नियंत्रण, भौतिक प्रगति और वैज्ञानिक प्रगति पर अधिक बल दिया जाता है।

ज्ञान प्राप्ति के साधन: अंतर्ज्ञान बनाम तर्क

भारतीय और पाश्चात्य ज्ञान प्रणालियों में ज्ञान प्राप्ति के साधनों में भी महत्वपूर्ण अंतर है। भारतीय परंपरा में ज्ञान प्राप्ति के लिए अंतर्ज्ञान, अनुभूति, ध्यान और आध्यात्मिक अभ्यास पर अधिक बल दिया जाता है, जबकि पाश्चात्य परंपरा में तर्क, प्रयोग, अवलोकन और वैज्ञानिक पद्धति का प्राधान्य है। भारतीय दर्शन में ज्ञान प्राप्ति के साधनों को "प्रमाण" कहा जाता है। विभिन्न भारतीय दार्शनिक परंपराओं में प्रमाणों की संख्या और प्रकार अलग-अलग हो सकते हैं, लेकिन सामान्यतः प्रत्यक्ष (प्रत्यक्ष अनुभव), अनुमान (तर्क), उपमान (तुलना), शब्द (आप्त वचन) आदि को प्रमाण माना जाता है। इनमें से शब्द प्रमाण, जिसमें वेदों, उपनिषदों, आगमों और अन्य आध्यात्मिक ग्रंथों के वचनों को प्रमाण माना जाता है, भारतीय परंपरा का विशिष्ट लक्षण है। इसके अतिरिक्त, भारतीय परंपरा में ज्ञान प्राप्ति के लिए योग, ध्यान, तप और साधना जैसे आध्यात्मिक अभ्यासों पर विशेष बल दिया जाता है। पतंजलि योगसूत्र में वर्णित अष्टांग योग, बौद्ध धर्म में ध्यान की विभिन्न पद्धतियाँ, और जैन धर्म में आत्म-संयम के अभ्यास ज्ञान प्राप्ति के आंतरिक मार्ग को दर्शाते हैं। इन पद्धतियों का उद्देश्य मन को शांत और स्थिर करना है, जिससे व्यक्ति अपने आंतरिक स्वरूप को जान सके और परम सत्य का साक्षात्कार कर सके।

इसके विपरीत, पाश्चात्य परंपरा में ज्ञान प्राप्ति के लिए तर्क, प्रयोग और वैज्ञानिक पद्धति पर अधिक जोर दिया जाता है। फ्रांसिस बेकन, रेने डेकार्ट और इमैनुएल कांट जैसे पाश्चात्य दार्शनिकों ने ज्ञान प्राप्ति के लिए क्रमबद्ध पद्धतियों का विकास किया, जिन्होंने आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति की नींव रखी। इस पद्धति में अवलोकन, परिकल्पना निर्माण, प्रयोग और परिणामों का विश्लेषण शामिल है। यहाँ, ज्ञान को वस्तुनिष्ठ, सत्यापनीय और पुनरावर्तनीय माना जाता है। पाश्चात्य परंपरा में, विशेष रूप से वैज्ञानिक क्रांति के बाद, बाह्य अवलोकन, मापन और गणितीय मॉडल बनाने पर अधिक जोर दिया जाता है। गैलीलियो, न्यूटन, और बाद में आइंस्टाइन जैसे वैज्ञानिकों ने भौतिक जगत के नियमों को समझने के लिए गणितीय भाषा का उपयोग किया, जिसने पाश्चात्य ज्ञान प्रणाली को गहराई से प्रभावित किया। इस प्रकार, भारतीय परंपरा में ज्ञान प्राप्ति का मार्ग अधिकतर आंतरिक है, जिसमें स्वयं की गहराई में उतरकर सत्य का साक्षात्कार किया

जाता है, जबकि पाश्चात्य परंपरा में ज्ञान प्राप्ति का मार्ग बाहरी है, जिसमें बाह्य जगत का अध्ययन करके सत्य को खोजा जाता है।

ज्ञान का उद्देश्य: मुक्ति बनाम प्रगति

भारतीय और पाश्चात्य ज्ञान प्रणालियों के बीच एक अन्य महत्वपूर्ण अंतर उनके ज्ञान के उद्देश्य में निहित है। भारतीय परंपरा में ज्ञान का मुख्य उद्देश्य मोक्ष या मुक्ति प्राप्त करना है, जबकि पाश्चात्य परंपरा में ज्ञान का मुख्य उद्देश्य भौतिक प्रगति और प्रकृति पर नियंत्रण प्राप्त करना है। भारतीय दर्शन के विभिन्न स्कूलों में, जैसे वेदांत, योग, बौद्ध धर्म और जैन धर्म, ज्ञान को संसार के बंधनों से मुक्ति का साधन माना जाता है। उपनिषदों में कहा गया है: "तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" (उसे जानकर ही मृत्यु से पार जाया जा सकता है, मुक्ति का कोई अन्य मार्ग नहीं है)। यहाँ ज्ञान का अर्थ केवल बौद्धिक समझ नहीं, बल्कि आध्यात्मिक साक्षात्कार है, जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानता है और दुःख और जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त होता है। भारतीय परंपरा में ज्ञान को "विद्या" कहा जाता है, जिसका शाब्दिक अर्थ है "जो प्रकाशित करे"। यह अज्ञान (अविद्या) के अंधकार को दूर करके आत्म-साक्षात्कार की ओर ले जाता है। इसलिए, भारतीय परंपरा में ज्ञान का अंतिम लक्ष्य आध्यात्मिक उन्नति, आत्म-साक्षात्कार और मोक्ष प्राप्ति है। इसके विपरीत, पाश्चात्य परंपरा में, विशेष रूप से आधुनिक काल में, ज्ञान का मुख्य उद्देश्य प्रकृति को समझना, उस पर नियंत्रण प्राप्त करना और भौतिक जीवन को बेहतर बनाना है। फ्रांसिस बेकन का प्रसिद्ध कथन "ज्ञान शक्ति है" (Knowledge is power) इस दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करता है। यहाँ ज्ञान को प्रकृति के नियमों को समझने और उनका उपयोग मानव कल्याण के लिए करने का साधन माना जाता है।

पाश्चात्य परंपरा में, ज्ञान का उद्देश्य प्रौद्योगिकी विकास, आर्थिक प्रगति और जीवन स्तर में सुधार से जुड़ा हुआ है। वैज्ञानिक अनुसंधान, तकनीकी नवाचार और औद्योगिक विकास इस उद्देश्य को प्राप्त करने के साधन हैं। यहाँ ज्ञान को समाज के भौतिक और आर्थिक विकास का आधार माना जाता है। इस प्रकार, भारतीय परंपरा में ज्ञान का उद्देश्य मुख्य रूप से आध्यात्मिक है, जिसका लक्ष्य व्यक्ति को अज्ञान और बंधन से मुक्त करना है, जबकि पाश्चात्य परंपरा में ज्ञान का उद्देश्य मुख्य रूप से भौतिक है, जिसका लक्ष्य प्रकृति पर नियंत्रण प्राप्त करके मानव जीवन को सुविधाजनक बनाना है।

सत्य की प्रकृति: एकात्मकता बनाम द्वैतवाद

भारतीय और पाश्चात्य ज्ञान प्रणालियों में सत्य की प्रकृति के बारे में भी मौलिक अंतर है। भारतीय दर्शन में सत्य को एकात्मक और अखंड माना जाता है, जबकि पाश्चात्य दर्शन में अधिकतर द्वैतवादी दृष्टिकोण प्रचलित है। भारतीय दर्शन, विशेष रूप से अद्वैत वेदांत में, ब्रह्म को एकमात्र सत्य माना जाता है और जगत को उसकी अभिव्यक्ति या माया (भ्रम) माना जाता है। आदि शंकराचार्य के अनुसार, "ब्रह्म सत्यं जगत्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः" (ब्रह्म ही सत्य है, जगत मिथ्या है, और जीव (आत्मा) ब्रह्म से अभिन्न है)। यहाँ, सत्य को विभाजित या खंडित नहीं किया जा सकता; यह एक अखंड एकता है। भारतीय परंपरा में विविध दार्शनिक स्कूल हैं, जिनमें सत्य की प्रकृति के बारे में अलग-अलग दृष्टिकोण हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, द्वैत वेदांत जीव और ब्रह्म के बीच कुछ अंतर मानता है, और सांख्य दर्शन पुरुष (चेतना) और प्रकृति (भौतिक जगत) के बीच मौलिक अंतर को स्वीकार करता है। फिर भी, भारतीय दर्शन में सामान्यतः सत्य को समग्र और अखंड माना जाता है, जहाँ विभाजन और द्वैत अंततः एक उच्चतर एकता में विलीन हो जाते हैं।

इसके विपरीत, पाश्चात्य दर्शन में, विशेष रूप से आधुनिक काल में, द्वैतवादी दृष्टिकोण अधिक प्रचलित है। रेने डेकार्ट ने मन और पदार्थ के बीच एक मौलिक विभाजन की कल्पना की, जिसे कार्तेसियन द्वैतवाद कहा जाता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार, मन और पदार्थ दो अलग-अलग पदार्थ हैं जिनके अपने-अपने नियम और गुण हैं। पाश्चात्य विज्ञान में भी अधिकतर विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण अपनाया जाता है, जिसमें जटिल प्रणालियों को उनके सरल घटकों में विभाजित किया जाता है। यह रिडक्शनिज्म (उन्नयनवाद) कहलाता है, जिसमें यह माना जाता है कि किसी भी प्रणाली को समझने के लिए उसके सबसे छोटे घटकों का अध्ययन करना आवश्यक है। इस प्रकार, पाश्चात्य परंपरा में सत्य को अक्सर खंडित और विभाजित रूप में देखा जाता है। हालांकि, यह ध्यान देने योग्य है कि आधुनिक विज्ञान, विशेष रूप से क्वांटम भौतिकी और पर्यावरणीय विज्ञान के क्षेत्र में, अब अधिक समग्र और अंतर्संबंधित दृष्टिकोण की ओर बढ़ रहा है, जो कुछ हद तक भारतीय दर्शन के एकात्मक दृष्टिकोण के करीब है। सत्य की प्रकृति के बारे में यह अंतर दोनों ज्ञान प्रणालियों के दृष्टिकोण और पद्धतियों को प्रभावित करता है। भारतीय परंपरा में, ज्ञान को संपूर्णता में देखा जाता है, जहाँ विभिन्न शाखाएँ एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं और एक समग्र समझ की ओर ले जाती हैं। पाश्चात्य परंपरा में, ज्ञान को अधिकतर विशिष्ट विषयों और क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है, जिनका अध्ययन अलग-अलग किया जाता है।

जीवन का उद्देश्य: धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष बनाम भौतिक सफलता

भारतीय और पाश्चात्य ज्ञान प्रणालियों में जीवन के उद्देश्य के बारे में भी महत्वपूर्ण अंतर है। भारतीय परंपरा में जीवन के चार पुरुषार्थ (लक्ष्य) माने जाते हैं: धर्म (नैतिक कर्तव्य), अर्थ (भौतिक समृद्धि), काम (इच्छाओं की पूर्ति) और मोक्ष (आध्यात्मिक मुक्ति)। इनमें से मोक्ष को सर्वोच्च पुरुषार्थ माना जाता है। इसके विपरीत, पाश्चात्य परंपरा में जीवन का उद्देश्य अधिकतर भौतिक सफलता, व्यक्तिगत आनंद और सामाजिक प्रगति से जुड़ा हुआ है। भारतीय परंपरा में, धर्म का अर्थ केवल धार्मिक विश्वास नहीं, बल्कि एक व्यापक नैतिक और सामाजिक व्यवस्था है जो व्यक्ति, परिवार, समाज और विश्व के बीच संतुलन बनाए रखती है। धर्म के माध्यम से व्यक्ति अपने कर्तव्यों का पालन करता है और सामाजिक व्यवस्था में अपना योगदान देता है। अर्थ और काम, जो क्रमशः भौतिक समृद्धि और इच्छाओं की पूर्ति से संबंधित हैं, भी जीवन के महत्वपूर्ण पहलू माने जाते हैं, लेकिन उन्हें धर्म के नियंत्रण में रखा जाता है। यानी, भौतिक समृद्धि और इच्छाओं की पूर्ति नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के अनुरूप होनी चाहिए।

अंततः, मोक्ष, जो आत्मा की अज्ञान और बंधन से मुक्ति है, जीवन का परम लक्ष्य माना जाता है। भागवत गीता में कृष्ण कहते हैं: "बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते" (अनेक जन्मों के अंत में, ज्ञानी पुरुष मुझे प्राप्त होता है)। यहाँ, ज्ञान का अर्थ परम सत्य का साक्षात्कार है, जो मोक्ष की ओर ले जाता है। इसके विपरीत, पाश्चात्य परंपरा में, जीवन का उद्देश्य अधिकतर इहलौकिक सफलता, व्यक्तिगत आनंद और सामाजिक प्रगति से जुड़ा हुआ है। यहाँ, सफलता को अक्सर भौतिक संपत्ति, सामाजिक प्रतिष्ठा और व्यक्तिगत उपलब्धियों के संदर्भ में परिभाषित किया जाता है। पाश्चात्य परंपरा में, विशेष रूप से प्रबोधन काल के बाद, व्यक्तिवाद, स्वतंत्रता और भौतिक प्रगति पर अधिक जोर दिया जाता है। यहाँ, ज्ञान को अक्सर व्यक्तिगत और सामूहिक भौतिक उन्नति का साधन माना जाता है। तकनीकी विकास, आर्थिक विकास और जीवन स्तर में सुधार पाश्चात्य समाज के मुख्य लक्ष्य रहे हैं। हालांकि, यह ध्यान देने योग्य है कि पाश्चात्य दर्शन में भी, विशेष रूप से प्राचीन यूनानी और रोमन काल में, सद्गुण, नैतिकता और आत्म-ज्ञान पर जोर दिया जाता था।

आत्म मूल्यांकन प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न (MCQs)

1. भारतीय ज्ञान परंपरा में 'दर्शन' शब्द का अर्थ क्या है?

a) आँखों से देखना

b) किसी वस्तु का अवलोकन करना

c) वास्तविकता को देखने का माध्यम

d) केवल धार्मिक अनुष्ठान

2. निम्नलिखित में से कौन-सा वेद सबसे प्राचीन माना जाता है?

a) यजुर्वेद

b) सामवेद

c) ऋग्वेद

d) अथर्ववेद

3. वेदांगों की कुल संख्या कितनी है?

a) चार

b) छः

c) आठ

d) दस

4. 'श्रुति' किसे कहा जाता है?

a) लिखित ग्रंथों को

b) सुनकर याद किया गया ज्ञान

c) तार्किक निष्कर्ष को

d) व्यक्तिगत अनुभवों को

5. षड्दर्शन में निम्नलिखित में से कौन-सा दर्शन शामिल नहीं है?

a) न्याय

b) वैशेषिक

c) योग

d) जैन

6. भारतीय ज्ञान परंपरा में 'प्रमाण' का क्या अर्थ है?

a) परीक्षा देना

b) ज्ञान प्राप्ति के साधन

c) धार्मिक नियम

d) मोक्ष प्राप्ति का मार्ग

7. निम्नलिखित में से कौन-सा वेदांग नहीं है?

a) शिक्षा

b) कल्प

c) मीमांसा

d) निरुक्त

8. 'तर्क' के माध्यम से ज्ञान प्राप्ति किस दर्शन का मूल आधार है?

a) न्याय दर्शन

b) वेदांत दर्शन

c) सांख्य दर्शन

d) वैशेषिक दर्शन

9. भारतीय और पाश्चात्य ज्ञान प्रणाली के बीच मुख्य अंतर क्या है?

a) विषय वस्तु

b) प्रयोजन एवं दृष्टिकोण

c) लिखित परंपरा

d) उत्पत्ति काल

10. उपवेदों की कुल संख्या कितनी मानी जाती है?

a) दो

b) चार

c) छः

d) आठ

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय ज्ञान प्रणाली की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं?
2. वेद और उपवेद में क्या अंतर है? संक्षेप में समझाइए।
3. षड्दर्शन के नाम लिखकर उनके मुख्य सिद्धांतों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
4. ज्ञान के चार स्रोत - श्रुति, स्मृति, तर्क और अनुभव को संक्षेप में समझाइए।
5. वेदांग क्या हैं और वे वेदों के अध्ययन में कैसे सहायक हैं?
6. भारतीय ज्ञान परंपरा में अनुभव का क्या महत्व है? उदाहरण सहित समझाइए।
7. भारतीय दर्शन में 'मोक्ष' की अवधारणा क्या है?
8. भारतीय ज्ञान प्रणाली में गुरु-शिष्य परंपरा का क्या महत्व है?
9. पाश्चात्य और भारतीय दर्शन के बीच ज्ञान प्राप्ति के तरीकों में क्या अंतर है?
10. पुराणों का भारतीय ज्ञान प्रणाली में क्या योगदान है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय ज्ञान प्रणाली की अवधारणा पर विस्तार से चर्चा कीजिए। इसके मूल तत्व और विशेषताएँ क्या हैं?
2. वेद, उपवेद, वेदांग और दर्शन के अंतर्संबंधों पर प्रकाश डालिए। भारतीय ज्ञान परंपरा में इनका क्या महत्व है?
3. ज्ञान के विभिन्न स्रोतों (श्रुति, स्मृति, तर्क और अनुभव) का विस्तृत विवेचन कीजिए। ये आधुनिक समय में कितने प्रासंगिक हैं?

4. भारतीय और पाश्चात्य ज्ञान प्रणालियों के बीच मूलभूत अंतरों का विश्लेषण कीजिए। क्या दोनों परस्पर पूरक हो सकते हैं?

5. षड्दर्शन की मूल मान्यताओं और सिद्धांतों का विस्तृत वर्णन करें। आधुनिक विज्ञान के संदर्भ में इनकी प्रासंगिकता पर चर्चा करें।

6. भारतीय ज्ञान परंपरा में 'प्रमाण' की अवधारणा का विस्तार से वर्णन कीजिए। विभिन्न दार्शनिक परंपराओं में इसका महत्व क्या है?

7. भारतीय ज्ञान प्रणाली का सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव - विस्तार से व्याख्या कीजिए।

8. "भारतीय ज्ञान परंपरा में अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय है।" इस कथन का विश्लेषण कीजिए।

9. वेदांगों के रूप में व्याकरण, निरुक्त और ज्योतिष के महत्व और योगदान पर विस्तार से चर्चा कीजिए।

10. भारतीय ज्ञान परंपरा में मौखिक और लिखित परंपरा के बीच संबंध का विश्लेषण कीजिए। ज्ञान के संरक्षण और प्रसार में इनकी भूमिका क्या रही है?

मॉड्यूल 2

वेद और वेदांग

उद्देश्य

- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद की संरचना और विषय-वस्तु को समझना।
- वेदों के साहित्यिक और दार्शनिक पक्षों का अध्ययन करना।
- वेदांगों – शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्योतिष – का परिचय प्राप्त करना।
- वेदों में निहित सामाजिक और नैतिक मूल्यों का विश्लेषण करना।
- उपनिषदों की प्रमुख अवधारणाओं, विशेषतः मोक्ष की संकल्पना, का विवेचन करना।
- षड्दर्शन, सांख्य और योग दर्शन की मूल विचारधारा को समझना।
- भारतीय ज्ञान प्रणाली में आत्मा, ब्रह्म, कर्म और पुनर्जन्म जैसी अवधारणाओं की व्याख्या करना।
- वेदों और वेदांगों की प्रासंगिकता को आज के संदर्भ में पहचानना।

इकाई 5: वेदों की संरचना: ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद

भारतीय संस्कृति और दर्शन की आधारशिला वेद हैं, जिन्हें अनादि ज्ञान का भंडार माना जाता है। वेदों को 'अपौरुषेय' कहा गया है, अर्थात वे किसी मनुष्य द्वारा रचित नहीं हैं, बल्कि ऋषियों ने अपनी तपस्या और साधना के माध्यम से इन्हें 'दृष्ट' या 'श्रुत' किया था। इसीलिए वेदों को 'श्रुति' भी कहा जाता है। परंपरागत रूप से, वेदों को चार भागों में विभाजित किया गया है - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। प्रत्येक वेद का अपना विशिष्ट महत्व, विषय-वस्तु और संरचना है। इस अध्याय में हम इन चारों वेदों की संरचना का विस्तृत अध्ययन करेंगे, जिससे हमें भारतीय वैदिक परंपरा की समृद्धि और गहराई को समझने में मदद मिलेगी। वेदों को मानव सभ्यता का प्राचीनतम ज्ञान माना जाता है। इनका संकलन एवं संरक्षण अत्यंत व्यवस्थित ढंग से किया गया था, जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि वैदिक ज्ञान की अक्षुण्णता बनी रहे। वेदों को मौखिक परंपरा के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी संरक्षित किया गया, जिसमें उच्चारण की शुद्धता पर विशेष ध्यान दिया जाता था। यह मौखिक परंपरा आज भी कुछ परिवारों और गुरुकुलों में जीवित है, जहां वेदों का पठन-पाठन परंपरागत विधि से किया जाता है। वेदों का महत्व केवल धार्मिक या आध्यात्मिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक, सामाजिक, वैज्ञानिक और दार्शनिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। वेदों में विभिन्न

विषयों पर ज्ञान का भंडार है, जिसमें खगोल विज्ञान, भौतिकी, रसायन शास्त्र, आयुर्वेद, गणित, संगीत, दर्शन, समाज विज्ञान और अन्य अनेक विषय शामिल हैं। वेदों की भाषा संस्कृत है, जो अपनी व्याकरणिक परिशुद्धता और वैज्ञानिक संरचना के लिए प्रसिद्ध है।

वेदों की संरचना को समझने के लिए, हमें यह जानना होगा कि प्रत्येक वेद संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद में विभाजित है। संहिता में मूल मंत्र होते हैं, ब्राह्मण में यज्ञों का विस्तृत विवरण होता है, आरण्यक में गूढ़ विषयों पर चर्चा होती है, और उपनिषदों में दार्शनिक विचार प्रस्तुत किए गए हैं। इस अध्याय में हम प्रत्येक वेद की संहिता, उसकी शाखाओं, और उसके अंतर्गत आने वाले ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों का विस्तृत विवेचन करेंगे। साथ ही, हम प्रत्येक वेद की विशिष्ट विशेषताओं, उसके महत्व और भारतीय संस्कृति और दर्शन पर उसके प्रभाव पर भी प्रकाश डालेंगे।

ऋग्वेद: वैदिक ज्ञान का प्रथम स्तंभ

ऋग्वेद वेदों में सबसे प्राचीन और महत्वपूर्ण माना जाता है। 'ऋक्' शब्द का अर्थ है 'स्तुति' या 'प्रार्थना', और इस प्रकार ऋग्वेद को स्तुति मंत्रों का संग्रह कहा जा सकता है। ऋग्वेद की रचना का काल अनुमानतः 1500 ईसा पूर्व से 1000 ईसा पूर्व के बीच माना जाता है, हालांकि कई विद्वान इसे इससे भी प्राचीन मानते हैं। ऋग्वेद में 10 मंडल, 1028 सूक्त और लगभग 10,600 मंत्र हैं। प्रत्येक मंडल में कई सूक्त हैं, और प्रत्येक सूक्त में कई मंत्र हैं। इन मंत्रों में विभिन्न देवताओं की स्तुति की गई है, जिनमें इंद्र, अग्नि, वरुण, मित्र, रुद्र, उषा, सूर्य, सोम आदि प्रमुख हैं। ऋग्वेद की संरचना अत्यंत व्यवस्थित है। यह दस मंडलों में विभाजित है, जिन्हें अनुक्रमिक संख्या से जाना जाता है - पहला मंडल, दूसरा मंडल, और इसी प्रकार आगे। इन मंडलों का संकलन विभिन्न ऋषि परिवारों द्वारा किया गया था। दूसरे से सातवें मंडल को 'परिवार मंडल' कहा जाता है, क्योंकि इनका संकलन विशिष्ट ऋषि परिवारों द्वारा किया गया था - जैसे दूसरा मंडल गृत्समद ऋषि परिवार का है, तीसरा विश्वामित्र परिवार का, चौथा वामदेव परिवार का, पांचवां अत्रि परिवार का, छठा भरद्वाज परिवार का और सातवां वसिष्ठ परिवार का। पहला, आठवां, नवां और दसवां मंडल संकलित मंडल हैं, जिनमें विभिन्न ऋषियों के सूक्त संकलित हैं। ऋग्वेद के मंडलों की आंतरिक व्यवस्था भी उल्लेखनीय है। परिवार मंडलों में, सूक्तों की व्यवस्था देवताओं के अनुसार की गई है - पहले अग्नि से संबंधित सूक्त, फिर इंद्र से संबंधित, और अंत में अन्य देवताओं से संबंधित सूक्त। प्रत्येक देवता के अंतर्गत,

सूक्त बड़े से छोटे क्रम में व्यवस्थित हैं, अर्थात पहले अधिक मंत्रों वाले सूक्त और फिर कम मंत्रों वाले। यह व्यवस्था ऋग्वेद के संरक्षण और पठन-पाठन में सहायक थी।

ऋग्वेद का पहला मंडल एक विविध संग्रह है, जिसमें 191 सूक्त हैं। इस मंडल में अग्नि, इंद्र, मरुत, आदित्य, विश्वेदेवा, ऋभु, अश्विनौ आदि देवताओं की स्तुति के सूक्त हैं। यह मंडल अपनी विषय-वस्तु की विविधता के लिए जाना जाता है। इसमें प्रसिद्ध नदी सूक्त (10.75) भी है, जिसमें सरस्वती, सिंधु और अन्य नदियों की स्तुति की गई है। इस मंडल में अग्नि सूक्त (1.1) से लेकर विविध देवताओं के सूक्त तक का समावेश है। ऋग्वेद का दूसरा मंडल गृत्समद ऋषि परिवार का है। इसमें 43 सूक्त हैं, जिनमें मुख्य रूप से अग्नि और इंद्र की स्तुति है। इस मंडल की विशेषता यह है कि इसमें 'ब्रह्मानस्पति' देवता के सूक्त भी हैं, जो आगे चलकर ब्राह्मण धर्म के महत्वपूर्ण देवता बने। इस मंडल में प्रकृति के विभिन्न तत्वों का भी वर्णन है, जैसे सूर्य, उषा, रात्रि आदि। गृत्समद ऋषि की रचनाओं में वैदिक दर्शन की झलक मिलती है। ऋग्वेद का तीसरा मंडल विश्वामित्र ऋषि परिवार का है। इसमें 62 सूक्त हैं। इस मंडल की सबसे उल्लेखनीय विशेषता 'गायत्री मंत्र' है, जो ऋग्वेद के तीसरे मंडल के 62वें सूक्त के 10वें मंत्र में है। यह मंत्र सूर्य देवता सविता की स्तुति करता है और हिंदू धर्म का सबसे पवित्र मंत्र माना जाता है। इस मंडल में विश्वामित्र और वसिष्ठ के बीच प्रतिद्वंद्विता के संकेत भी मिलते हैं, जो भारतीय महाकाव्यों में भी दर्शाई गई है।

ऋग्वेद का चौथा मंडल वामदेव ऋषि परिवार का है। इसमें 58 सूक्त हैं, जिनमें अधिकांश इंद्र और अग्नि की स्तुति में हैं। इस मंडल में 'पुरुष सूक्त' का संदर्भ भी मिलता है, जो आगे दसवें मंडल में पूर्ण रूप से विकसित हुआ। इस मंडल में जीवन और मृत्यु के दार्शनिक विचारों का भी उल्लेख है। वामदेव ऋषि ने अपने सूक्तों में आत्मा की अमरता और पुनर्जन्म के सिद्धांतों का भी वर्णन किया है। ऋग्वेद का पांचवां मंडल अत्रि ऋषि परिवार का है। इसमें 87 सूक्त हैं। इस मंडल की विशेषता यह है कि इसमें विश्वेदेवा (सभी देवता) के सूक्त अधिक हैं। इसमें सूर्य, मित्र, वरुण, मरुत, अश्विनौ आदि देवताओं की स्तुति भी है। अत्रि ऋषि परिवार ने विशेष रूप से सूर्य देवता की उपासना पर बल दिया है। इस मंडल में कई औषधि सूक्त भी हैं, जो आयुर्वेद के प्रारंभिक रूप को दर्शाते हैं। ऋग्वेद का छठा मंडल भरद्वाज ऋषि परिवार का है। इसमें 75 सूक्त हैं, जिनमें अधिकांश अग्नि, इंद्र और मरुत की स्तुति में हैं। इस मंडल में इंद्र के वृत्रासुर वध का विस्तृत वर्णन है, जो वैदिक मिथकों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। भरद्वाज ऋषि ने अपने सूक्तों में युद्ध और शांति दोनों पर विचार किया है। इस मंडल में कृषि, पशुपालन और अन्य व्यावहारिक विषयों पर भी सूक्त हैं। ऋग्वेद का सातवां मंडल वसिष्ठ ऋषि परिवार का है। इसमें 104 सूक्त हैं। इस मंडल में वरुण

देवता के सूक्त विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। वरुण को नैतिक व्यवस्था का देवता माना जाता है, और वसिष्ठ ऋषि ने उनकी स्तुति में गहरे दार्शनिक विचारों को व्यक्त किया है। इस मंडल में 'ऋत' (कॉस्मिक ऑर्डर) की अवधारणा पर भी विचार किया गया है, जो वैदिक दर्शन का मूल है।

ऋग्वेद का आठवां मंडल कण्व और अंगिरस ऋषि परिवारों का है। इसमें 103 सूक्त हैं। इस मंडल की विशेषता यह है कि इसमें 'प्रगाथ' नामक छंद का प्रयोग अधिक है। इस मंडल में सोम देवता के सूक्त भी अधिक हैं। सोम एक पवित्र पेय था, जिसका प्रयोग यज्ञों में किया जाता था और इसे देवत्व का प्रतीक माना जाता था। इस मंडल में ऐश्वर्य, समृद्धि और आनंद की कामना करने वाले सूक्त भी हैं। ऋग्वेद का नवां मंडल विशेष रूप से सोम देवता को समर्पित है। इसमें 114 सूक्त हैं, जिनमें से अधिकांश सोम पवमान (पवित्र सोम) की स्तुति में हैं। इस मंडल की एक विशेषता यह है कि इसके सभी सूक्त समान छंद (गायत्री) में हैं। सोम देवता आनंद, उत्साह और रचनात्मकता के प्रतीक हैं, और इस मंडल के सूक्त यज्ञों में सोम के महत्व को दर्शाते हैं। ऋग्वेद का दसवां मंडल सबसे बड़ा और विविधतापूर्ण है। इसमें 191 सूक्त हैं, जिनमें विभिन्न विषयों पर विचार किया गया है। इस मंडल में वैदिक दर्शन के कुछ सबसे महत्वपूर्ण सूक्त हैं, जैसे पुरुष सूक्त (10.90), नासदीय सूक्त (10.129), और हिरण्यगर्भ सूक्त (10.121)। पुरुष सूक्त में विराट पुरुष (कॉस्मिक बीइंग) के बलिदान से सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है। नासदीय सूक्त में सृष्टि के आरंभ के बारे में गहन दार्शनिक प्रश्न उठाए गए हैं। हिरण्यगर्भ सूक्त में सृष्टि के आदि कारण के रूप में हिरण्यगर्भ (गोल्डन एम्ब्रियो) का वर्णन है। ऋग्वेद में एक महत्वपूर्ण सूक्त 'संवाद सूक्त' भी हैं, जिनमें देवताओं, ऋषियों या अन्य पात्रों के बीच संवाद प्रस्तुत किए गए हैं। इनमें यम-यमी संवाद (10.10), पुरूरवा-उर्वशी संवाद (10.95), और सरमा-पणि संवाद (10.108) प्रमुख हैं। ये संवाद न केवल धार्मिक महत्व के हैं, बल्कि इनमें प्राचीन भारतीय समाज और संस्कृति के बारे में भी महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है।

ऋग्वेद की शाखाएँ या 'शाखा संहिताएँ' भी हैं, जो विभिन्न क्षेत्रों में विकसित हुईं। शाकल शाखा सबसे प्रसिद्ध है और आज भी उपलब्ध है। अन्य शाखाओं में बाष्कल, आश्वलायन, शाङ्खायन और माण्डूकायनी शामिल हैं, लेकिन ये या तो खो गई हैं या केवल अंशों में उपलब्ध हैं। ऋग्वेद के साथ कई ब्राह्मण ग्रंथ जुड़े हैं, जिनमें ऐतरेय ब्राह्मण और कौषीतकि ब्राह्मण प्रमुख हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में 40 अध्याय हैं, जिनमें विभिन्न यज्ञों का विस्तृत विवरण है। कौषीतकि ब्राह्मण में 30 अध्याय हैं। इन ब्राह्मण ग्रंथों में यज्ञों के विधि-विधान, उनका महत्व, और उनके दार्शनिक पहलुओं पर विचार किया गया है। ऋग्वेद से संबंधित आरण्यक ग्रंथों में ऐतरेय आरण्यक और शाङ्खायन (या कौषीतकि) आरण्यक प्रमुख हैं। ऐतरेय आरण्यक में 5 आरण्यक हैं,

जिनमें वैदिक अनुष्ठानों के गूढ़ अर्थों पर विचार किया गया है। इसका तीसरा आरण्यक ऐतरेय उपनिषद के रूप में जाना जाता है।

ऋग्वेद से संबंधित प्रमुख उपनिषद ऐतरेय उपनिषद और कौषीतकि उपनिषद हैं। ऐतरेय उपनिषद में 3 अध्याय हैं, जिनमें आत्मा, ब्रह्म और सृष्टि के बारे में दार्शनिक विचार प्रस्तुत किए गए हैं। कौषीतकि उपनिषद में 4 अध्याय हैं, जिनमें आत्मा के स्वरूप, ज्ञान के मार्ग और मोक्ष के बारे में विचार किया गया है। ऋग्वेद का महत्व केवल धार्मिक या आध्यात्मिक नहीं है। इसमें प्राचीन भारतीय समाज, संस्कृति, इतिहास, भूगोल, राजनीति, अर्थव्यवस्था, विज्ञान और कला के बारे में भी अमूल्य जानकारी है। ऋग्वेद के अध्ययन से हमें प्राचीन भारतीय सभ्यता की समृद्धि और गहराई का पता चलता है। इसके अलावा, ऋग्वेद में वर्णित दार्शनिक विचार आज भी प्रासंगिक हैं और मानव जीवन के मूलभूत प्रश्नों से जुड़े हुए हैं।

यजुर्वेदः यज्ञ विद्या का विस्तृत प्रतिपादन

यजुर्वेद वेदों में दूसरा वेद है, जिसका मुख्य विषय यज्ञों के विधि-विधान हैं। 'यजुस्' शब्द का अर्थ है 'यज्ञ' या 'पूजा', और इस प्रकार यजुर्वेद को यज्ञों के मंत्रों का संग्रह कहा जा सकता है। यजुर्वेद में यज्ञों में उच्चारित किए जाने वाले मंत्र और यज्ञों की विधियों का विस्तृत विवरण है। यजुर्वेद की रचना का काल अनुमानतः 1000 ईसा पूर्व से 800 ईसा पूर्व के बीच माना जाता है, हालांकि इसके कई मंत्र ऋग्वेद से लिए गए हैं और अधिक प्राचीन हैं। यजुर्वेद की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह दो मुख्य भागों में विभाजित है - कृष्ण यजुर्वेद और शुक्ल यजुर्वेद। कृष्ण यजुर्वेद को 'तैत्तिरीय संहिता' भी कहा जाता है, और शुक्ल यजुर्वेद को 'वाजसनेयी संहिता'। यह विभाजन मंत्रों की प्रकृति और संगठन के आधार पर किया गया है। कृष्ण यजुर्वेद में मंत्रों के साथ-साथ उनकी व्याख्या भी शामिल है, जबकि शुक्ल यजुर्वेद में केवल मंत्र हैं और उनकी व्याख्या अलग ब्राह्मण ग्रंथों में है। कृष्ण यजुर्वेद की मुख्य शाखाएँ तैत्तिरीय, मैत्रायणी, कठ और कपिष्ठल हैं। इनमें से तैत्तिरीय शाखा सबसे प्रसिद्ध और अधिक प्रचलित है। तैत्तिरीय संहिता में 7 कांड, 44 प्रपाठक, 651 अनुवाक और लगभग 2198 मंत्र हैं। प्रत्येक कांड अपने विषय के अनुसार नामित है, जैसे पहला कांड 'दर्शपूर्णमास' (नवचंद्र और पूर्णिमा के यज्ञ), दूसरा 'चातुर्मास्य' (ऋतु परिवर्तन के यज्ञ), तीसरा 'अश्वमेध' (अश्वमेध यज्ञ), चौथा 'सोम' (सोम यज्ञ), पांचवां 'अग्निहोत्र' (अग्नि यज्ञ), छठा 'प्रायश्चित्त' (प्रायश्चित विधियां) और सातवां 'सत्र' (लंबे यज्ञ)।

मैत्रायणी संहिता में 4 कांड हैं, जिन्हें प्रपाठकों में विभाजित किया गया है। इस संहिता में कई प्राचीन विधियों और अनुष्ठानों का उल्लेख है, जो अन्य वैदिक संहिताओं में नहीं मिलते। कठ संहिता का अधिकांश भाग खो गया है, लेकिन इसके कुछ अंश अभी भी उपलब्ध हैं। इसी प्रकार, कपिष्ठल संहिता भी अधिकांश रूप से लुप्त हो गई है। शुक्ल यजुर्वेद की प्रमुख शाखा वाजसनेयी है, जिसके दो उपभेद हैं - माध्यंदिन और कण्व। वाजसनेयी संहिता में 40 अध्याय और लगभग 1975 मंत्र हैं। इन अध्यायों में विभिन्न प्रकार के यज्ञों, जैसे दर्शपूर्णमास, अग्निहोत्र, सोम, वाजपेय, राजसूय, अश्वमेध आदि का विस्तृत विवरण है। वाजसनेयी संहिता का अंतिम अध्याय 'ईशावास्योपनिषद्' है, जो एक प्रसिद्ध उपनिषद है और शुक्ल यजुर्वेद का अभिन्न अंग माना जाता है। यजुर्वेद की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें यज्ञों की क्रियाविधि का विस्तृत और व्यवस्थित वर्णन है। यजुर्वेद में यज्ञों के प्रकार, उनके आयोजन का समय, यज्ञों में प्रयुक्त सामग्री, यज्ञ मंडप की रचना, यज्ञ के अधिकारी (याजक), यज्ञ में देवताओं का आह्वान, विभिन्न अनुष्ठानों का क्रम, मंत्रों का उच्चारण, दक्षिणा, प्रायश्चित्त आदि सभी पहलुओं का विस्तृत विवरण है।

यजुर्वेद में वर्णित प्रमुख यज्ञ हैं - अग्निहोत्र (प्रतिदिन अग्नि में आहुति देना), दर्शपूर्णमास (अमावस्या और पूर्णिमा पर किए जाने वाले यज्ञ), चातुर्मास्य (चार महीनों पर किए जाने वाले यज्ञ), आग्रयण (नई फसल के समय किया जाने वाला यज्ञ), निरूढ़ पशुबंध (पशु यज्ञ), सौत्रामणि (इंद्र के लिए किया जाने वाला यज्ञ), अश्वमेध (राजा की सार्वभौमिकता के लिए किया जाने वाला यज्ञ), राजसूय (राज्याभिषेक के समय किया जाने वाला यज्ञ), वाजपेय (वर्चस्व और सत्ता प्राप्ति के लिए किया जाने वाला यज्ञ) और सर्वमेध (सभी प्रकार के यज्ञों का समावेश)। यजुर्वेद के ब्राह्मण ग्रंथों में शतपथ ब्राह्मण सबसे प्रसिद्ध है, जो शुक्ल यजुर्वेद से संबंधित है। शतपथ ब्राह्मण में 14 कांड, 100 अध्याय और 68 प्रपाठक हैं। यह विश्व का सबसे बड़ा ब्राह्मण ग्रंथ है और इसमें यज्ञों की विस्तृत व्याख्या के साथ-साथ दार्शनिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक और सामाजिक विषयों पर भी चर्चा है। शतपथ ब्राह्मण में वर्णित कई कथाएँ, जैसे मनु और मत्स्य, प्रजापति और उषा, पुरूरवा और उर्वशी आदि, भारतीय साहित्य और संस्कृति का अभिन्न अंग बन गई हैं। कृष्ण यजुर्वेद के प्रमुख ब्राह्मण ग्रंथ हैं - तैत्तिरीय ब्राह्मण, वैतान ब्राह्मण और सत्याषाढ़ ब्राह्मण। तैत्तिरीय ब्राह्मण में 3 कांड और 38 अनुवाक हैं, जिनमें विभिन्न यज्ञों का विवरण है। वैतान और सत्याषाढ़ ब्राह्मण कम प्रचलित हैं और इनके केवल कुछ अंश ही उपलब्ध हैं।

यजुर्वेद से संबंधित आरण्यक ग्रंथों में तैत्तिरीय आरण्यक और बृहदारण्यक प्रमुख हैं। तैत्तिरीय आरण्यक में 10 प्रपाठक हैं, जिनमें से 7वें से 9वें प्रपाठक तैत्तिरीय उपनिषद के रूप में जाने जाते हैं। बृहदारण्यक

शतपथ ब्राह्मण के अंतिम 6 अध्यायों को कहा जाता है और यह एक महत्वपूर्ण उपनिषद भी है। यजुर्वेद से जुड़े प्रमुख उपनिषद हैं - ईशावास्य, बृहदारण्यक, तैत्तिरीय, कठ, श्वेताश्वतर, मैत्रायणी और मैत्री। इन उपनिषदों में वैदिक दर्शन के गूढ़ सिद्धांतों पर विचार किया गया है। ईशावास्य उपनिषद वाजसनेयी संहिता का 40वां अध्याय है और इसमें ईश्वर की सर्वव्यापकता का सिद्धांत प्रतिपादित किया गया है। बृहदारण्यक उपनिषद में आत्मा, ब्रह्म, सृष्टि, विद्या-अविद्या, कर्म-संस्कार आदि विषयों पर गहन विचार किया गया है। तैत्तिरीय उपनिषद में पंचकोश सिद्धांत (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय कोश) का प्रतिपादन है। कठ उपनिषद में यम और नचिकेता के संवाद के माध्यम से आत्मा की अमरता और मोक्ष के मार्ग पर प्रकाश डाला गया है। श्वेताश्वतर उपनिषद में ईश्वर, आत्मा और प्रकृति के संबंधों पर विचार किया गया है। यजुर्वेद का महत्व केवल यज्ञिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं है। इसमें वर्णित यज्ञों का गहरा सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक महत्व है। यज्ञ केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं थे, बल्कि वे समाज में सामंजस्य, सहभागिता और साझा मूल्यों को बढ़ावा देने का माध्यम भी थे। राजसूय और अश्वमेध जैसे यज्ञ राजनीतिक एकता और शक्ति के प्रतीक थे। इसके अलावा, यजुर्वेद में वर्णित अनेक दार्शनिक विचार, जैसे 'अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः' (यज्ञ इस विश्व का केंद्र है), मानव और प्रकृति के बीच संबंधों की गहरी समझ को दर्शाते हैं।

यजुर्वेद में वर्णित यज्ञों की प्रक्रिया अत्यंत वैज्ञानिक है। इनमें प्रयुक्त सामग्री, जैसे विभिन्न प्रकार की लकड़ियां, औषधियां, घी, दूध आदि, वातावरण को शुद्ध करने और सकारात्मक ऊर्जा उत्पन्न करने में सहायक होती हैं। आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान भी इस बात की पुष्टि करते हैं कि यज्ञों में प्रयुक्त सामग्री वायुमंडल में विभिन्न हानिकारक कीटाणुओं और प्रदूषकों को नष्ट करने में सक्षम है। यजुर्वेद के अध्ययन से प्राचीन भारतीय समाज, धर्म, राजनीति, अर्थव्यवस्था और विज्ञान के बारे में अमूल्य जानकारी मिलती है। यह हमें बताता है कि प्राचीन भारतीय संस्कृति कितनी समृद्ध और विकसित थी। यजुर्वेद में वर्णित यज्ञिक अनुष्ठान आज भी भारतीय धार्मिक परंपरा का अभिन्न अंग हैं, और इनके माध्यम से प्राचीन वैदिक परंपरा आज भी जीवित है।

सामवेदः वैदिक संगीत का दिव्य संधान

सामवेद वेदों में तीसरा वेद है, जिसका मुख्य विषय संगीत है। 'साम' शब्द का अर्थ है 'मेलोडी' या 'संगीत', और इस प्रकार सामवेद को वैदिक संगीत का ग्रंथ कहा जा सकता है। सामवेद में ऋग्वेद के मंत्रों को

संगीतबद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है। इन मंत्रों को विशेष स्वरों और लयों के साथ गाया जाता था, जिससे यज्ञों में आध्यात्मिक वातावरण उत्पन्न होता था। सामवेद की रचना का काल अनुमानतः 1000 ईसा पूर्व से 800 ईसा पूर्व के बीच माना जाता है। सामवेद की संरचना अन्य वेदों से भिन्न है। इसमें दो मुख्य भाग हैं - आर्चिक और गान। आर्चिक में मंत्र हैं, जिन्हें आगे दो भागों में विभाजित किया गया है - पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक। पूर्वार्चिक में अग्नि, इंद्र और सोम देवताओं के मंत्र हैं, जबकि उत्तरार्चिक में अन्य देवताओं के मंत्र हैं। गान भाग में इन्हीं मंत्रों को विभिन्न रागों और स्वरों में गाने की विधि बताई गई है।

सामवेद में कुल 1875 मंत्र हैं, जिनमें से लगभग 1771 मंत्र ऋग्वेद से लिए गए हैं। केवल 99 मंत्र ऐसे हैं जो ऋग्वेद में नहीं मिलते। हालांकि, इन मंत्रों को गाने के लिए विशेष स्वरों, लयों और रागों का प्रयोग किया जाता था, जो सामवेद की विशिष्ट देन है। सामवेद के मंत्रों को 'साम' कहा जाता है, और इन्हें गाने वाले ऋत्विज को 'उद्गाता' कहा जाता है। सामवेद की प्रमुख शाखाएँ रानायनीय, कौथुमीय और जैमिनीय हैं। इनमें से कौथुमीय और जैमिनीय शाखाएँ अधिक प्रचलित हैं, जबकि रानायनीय शाखा लगभग लुप्त हो गई है। कौथुमीय शाखा में 585 साम हैं, जिन्हें विभिन्न देवताओं के अनुसार व्यवस्थित किया गया है। जैमिनीय शाखा में 1687 साम हैं, और इसकी संरचना कौथुमीय से भिन्न है।

सामवेद में संगीत के सात स्वर - षड्ज (सा), ऋषभ (रे), गांधार (ग), मध्यम (म), पंचम (प), धैवत (ध) और निषाद (नि) का उल्लेख मिलता है। ये स्वर आधुनिक भारतीय शास्त्रीय संगीत के आधार हैं। सामवेद में वर्णित 'साम' के गायन की तीन शैलियाँ हैं - ग्रामगेय गान (गाँव में गाए जाने वाले), आरण्यक गान (वन में गाए जाने वाले) और ऊह गान (अंतरिक्ष में गाए जाने वाले)। सामवेद के प्रमुख ब्राह्मण ग्रंथ हैं - तांड्य महाब्राह्मण (या पंचविंश ब्राह्मण), षड्विंश ब्राह्मण, सामविधान ब्राह्मण, आर्षेय ब्राह्मण, देवताध्याय ब्राह्मण और वंश ब्राह्मण। तांड्य महाब्राह्मण सबसे बड़ा है और इसमें 25 प्रपाठक हैं, जिनमें विभिन्न यज्ञों में साम गायन के विधि-विधान का वर्णन है। षड्विंश ब्राह्मण तांड्य का शेष भाग माना जाता है और इसमें 5 प्रपाठक हैं। सामवेद से संबंधित आरण्यक ग्रंथ है - छांदोग्य आरण्यक, जिसका अधिकांश भाग छांदोग्य उपनिषद के रूप में प्रसिद्ध है। सामवेद के प्रमुख उपनिषद हैं - छांदोग्य और केन। छांदोग्य उपनिषद में 8 प्रपाठक हैं और यह वैदिक दर्शन का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें 'तत् त्वम् असि' (वह तू है), 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (सब कुछ ब्रह्म है) जैसे महावाक्य हैं। केन उपनिषद में ब्रह्म के स्वरूप और उसकी प्राप्ति के मार्ग पर प्रकाश डाला गया है।

सामवेद का महत्व इसलिए भी अधिक है क्योंकि इससे भारतीय शास्त्रीय संगीत का विकास हुआ। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है - "वेदानां सामवेदोऽस्मि" (वेदों में मैं सामवेद हूँ), जो इस वेद के महत्व को दर्शाता है। सामवेद में वर्णित संगीत न केवल मनोरंजन के लिए था, बल्कि इसका आध्यात्मिक महत्व भी था। यह माना जाता था कि सामगान से देवता प्रसन्न होते हैं और यज्ञों की सफलता सुनिश्चित होती है। सामवेद के अध्ययन से प्राचीन भारतीय संगीत, कला, संस्कृति और आध्यात्मिकता के बारे में अमूल्य जानकारी मिलती है। यह हमें बताता है कि प्राचीन भारत में संगीत को कितना महत्व दिया जाता था और कैसे इसे आध्यात्मिक विकास का माध्यम माना जाता था। सामवेद की परंपरा आज भी भारतीय शास्त्रीय संगीत में जीवित है, और इसके माध्यम से प्राचीन वैदिक संगीत की विरासत आज भी हमारे साथ है।

अथर्ववेद: प्राचीन विज्ञान और जीवन-कला का समावेश

अथर्ववेद वेदों में चौथा और अंतिम वेद है, जिसका मुख्य विषय जीवन के व्यावहारिक पहलू हैं। 'अथर्वन्' शब्द का अर्थ है 'स्थिर' या 'अचल', और इस प्रकार अथर्ववेद को जीवन में स्थिरता और कल्याण प्राप्त करने का ग्रंथ कहा जा सकता है। अथर्ववेद में आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित, राजनीति, युद्ध विद्या, विवाह, गृह निर्माण, भूत-प्रेत, जादू-टोना, मंत्र-तंत्र आदि विषयों पर ज्ञान का भंडार है। अथर्ववेद की रचना का काल अनुमानतः 1000 ईसा पूर्व से 800 ईसा पूर्व के बीच माना जाता है, हालांकि इसके कई मंत्र इससे भी प्राचीन हैं। अथर्ववेद की संरचना भी अन्य वेदों की तरह व्यवस्थित है। इसमें 20 कांड, 731 सूक्त और लगभग 6000 मंत्र हैं। पहले 13 कांडों में विषम संख्या वाले कांडों में छोटे सूक्त और सम संख्या वाले कांडों में बड़े सूक्त हैं। 14वें से 18वें कांड में विवाह, राजधर्म और अन्य विषयों पर लंबे सूक्त हैं। 19वां और 20वां कांड संकलित कांड हैं, जिनमें विविध विषयों के सूक्त संकलित हैं। अथर्ववेद की प्रमुख शाखाएँ शौनक और पैप्पलाद हैं। शौनक शाखा अधिक प्रचलित है और आज भी पूर्ण रूप से उपलब्ध है। पैप्पलाद शाखा का अधिकांश भाग खो गया था, लेकिन हाल के वर्षों में इसके कुछ अंश कश्मीर और उड़ीसा से प्राप्त हुए हैं। शौनक शाखा में कुल 20 कांड हैं, जबकि पैप्पलाद शाखा में 16 कांड हैं।

अथर्ववेद के मंत्रों को उनके विषय के अनुसार कई वर्गों में विभाजित किया जा सकता है - आयुर्वेदिक मंत्र (रोगों के उपचार के लिए), शांति मंत्र (शांति और कल्याण के लिए), अभिचार मंत्र (शत्रुओं को नष्ट करने के लिए), राजकर्म मंत्र (राजाओं के कर्तव्यों के लिए), विवाह मंत्र (विवाह संस्कार के लिए), और अन्य विविध विषयों पर मंत्र। अथर्ववेद में आयुर्वेदिक ज्ञान का विशेष महत्व है। इसमें विभिन्न रोगों के उपचार, औषधियों

के प्रयोग, स्वास्थ्य संरक्षण के उपाय और दीर्घायु प्राप्ति के मार्ग का वर्णन है। अथर्ववेद का पांचवां कांड विशेष रूप से आयुर्वेद पर केंद्रित है, जिसमें ज्वर, क्षय रोग, कुष्ठ, हृदय रोग आदि के उपचार के मंत्र हैं। यही नहीं, अथर्ववेद में मानसिक रोगों, भूत-प्रेत बाधा, और अन्य मनोवैज्ञानिक समस्याओं के उपचार के भी मंत्र हैं। अथर्ववेद में राजनीति और राजधर्म का भी विस्तृत वर्णन है। 'राजकर्माणि' नामक सूक्त (3.3) में राजा के कर्तव्यों, राजनीतिक व्यवस्था, युद्ध नीति, राज्य संचालन के सिद्धांतों आदि का वर्णन है। 'पृथिवी सूक्त' (12.1) में पृथ्वी की महिमा, उसके संरक्षण और प्राकृतिक संसाधनों के उचित उपयोग पर प्रकाश डाला गया है। अथर्ववेद में विवाह, गृहस्थ जीवन, परिवार और समाज के विभिन्न पहलुओं का भी वर्णन है। 'विवाह सूक्त' (14.1-2) में विवाह के विधि-विधान, वर-वधू के कर्तव्य, दांपत्य जीवन के मार्गदर्शक सिद्धांत आदि का वर्णन है। इसी प्रकार, 'गृह प्रवेश सूक्त' (3.12) में नए घर में प्रवेश के समय किए जाने वाले अनुष्ठानों का वर्णन है।

अथर्ववेद के प्रमुख ब्राह्मण ग्रंथ हैं - गोपथ ब्राह्मण। गोपथ ब्राह्मण में दो भाग हैं - पूर्व और उत्तर। पूर्व भाग में 5 प्रपाठक हैं और उत्तर भाग में 6 प्रपाठक। गोपथ ब्राह्मण में अथर्ववेद के मंत्रों की व्याख्या, यज्ञों का विवरण, और विभिन्न दार्शनिक विषयों पर चर्चा है। अथर्ववेद से संबंधित प्रमुख उपनिषद हैं - मुंडक, माण्डूक्य और प्रश्न। मुंडक उपनिषद में परा और अपरा विद्या का वर्णन है, और मोक्ष प्राप्ति के मार्ग पर प्रकाश डाला गया है। माण्डूक्य उपनिषद छोटा लेकिन अत्यंत महत्वपूर्ण उपनिषद है, जिसमें ॐकार और चार अवस्थाओं (जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय) का वर्णन है। प्रश्न उपनिषद में छह शिष्यों के छह प्रश्नों के उत्तर दिए गए हैं, जो आत्मा, प्राण, जन्म-मृत्यु आदि गहन विषयों से संबंधित हैं। अथर्ववेद का महत्व इसके व्यावहारिक ज्ञान में निहित है। जहां अन्य वेद मुख्य रूप से धार्मिक और आध्यात्मिक विषयों पर केंद्रित हैं, वहीं अथर्ववेद दैनिक जीवन के विभिन्न पहलुओं से संबंधित ज्ञान प्रदान करता है। इसमें आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित, वास्तुशास्त्र, राजनीति, युद्ध विद्या, विवाह, गृह निर्माण आदि विषयों पर व्यावहारिक ज्ञान का भंडार है।

इकाई 6: वेदों का साहित्यिक और दार्शनिक पक्ष

वेदों का दार्शनिक पक्ष (जारी)

तत्व मीमांसा (जारी)

"एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।"

अर्थात्, "सत् (परमतत्व) एक है, विद्वान उसे अनेक नामों से पुकारते हैं।"

वेदों में आत्मा और परमात्मा के संबंध को भी स्पष्ट किया गया है। आत्मा परमात्मा का ही अंश है, जो शरीर में निवास करता है। आत्मा अमर, अजर, अविनाशी, अविकारी और शाश्वत है। यह जन्म-मरण के चक्र में बंधा हुआ है, लेकिन ज्ञान प्राप्त करके यह मुक्त हो सकता है और परमात्मा में लीन हो सकता है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में इसे इस प्रकार व्यक्त किया गया है:

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥"

अर्थात्, "दो पक्षी एक ही वृक्ष पर बैठे हैं, वे सदा साथ-साथ रहते हैं। इनमें से एक स्वादिष्ट फल खाता है, और दूसरा बिना खाए केवल देखता रहता है।"

यहाँ, एक पक्षी आत्मा है, जो कर्म के फल को भोगता है, और दूसरा पक्षी परमात्मा है, जो केवल साक्षी है।

वेदों में पंच महाभूतों - आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी - के विषय में भी विस्तृत चिंतन किया गया है। इन पंच महाभूतों से ही सभी भौतिक वस्तुओं की उत्पत्ति होती है, और अंत में सभी वस्तुएं इन्हीं पंच महाभूतों में लीन हो जाती हैं।

वेदों में प्रकृति और पुरुष के विषय में भी गहन चिंतन किया गया है। प्रकृति जड़ है, जबकि पुरुष चेतन है। प्रकृति में तीन गुण हैं - सत्व, रज और तम। सत्व गुण प्रकाश, ज्ञान और सुख का कारण है। रज गुण क्रिया, उत्साह और दुःख का कारण है। तम गुण अज्ञान, जड़ता और मोह का कारण है। प्रकृति के इन तीनों गुणों के संतुलन से ही सृष्टि का विकास होता है।

ज्ञान मीमांसा

वेदों में ज्ञान के विषय में गहन चिंतन किया गया है। वेदों के अनुसार, ज्ञान मुक्ति का साधन है। अविद्या (अज्ञान) बंधन का कारण है, और विद्या (ज्ञान) मुक्ति का कारण है। मुण्डक उपनिषद् में कहा गया है:

"विद्या तमसः अपरं तरति।"

अर्थात्, "विद्या अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करती है।"

वेदों में ज्ञान के दो प्रकार बताए गए हैं - परा विद्या और अपरा विद्या। परा विद्या आध्यात्मिक ज्ञान है, जिससे ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। अपरा विद्या लौकिक ज्ञान है, जिससे भौतिक जगत का ज्ञान होता है। मुण्डक उपनिषद् में इसे इस प्रकार व्यक्त किया गया है:

"द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति। परा चैवापरा च॥"

अर्थात्, "ब्रह्मवेत्ताओं के अनुसार, दो प्रकार की विद्याएँ जानने योग्य हैं - परा और अपरा।"

वेदों के अनुसार, ज्ञान प्राप्त करने के विभिन्न साधन हैं - प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि। इनमें से प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द को प्रमुख प्रमाण माना गया है। प्रत्यक्ष ज्ञान इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होता है। अनुमान ज्ञान तर्क के माध्यम से प्राप्त होता है। शब्द ज्ञान आप्त पुरुषों (विशेषज्ञों) के वचनों से प्राप्त होता है।

वेदों में आत्मज्ञान को सर्वोच्च ज्ञान माना गया है। आत्मज्ञान से ही मुक्ति प्राप्त होती है। छांदोग्य उपनिषद् में कहा गया है:

"आत्मनि विद्याअमृतत्वमेति।"

अर्थात्, "आत्मज्ञान से ही अमरत्व (मोक्ष) प्राप्त होता है।"

वेदों में ज्ञान प्राप्त करने के लिए गुरु की महत्ता पर भी बल दिया गया है। गुरु के बिना ज्ञान प्राप्त करना कठिन है। कठोपनिषद् में कहा गया है:

"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥"

अर्थात्, "यह आत्मा न तो प्रवचन से प्राप्त होती है, न बुद्धि से, न बहुत सुनने से। जिसे यह (आत्मा) स्वयं वरण करती है, उसी के द्वारा यह प्राप्त की जा सकती है। उसके लिए यह आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप को प्रकट करती है।"

मोक्ष मीमांसा

वेदों में मोक्ष के विषय में गहन चिंतन किया गया है। मोक्ष का अर्थ है - जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति। मोक्ष परम पुरुषार्थ है, जिसकी प्राप्ति के लिए मनुष्य जीवन भर प्रयास करता है। वेदों के अनुसार, मोक्ष की प्राप्ति आत्मज्ञान से होती है। जब आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप को जान लेती है, तब वह मुक्त हो जाती है और परमात्मा में लीन हो जाती है। कठोपनिषद् में कहा गया है:

"यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः। अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥"

अर्थात्, "जब हृदय में स्थित सभी कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं, तब मर्त्य (मनुष्य) अमर हो जाता है और यहीं (इस जीवन में) ब्रह्म को प्राप्त करता है।"

वेदों के अनुसार, मोक्ष के लिए ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों का समन्वय आवश्यक है। ज्ञान से अज्ञान दूर होता है, कर्म से चित्त शुद्ध होता है, और भक्ति से ईश्वर की कृपा प्राप्त होती है। इन तीनों के समन्वय से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

वेदों में मोक्ष के विभिन्न स्वरूपों का भी वर्णन किया गया है। सालोक्य मोक्ष में जीव ईश्वर के लोक में निवास करता है। सामीप्य मोक्ष में जीव ईश्वर के निकट रहता है। सारूप्य मोक्ष में जीव ईश्वर के समान रूप धारण करता है। सायुज्य मोक्ष में जीव ईश्वर में लीन हो जाता है। इनमें से सायुज्य मोक्ष को सर्वोच्च माना गया है।

धर्म मीमांसा

वेदों में धर्म के विषय में विस्तृत चिंतन किया गया है। वेदों के अनुसार, धर्म का अर्थ है - कर्तव्य, नियम, नैतिकता, न्याय, सत्य, अहिंसा, दया, क्षमा, त्याग, सेवा आदि। धर्म का पालन करने से व्यक्ति और समाज का कल्याण होता है। वेदों में धर्म के विभिन्न पहलुओं का वर्णन किया गया है - वर्ण धर्म, आश्रम धर्म, राज धर्म, पति-पत्नी धर्म, पुत्र धर्म, माता-पिता धर्म, गुरु-शिष्य धर्म, समाज धर्म आदि।

वेदों में सत्य को सर्वोच्च धर्म माना गया है। ऋग्वेद में कहा गया है:

"सत्यमेव जयते नानृतम्।"

अर्थात्, "सत्य की ही विजय होती है, असत्य की नहीं।"

वेदों में अहिंसा को भी महत्वपूर्ण धर्म माना गया है। यजुर्वेद में कहा गया है:

"मा हिंसी: सर्वभूतानि।"

अर्थात्, "किसी भी प्राणी की हिंसा मत करो।"

वेदों में दया, क्षमा, त्याग, सेवा, सहनशीलता, संयम, पवित्रता आदि गुणों को भी धर्म माना गया है। इन गुणों के पालन से व्यक्ति का चरित्र निर्माण होता है और वह मोक्ष का अधिकारी बनता है।

वेदों में कर्म के विषय में भी गहन चिंतन किया गया है। कर्म के तीन प्रकार बताए गए हैं - सकाम कर्म, निष्काम कर्म और अकर्म। सकाम कर्म फल की इच्छा से किया जाता है। निष्काम कर्म फल की इच्छा किए बिना किया जाता है। अकर्म का अर्थ है - कर्म न करना या कर्म के प्रति उदासीन रहना। वेदों के अनुसार, निष्काम कर्म श्रेष्ठ है, क्योंकि यह मोक्ष का साधन है। भगवद्गीता में कृष्ण ने अर्जुन को निष्काम कर्म का उपदेश दिया था:

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥"

अर्थात्, "तुम्हारा अधिकार केवल कर्म करने में है, उसके फलों में कभी नहीं। तुम कर्मफल के हेतु मत बनो, और न ही कर्म न करने में तुम्हारी आसक्ति हो।"

आत्मा और परमात्मा

वेदों में आत्मा और परमात्मा के विषय में गहन चिंतन किया गया है। आत्मा और परमात्मा के संबंध को विभिन्न उपमाओं के माध्यम से समझाया गया है। मुण्डक उपनिषद् में आत्मा और परमात्मा को दो पक्षियों की उपमा दी गई है, जो एक ही वृक्ष पर बैठे हैं। इनमें से एक पक्षी (आत्मा) फल खाता है, और दूसरा पक्षी (परमात्मा) बिना खाए केवल देखता रहता है।

श्वेताश्वतर उपनिषद् में आत्मा और परमात्मा के संबंध को इस प्रकार व्यक्त किया गया है:

"अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः। अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥"

अर्थात्, "एक अजा (प्रकृति) लाल, सफेद और काले रंग की है, जो अपने जैसी बहुत-सी प्रजाओं को जन्म देती है। एक अज (जीवात्मा) उसका सेवन करता हुआ उसके साथ रहता है, जबकि दूसरा अज (परमात्मा) उसका भोग करके उसे छोड़ देता है।"

वेदों के अनुसार, आत्मा अमर, अजर, अविनाशी, अविकारी और शाश्वत है। यह जन्म-मरण के चक्र में बंधा हुआ है, लेकिन ज्ञान प्राप्त करके यह मुक्त हो सकता है और परमात्मा में लीन हो सकता है। कठोपनिषद् में कहा गया है:

"न जायते म्रियते वा विपश्चित् नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्। अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥"

अर्थात्, "आत्मा न जन्म लेती है, न मरती है। यह न किसी से उत्पन्न हुई है, न यह कोई अन्य वस्तु है। यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है। शरीर के नष्ट होने पर भी यह नष्ट नहीं होती।"

परमात्मा या ब्रह्म को वेदों में सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सत्य, ज्ञान, अनंत और आनंद स्वरूप बताया गया है। छांदोग्य उपनिषद् में ब्रह्म को "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" कहा गया है, अर्थात् "ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अनंत है।"

बृहदारण्यक उपनिषद् में ब्रह्म को "आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्" कहा गया है, अर्थात् "ब्रह्म आनंद है।"

वेदों के अनुसार, ब्रह्म और आत्मा अभिन्न हैं। छांदोग्य उपनिषद् में यह बात "तत्त्वमसि" (वह तू है) वाक्य से व्यक्त की गई है। बृहदारण्यक उपनिषद् में यह बात "अहं ब्रह्मास्मि" (मैं ब्रह्म हूँ) वाक्य से व्यक्त की गई है। मुण्डक उपनिषद् में यह बात "ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्तात्" (यह सब ब्रह्म ही है) वाक्य से व्यक्त की गई है। ये वाक्य महावाक्य कहलाते हैं और वेदांत के मूल सिद्धांत को व्यक्त करते हैं।

वेदों के अनुसार, ब्रह्म सगुण और निर्गुण दोनों है। निर्गुण ब्रह्म निराकार है, जिसका कोई रूप, रंग, आकार या विशेषता नहीं है। सगुण ब्रह्म साकार है, जिसका एक निश्चित रूप, रंग, आकार और विशेषताएँ हैं। निर्गुण ब्रह्म अव्यक्त है, जबकि सगुण ब्रह्म व्यक्त है। निर्गुण ब्रह्म का ज्ञान बुद्धि से परे है, जबकि सगुण ब्रह्म

का ज्ञान बुद्धि से संभव है। निर्गुण ब्रह्म की उपासना ध्यान और समाधि से होती है, जबकि सगुण ब्रह्म की उपासना पूजा, अर्चना और भक्ति से होती है।

दर्शन और उपनिषद्

वेदों का दार्शनिक पक्ष उपनिषदों में अधिक स्पष्ट और व्यवस्थित रूप से व्यक्त किया गया है। उपनिषदों को वेदों का सार और वेदांत भी कहा जाता है। उपनिषद् शब्द 'उप' (पास), 'नि' (नीचे) और 'षद्' (बैठना) धातुओं से बना है, जिसका अर्थ है "गुरु के पास बैठकर रहस्य ज्ञान प्राप्त करना"। उपनिषदों में जीवन, जगत, ब्रह्म, आत्मा, मोक्ष, कर्म, धर्म, परमात्मा इत्यादि विषयों पर गहन चिंतन किया गया है। प्रमुख उपनिषद् हैं - ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छांदोग्य और बृहदारण्यक। इनमें से ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक और माण्डूक्य को छोटे उपनिषद् कहा जाता है, जबकि तैत्तिरीय, ऐतरेय, छांदोग्य और बृहदारण्यक को बड़े उपनिषद् कहा जाता है।

उपनिषदों में ब्रह्म और आत्मा के अभेद की बात पर बल दिया गया है। छांदोग्य उपनिषद् में यह बात "तत्त्वमसि" (वह तू है) वाक्य से व्यक्त की गई है। बृहदारण्यक उपनिषद् में यह बात "अहं ब्रह्मास्मि" (मैं ब्रह्म हूँ) वाक्य से व्यक्त की गई है। मुण्डक उपनिषद् में यह बात "ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्तात्" (यह सब ब्रह्म ही है) वाक्य से व्यक्त की गई है। ये वाक्य महावाक्य कहलाते हैं और वेदांत के मूल सिद्धांत को व्यक्त करते हैं। उपनिषदों के अनुसार, मोक्ष का अर्थ है - जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति। मोक्ष की प्राप्ति आत्मज्ञान से होती है। जब आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप को जान लेती है, तब वह मुक्त हो जाती है और परमात्मा में लीन हो जाती है। मुण्डक उपनिषद् में कहा गया है:

"भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥"

अर्थात्, "जब परम और अपर ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है, तब हृदय की ग्रंथि (अज्ञान) नष्ट हो जाती है, सभी संशय दूर हो जाते हैं, और सभी कर्म क्षीण हो जाते हैं।"

उपनिषदों में ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों का वर्णन किया गया है। निर्गुण ब्रह्म निराकार है, जिसका कोई रूप, रंग, आकार या विशेषता नहीं है। सगुण ब्रह्म साकार है, जिसका एक निश्चित रूप, रंग, आकार और विशेषताएँ हैं। केनोपनिषद् में निर्गुण ब्रह्म का वर्णन इस प्रकार किया गया है:

"न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यात्।"

अर्थात्, "वहाँ न आँख पहुँचती है, न वाणी, न मन। हम नहीं जानते, हम नहीं समझते कि इसे कैसे समझाया जाए।"

ईशोपनिषद् में सगुण ब्रह्म का वर्णन इस प्रकार किया गया है:

"हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥"

अर्थात्, "सत्य का मुख स्वर्णिम पात्र से ढका हुआ है। हे पूषन् (सूर्य), उसे हटा दो, ताकि सत्य धर्म का दर्शन हो सके।"

उपनिषदों में ज्ञान, कर्म और भक्ति के समन्वय पर बल दिया गया है। ज्ञान से अज्ञान दूर होता है, कर्म से चित्त शुद्ध होता है, और भक्ति से ईश्वर की कृपा प्राप्त होती है। इन तीनों के समन्वय से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार, वेदों का दार्शनिक पक्ष अत्यंत गहन और विस्तृत है। वेदों में जीवन, जगत, ब्रह्म, आत्मा, मोक्ष, कर्म, धर्म, परमात्मा इत्यादि विषयों पर गहन चिंतन किया गया है। वेदों का दार्शनिक पक्ष भारतीय दर्शन की नींव है, जिस पर भारतीय दर्शन का भव्य भवन खड़ा है।

वेदों के सामाजिक और नैतिक मूल्य

वेदों में सामाजिक और नैतिक मूल्यों का भी विस्तृत वर्णन किया गया है। वेदों में वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, विवाह व्यवस्था, परिवार व्यवस्था, राज्य व्यवस्था, अर्थ व्यवस्था, शिक्षा व्यवस्था आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है। वेदों में सत्य, अहिंसा, दया, क्षमा, त्याग, सेवा, सहनशीलता, संयम, पवित्रता आदि नैतिक मूल्यों पर बल दिया गया है।

इकाई 7: वेदांग: शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्योतिष

वेदांग वैदिक साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंग हैं, जिन्हें "वेदों के अंग" के रूप में जाना जाता है। ये वेदों को सही ढंग से समझने, उच्चारण करने और उनके अनुष्ठानों को निष्पादित करने के लिए आवश्यक ज्ञान प्रदान करते हैं। वेदांग छह प्रकार के हैं - शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष। इन छह अंगों

को वेदों के अध्ययन के लिए अनिवार्य माना जाता है, क्योंकि ये वेदों की सटीक व्याख्या और प्रयोग के लिए आधारभूत ज्ञान प्रदान करते हैं। इस अध्याय में हम इन छह वेदांगों के बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे, उनके महत्व, ऐतिहासिक विकास और वर्तमान प्रासंगिकता को समझेंगे।

१. शिक्षा: उच्चारण का विज्ञान

शिक्षा वेदांगों में प्रथम स्थान प्राप्त करती है, जिसका अर्थ है "सिखाना" या "उच्चारण का विज्ञान"। यह वेदों के मंत्रों का सही उच्चारण सिखाने वाला वेदांग है। वैदिक काल में मौखिक परंपरा से ज्ञान का संचरण होता था, इसलिए सही उच्चारण अत्यंत महत्वपूर्ण था। वेदमंत्रों का गलत उच्चारण करने से न केवल अर्थ का अनर्थ हो सकता था, बल्कि इसे अशुभ भी माना जाता था। इसीलिए शिक्षा वेदांग का विशेष महत्व है। शिक्षा वेदांग वर्णों (अक्षरों) के उच्चारण स्थान, प्रयत्न (प्रयास), वर्ण की प्रकृति, स्वर, मात्रा, बल, साम (स्वर का उतार-चढ़ाव) और संतान (वर्णों का संयोग) आदि का विस्तृत वर्णन करता है। इसमें संस्कृत भाषा के ध्वनि विज्ञान के नियमों का विस्तृत विवेचन मिलता है।

प्राचीन काल में पाणिनीय शिक्षा, यज्ञवल्क्य शिक्षा, वसिष्ठ शिक्षा, व्यास शिक्षा, मांडूकी शिक्षा आदि अनेक शिक्षा ग्रंथ रचे गए थे। इनमें पाणिनीय शिक्षा सबसे प्रसिद्ध है, जिसके रचयिता महान वैयाकरण पाणिनि हैं। इस ग्रंथ में वर्णों के उच्चारण स्थान, प्रयत्न, स्वर आदि का विस्तृत वर्णन है। शिक्षा वेदांग का एक महत्वपूर्ण पहलू स्वर विज्ञान है। संस्कृत भाषा में स्वरों को उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के रूप में वर्गीकृत किया गया है। उदात्त स्वर ऊँचा, अनुदात्त स्वर नीचा और स्वरित स्वर उदात्त और अनुदात्त के मध्य होता है। वैदिक मंत्रों का पाठ इन स्वरों के उतार-चढ़ाव के साथ किया जाता है, जिससे मंत्रों की शक्ति और प्रभाव बढ़ जाता है। शिक्षा वेदांग में वर्णों के उच्चारण स्थानों का भी विस्तृत वर्णन मिलता है। संस्कृत भाषा के वर्णों का उच्चारण कंठ (गला), तालु (मुँह का ऊपरी हिस्सा), मूर्धा (मुँह का पिछला भाग), दंत (दाँत) और ओष्ठ (होंठ) आदि स्थानों से होता है। इसके अतिरिक्त वर्णों के उच्चारण में होने वाले प्रयत्न जैसे स्पर्श, ईषत्स्पर्श, संघर्ष आदि का भी विवेचन किया गया है।

शिक्षा वेदांग में वर्ण दोषों का भी वर्णन मिलता है। वर्णों के उच्चारण में होने वाले दोषों को जिह्वामूलीय (जीभ के मूल से संबंधित), दंत्य (दाँतों से संबंधित), ओष्ठ्य (होंठों से संबंधित) आदि वर्गों में बाँटा गया है। इन दोषों से बचने के उपाय भी बताए गए हैं। शिक्षा वेदांग का महत्व इस बात से भी समझा जा सकता है कि इसे "वेद पुरुष" के मुख के रूप में वर्णित किया गया है। जैसे मुख शरीर का महत्वपूर्ण अंग है, वैसे ही

शिक्षा वेद का महत्वपूर्ण अंग है। इसके बिना वेदों का सही अध्ययन और अनुष्ठान संभव नहीं है। आधुनिक युग में भी शिक्षा वेदांग का महत्व बना हुआ है। वैदिक मंत्रों का सही उच्चारण न केवल धार्मिक अनुष्ठानों के लिए आवश्यक है, बल्कि ध्वनि विज्ञान और भाषा विज्ञान के अध्ययन के लिए भी महत्वपूर्ण है। आज के वैज्ञानिक शोध भी प्राचीन वैदिक मंत्रोच्चारण की प्रभावशीलता को सिद्ध कर रहे हैं। मंत्रोच्चारण से उत्पन्न कंपन और ध्वनि तरंगें मानव मस्तिष्क और शरीर पर सकारात्मक प्रभाव डालती हैं। इस प्रकार शिक्षा वेदांग का अध्ययन न केवल वैदिक परंपरा को जीवित रखने के लिए, बल्कि आधुनिक विज्ञान और चिकित्सा के क्षेत्र में भी उपयोगी है।

२. कल्प: अनुष्ठानों का विज्ञान

कल्प वेदांग वैदिक अनुष्ठानों और कर्मकांडों से संबंधित है। यह वेदांग यज्ञों, संस्कारों और अन्य धार्मिक अनुष्ठानों के विधि-विधानों का विस्तृत वर्णन करता है। कल्प शब्द का अर्थ है "विधि" या "नियम"। यह वेदों में वर्णित अनुष्ठानों और कर्मकांडों को व्यावहारिक रूप में क्रियान्वित करने के लिए आवश्यक नियमों और विधियों का संग्रह है। कल्प वेदांग को चार प्रमुख भागों में विभाजित किया गया है - श्रौत सूत्र, गृह्य सूत्र, धर्म सूत्र और शुल्ब सूत्र। ये चारों भाग अनुष्ठानों के विभिन्न पहलुओं से संबंधित हैं। श्रौत सूत्र वेदों में वर्णित बड़े यज्ञों और अनुष्ठानों के नियमों का वर्णन करते हैं। ये यज्ञ अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, सोमयाग, राजसूय, वाजपेय, अश्वमेध आदि हैं। श्रौत सूत्रों में इन यज्ञों के विधि-विधानों, मंत्रों, सामग्रियों, पात्रों, देवताओं, ऋत्विजों (पुरोहितों) आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है। प्रत्येक वेद की अपनी श्रौत सूत्र परंपरा है। ऋग्वेद के आश्वलायन और शांखायन, यजुर्वेद के बौधायन, आपस्तंब, कात्यायन और हिरण्यकेशी, सामवेद के मशक, लाट्यायन और द्राह्यायण तथा अथर्ववेद के कौशिक श्रौत सूत्र प्रसिद्ध हैं।

गृह्य सूत्र गृहस्थ जीवन से संबंधित अनुष्ठानों और संस्कारों का वर्णन करते हैं। इनमें षोडश संस्कार (सोलह संस्कार) जैसे गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, उपनयन, विवाह आदि का विस्तृत वर्णन है। गृह्य सूत्रों में दैनिक, पाक्षिक, मासिक और वार्षिक अनुष्ठानों का भी वर्णन मिलता है। प्रत्येक वेद शाखा के अपने गृह्य सूत्र हैं। आश्वलायन, शांखायन, गोभिल, खादिर, पारस्कर, बौधायन, भारद्वाज, आपस्तंब, हिरण्यकेशी, कौशिक आदि गृह्य सूत्र प्रसिद्ध हैं। धर्म सूत्र सामाजिक और नैतिक नियमों का वर्णन करते हैं। इनमें वर्णाश्रम धर्म, राजधर्म, प्रायश्चित्त, आचार संहिता आदि का विस्तृत विवेचन मिलता है। धर्म सूत्रों में समाज के विभिन्न वर्गों और आश्रमों के कर्तव्यों और अधिकारों का वर्णन है। गौतम,

बौधायन, आपस्तंब, हारीत, वसिष्ठ, विष्णु और याज्ञवल्क्य धर्म सूत्र प्रसिद्ध हैं। बाद में इन्हीं धर्म सूत्रों के आधार पर धर्मशास्त्र और स्मृतियाँ रची गईं। शुल्ब सूत्र यज्ञ वेदियों और अग्निकुंडों के निर्माण से संबंधित नियमों का वर्णन करते हैं। ये प्राचीन भारतीय ज्यामिति के महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं, जिनमें वेदियों के आकार, माप, दिशा, स्थान आदि का सटीक वर्णन मिलता है। शुल्ब सूत्रों में पाइथागोरस प्रमेय का उल्लेख पाइथागोरस से लगभग दो सौ वर्ष पहले मिलता है। बौधायन, आपस्तंब, कात्यायन और मानव शुल्ब सूत्र प्रसिद्ध हैं।

कल्प वेदांग का महत्व इस बात से समझा जा सकता है कि इसे "वेद पुरुष" के हाथों के रूप में वर्णित किया गया है। जिस प्रकार हाथों से कार्य किया जाता है, उसी प्रकार कल्प वेदांग के माध्यम से वैदिक अनुष्ठान किए जाते हैं।

आधुनिक समय में भी कल्प वेदांग का महत्व बना हुआ है। वैवाहिक, अंत्येष्टि और अन्य धार्मिक अनुष्ठानों में कल्प सूत्रों के नियमों का पालन किया जाता है। कल्प सूत्र न केवल धार्मिक अनुष्ठानों के लिए, बल्कि प्राचीन भारतीय समाज, संस्कृति, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अध्ययन के लिए भी महत्वपूर्ण स्रोत हैं। विशेष रूप से शुल्ब सूत्र प्राचीन भारतीय गणित और ज्यामिति के विकास का महत्वपूर्ण प्रमाण हैं।

३. व्याकरण: भाषा का विज्ञान

व्याकरण वेदांग भाषा और शब्दों से संबंधित वेदांग है। संस्कृत व्याकरण की समृद्ध परंपरा है, जिसका विकास वैदिक काल से ही हुआ था। व्याकरण का मुख्य उद्देश्य भाषा के शुद्ध रूप को संरक्षित करना और वेदमंत्रों के सही अर्थ को समझने में सहायता करना है। व्याकरण वेदांग का सर्वाधिक विकसित और व्यवस्थित रूप महर्षि पाणिनि की "अष्टाध्यायी" में मिलता है, जो संस्कृत व्याकरण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। अष्टाध्यायी आठ अध्यायों में विभाजित है, जिनमें लगभग 4,000 सूत्र (नियम) हैं। ये सूत्र संक्षिप्त, स्पष्ट और व्यापक हैं, जो संस्कृत भाषा के व्याकरण के सभी पहलुओं को समेटे हुए हैं। पाणिनि से पहले भी अनेक वैयाकरण हुए हैं, जिनका उल्लेख पाणिनि ने अपने ग्रंथ में किया है। इनमें शाकटायन, स्फोटायन, भारद्वाज, गाल्व, कश्यप आदि प्रमुख हैं। पाणिनि के बाद कात्यायन ने "वार्तिक" और पतंजलि ने "महाभाष्य" की रचना कर अष्टाध्यायी की व्याख्या और विस्तार किया। इन तीनों (पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि) को संस्कृत व्याकरण का "त्रिमुनि" या "व्याकरण त्रिमूर्ति" कहा जाता है।

व्याकरण वेदांग में शब्दों के विभिन्न रूपों, धातुओं, प्रत्ययों, संधि, समास, कारक आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है। संस्कृत व्याकरण की एक विशेषता यह है कि इसमें शब्दों की व्युत्पत्ति (उत्पत्ति और विकास) पर विशेष ध्यान दिया गया है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार, सभी शब्द धातुओं से बनते हैं और विभिन्न प्रत्ययों के योग से उनके अर्थ में परिवर्तन होता है। संस्कृत व्याकरण में शब्दों को दो प्रमुख वर्गों में बाँटा गया है - शब्द (नाम) और आख्यात (क्रिया)। शब्द पुनः विभिन्न प्रकारों में विभाजित हैं, जैसे संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि। आख्यात भी विभिन्न प्रकारों में विभाजित हैं, जैसे परस्मैपद, आत्मनेपद, उभयपद आदि। संस्कृत व्याकरण में धातुओं को दस गणों में विभाजित किया गया है - भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्र्यादि और चुरादि। इन गणों के अनुसार धातुओं के रूप भिन्न-भिन्न होते हैं। संस्कृत व्याकरण में कारक व्यवस्था भी महत्वपूर्ण है। कारक वाक्य में संज्ञा या सर्वनाम का क्रिया के साथ संबंध बताते हैं। संस्कृत में छह कारक हैं - कर्ता (प्रथमा), कर्म (द्वितीया), करण (तृतीया), संप्रदान (चतुर्थी), अपादान (पंचमी) और अधिकरण (सप्तमी)। इसके अतिरिक्त संबंध कारक (षष्ठी) भी है, जो दो संज्ञाओं के बीच संबंध बताता है।

व्याकरण वेदांग का महत्व इस बात से समझा जा सकता है कि इसे "वेद पुरुष" के मुख के रूप में वर्णित किया गया है। व्याकरण के ज्ञान के बिना वेदों का सही अर्थ समझना असंभव है। महर्षि पतंजलि ने कहा है - "रक्षोहागमलघ्वसंदेहाः प्रयोजनम्" अर्थात व्याकरण का अध्ययन रक्षा, आगम (परंपरा), लाघव (संक्षिप्तता) और असंदेह (स्पष्टता) के लिए किया जाता है। आधुनिक भाषा विज्ञान के विकास में संस्कृत व्याकरण का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यूरोपीय भाषा वैज्ञानिकों ने संस्कृत व्याकरण के सिद्धांतों से प्रेरित होकर तुलनात्मक भाषा विज्ञान का विकास किया। आधुनिक कंप्यूटर भाषा विज्ञान और प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण (नेचुरल लैंग्वेज प्रोसेसिंग) में भी संस्कृत व्याकरण के सिद्धांतों का प्रयोग किया जा रहा है।

४. निरुक्त: शब्दार्थ का विज्ञान

निरुक्त वेदांग शब्दों के अर्थ और व्युत्पत्ति से संबंधित वेदांग है। यह वैदिक शब्दों की व्याख्या और उनकी व्युत्पत्ति का विज्ञान है। निरुक्त को वेदों की कुंजी माना जाता है, क्योंकि इसके माध्यम से वैदिक शब्दों के गूढ़ अर्थ को समझा जा सकता है। निरुक्त वेदांग का सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रंथ यास्क का "निरुक्त" है, जो लगभग 5वीं-6ठी शताब्दी ईसा पूर्व की रचना है। यास्क का निरुक्त 12 अध्यायों में विभाजित है, जिन्हें "अध्याय" कहा जाता है। निरुक्त में वैदिक शब्दों की व्याख्या के साथ-साथ भाषा, अर्थ, शब्द विज्ञान और

व्युत्पत्ति के सिद्धांतों का भी विवेचन किया गया है। निरुक्त में शब्दों को चार वर्गों में विभाजित किया गया है - नाम (संज्ञा), आख्यात (क्रिया), उपसर्ग (पूर्व प्रत्यय) और निपात (अव्यय)। यास्क के अनुसार, सभी शब्द क्रिया से उत्पन्न होते हैं (नामान्याख्यातजानि)। उन्होंने शब्दों की व्युत्पत्ति के लिए छह प्रकार के परिवर्तनों का उल्लेख किया है - वर्ण आगम (अक्षर का जुड़ना), वर्ण लोप (अक्षर का हटना), वर्ण विकार (अक्षर का बदलना), धातु भिन्नता (धातु का बदलना), प्रकृति विकार (रूप का बदलना) और प्रत्यय विकार (प्रत्यय का बदलना)।

निरुक्त में यास्क ने "निघंटु" नामक ग्रंथ की व्याख्या की है, जो वैदिक शब्दों का संग्रह है। निघंटु में वैदिक शब्द पाँच अध्यायों में विभाजित हैं। पहले तीन अध्यायों में समानार्थक शब्दों के समूह हैं, चौथे अध्याय में दुरूह (कठिन) वैदिक शब्द हैं और पाँचवें अध्याय में देवताओं के नाम हैं। यास्क ने निरुक्त में इन शब्दों की विस्तृत व्याख्या की है। निरुक्त में देवताओं के वर्गीकरण और उनके स्वरूप की व्याख्या भी की गई है। यास्क ने देवताओं को तीन वर्गों में विभाजित किया है - पृथिवी स्थानीय (अग्नि आदि), अंतरिक्ष स्थानीय (इंद्र, मरुत, वायु आदि) और द्युलोक स्थानीय (सूर्य, विष्णु आदि)। यास्क का मानना था कि सभी देवता एक ही परम तत्व के विभिन्न रूप हैं (एकं सत् विप्राः बहुधा वदन्ति)। निरुक्त में शब्दों की व्याख्या के लिए अनेक उपायों का वर्णन मिलता है, जैसे व्युत्पत्ति (शब्द की उत्पत्ति), प्रकृति-प्रत्यय विभाग (मूल और प्रत्यय का विभाजन), वाक्य प्रयोग (वाक्य में प्रयोग), संदर्भ (प्रकरण), लिंग (चिह्न), स्थान (स्थिति), समय (काल) आदि। इन उपायों के माध्यम से वैदिक शब्दों के गूढ़ अर्थ को समझा जा सकता है।

निरुक्त में शब्दों की व्याख्या के साथ-साथ अनेक दार्शनिक और भाषा वैज्ञानिक सिद्धांतों का भी विवेचन किया गया है। यास्क ने भाषा और अर्थ के संबंध, ध्वनि और अर्थ के संबंध, शब्द और अर्थ के स्वाभाविक या सांकेतिक संबंध आदि विषयों पर विस्तार से चर्चा की है। उन्होंने काक्षपाणिनि, औदुम्बरायण, अग्राम्मण, अग्राम्य, अग्राम्यायण जैसे पूर्ववर्ती वैयाकरणों और नैरुक्तों के मतों का भी उल्लेख किया है। निरुक्त वेदांग का महत्व इस बात से समझा जा सकता है कि इसे "वेद पुरुष" के कान के रूप में वर्णित किया गया है। जैसे कान सुनने और समझने का माध्यम है, वैसे ही निरुक्त वेदों के अर्थ को समझने का माध्यम है। आधुनिक भाषा विज्ञान और शब्दकोश विज्ञान के विकास में निरुक्त का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आधुनिक समय में भी निरुक्त के सिद्धांतों का प्रयोग शब्दों के अर्थ और व्युत्पत्ति के अध्ययन में किया जाता है। निरुक्त न केवल भाषा विज्ञान के लिए, बल्कि प्राचीन भारतीय धर्म, दर्शन, समाज और संस्कृति के अध्ययन के लिए भी महत्वपूर्ण स्रोत है।

५. छंद: वैदिक छंदों का विज्ञान

छंद वेदांग वैदिक मंत्रों के छंदों से संबंधित वेदांग है। छंद शब्द का अर्थ है "आच्छादन" या "आवरण"। वैदिक मंत्र विभिन्न छंदों में रचे गए हैं, जो उनके उच्चारण और गायन को सुगम बनाते हैं। छंद वेदांग इन छंदों के नियमों और लक्षणों का वर्णन करता है। छंद वेदांग का सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रंथ पिंगल का "छंदःसूत्र" या "पिंगल छंदःशास्त्र" है, जो लगभग 300-200 ईसा पूर्व की रचना है। इस ग्रंथ में वैदिक और लौकिक छंदों का विस्तृत विवेचन किया गया है। पिंगल के अतिरिक्त कात्यायन, शौनक, और कोहल आदि ने भी छंद विषयक ग्रंथ रचे हैं। छंद वेदांग में वर्ण, मात्रा, यति (विराम), लय (गति), ताल आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है। संस्कृत छंद विज्ञान में छंदों को दो प्रमुख वर्गों में विभाजित किया गया है - वैदिक छंद और लौकिक छंद। वैदिक छंद ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के मंत्रों में प्रयुक्त छंद हैं, जबकि लौकिक छंद संस्कृत काव्य और नाटकों में प्रयुक्त छंद हैं। वैदिक छंदों में गायत्री (24 अक्षर), उष्णिक् (28 अक्षर), अनुष्टुप् (32 अक्षर), बृहती (36 अक्षर), पंक्ति (40 अक्षर), त्रिष्टुप् (44 अक्षर) और जगती (48 अक्षर) प्रमुख हैं। इन सात मुख्य छंदों के अतिरिक्त अति जगती (52 अक्षर), शक्करी (56 अक्षर), अति शक्करी (60 अक्षर), धृति (72 अक्षर), अति धृति (76 अक्षर), कृति (80 अक्षर), प्रकृति (84 अक्षर), आकृति (88 अक्षर), विकृति (92 अक्षर), अति कृति (98 अक्षर) आदि अनेक छंद हैं।

लौकिक छंदों में वार्णिक और मात्रिक दो प्रकार के छंद हैं। वार्णिक छंदों में अक्षरों की संख्या और उनके लघु-गुरु क्रम का महत्व होता है, जबकि मात्रिक छंदों में मात्राओं की संख्या का महत्व होता है। वार्णिक छंदों में अनुष्टुप् (श्लोक), इंद्रवज्रा, उपेंद्रवज्रा, उपजाति, वंशस्थ, द्रुतविलंबित, वसंततिलका, मालिनी, शिखरिणी, मंदाक्रांता, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा आदि प्रमुख हैं। मात्रिक छंदों में आर्या, गीति, उपगीति, वक्र, चपला, मुक्तक आदि प्रमुख हैं। छंद विज्ञान में गण व्यवस्था का विशेष महत्व है। गण वर्णों के समूह हैं, जिनमें तीन-तीन वर्ण होते हैं। इन गणों के आधार पर छंदों का निर्माण होता है। संस्कृत में आठ गण हैं - मगण (सभी गुरु), नगण (सभी लघु), भगण (गुरु, लघु, लघु), यगण (लघु, गुरु, गुरु), जगण (लघु, गुरु, लघु), रगण (गुरु, लघु, गुरु), सगण (लघु, लघु, गुरु) और तगण (गुरु, गुरु, लघु)। छंद वेदांग में छंदों के देवताओं का भी वर्णन मिलता है। गायत्री छंद की देवता अग्नि, उष्णिक् की सविता, अनुष्टुप् की सोम, बृहती की बृहस्पति, पंक्ति की वरुण, त्रिष्टुप् की इंद्र और जगती की विश्वेदेव हैं।

छंदों का वेदों में विशेष महत्व है। वेदों में कुल 400 से अधिक छंदों का प्रयोग किया गया है, जिनमें गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती का प्रयोग सर्वाधिक है। गायत्री छंद का प्रयोग विशेष रूप से सामवेद में, त्रिष्टुप् छंद का प्रयोग ऋग्वेद में और जगती छंद का प्रयोग अथर्ववेद में अधिक है। छंद वेदांग का महत्व इस बात से समझा जा सकता है कि इसे "वेद पुरुष" के पैरों के रूप में वर्णित किया गया है। जिस प्रकार पैर शरीर को गति प्रदान करते हैं, उसी प्रकार छंद वेदों को गति और लय प्रदान करते हैं। आधुनिक काव्यशास्त्र और संगीतशास्त्र के विकास में छंद वेदांग का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आज भी संस्कृत और भारतीय भाषाओं के काव्यों में छंदों का विशेष महत्व है। छंद न केवल काव्य की सौंदर्यवृद्धि करते हैं, बल्कि उन्हें स्मरणीय और गेय भी बनाते हैं। वैज्ञानिक अध्ययनों से यह सिद्ध हुआ है कि छंदोबद्ध रचनाएँ मानव मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डालती हैं और उन्हें स्मरण रखना आसान होता है।

६. ज्योतिष: खगोल विज्ञान

ज्योतिष वेदांग खगोल और गणित विज्ञान से संबंधित वेदांग है। यह वेदांग यज्ञों और अनुष्ठानों के उचित समय का निर्धारण करने के लिए खगोलीय पिंडों की गति का अध्ययन करता है। ज्योतिष शब्द का अर्थ है "ज्योति का विज्ञान" या "प्रकाश का विज्ञान"। ज्योतिष वेदांग के प्राचीनतम ग्रंथों में लगड का "वेदांग ज्योतिष" या "ज्योतिष वेदांग" प्रमुख है, जो लगभग 1400-1200 ईसा पूर्व की रचना है। वेदांग ज्योतिष के दो संस्करण हैं - ऋक् ज्योतिष (36 श्लोक) और याजुष ज्योतिष (43 श्लोक)। इनमें पंचांग निर्माण, तिथि, नक्षत्र, अयन, ऋतु, मास आदि का विस्तृत वर्णन है। प्राचीन भारतीय ज्योतिष शास्त्र को तीन स्कंधों में विभाजित किया गया है - सिद्धांत (गणितीय ज्योतिष), होरा (फलित ज्योतिष) और संहिता (प्राकृतिक घटनाओं का ज्योतिष)। सिद्धांत स्कंध खगोलीय गणना, ग्रहों की गति, सूर्यग्रहण, चंद्रग्रहण आदि से संबंधित है। होरा स्कंध जन्म कुंडली, ग्रहों के फल, दशा, गोचर आदि से संबंधित है। संहिता स्कंध प्राकृतिक घटनाओं, मौसम, फसलों, युद्ध, महामारी आदि की भविष्यवाणी से संबंधित है।

प्राचीन भारतीय ज्योतिष में काल गणना का विशेष महत्व है। काल को विभिन्न इकाइयों में विभाजित किया गया है, जैसे त्रुटि, लव, निमेष, काष्ठा, कला, मुहूर्त, दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अयन और वर्ष। एक दिन को 30 मुहूर्तों में, एक मुहूर्त को 2 घड़ियों में, एक घड़ी को 30 कलाओं में और एक कला को 30 काष्ठाओं में विभाजित किया गया है। ज्योतिष वेदांग में नक्षत्रों का विशेष महत्व है। प्राचीन भारतीय ज्योतिष में 27 या 28 नक्षत्रों का उल्लेख मिलता है - अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य,

आश्लेषा, मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वा भाद्रपद, उत्तरा भाद्रपद और रेवती। अभिजित को कभी-कभी 28वें नक्षत्र के रूप में गिना जाता है। ज्योतिष वेदांग में राशियों का भी विशेष महत्व है। 12 राशियाँ हैं - मेष, वृषभ, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ और मीन। प्रत्येक राशि में 2.25 नक्षत्र होते हैं। ये राशियाँ सूर्य की वार्षिक गति के आधार पर निर्धारित की गई हैं।

ज्योतिष वेदांग में सात ग्रहों का वर्णन मिलता है - सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि। इनके अतिरिक्त राहु और केतु को छाया ग्रह माना गया है। इन ग्रहों की गति और स्थिति के आधार पर विभिन्न फलों का निर्धारण किया जाता है। ज्योतिष वेदांग में पंचांग निर्माण का विशेष महत्व है। पंचांग पाँच अंगों से मिलकर बना है - तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण। तिथि चंद्रमा की कला वृद्धि के आधार पर, वार सूर्य और ग्रहों की गति के आधार पर, नक्षत्र चंद्रमा की नक्षत्रों में स्थिति के आधार पर, योग सूर्य और चंद्रमा की गति के योग के आधार पर और करण तिथि के आधे भाग के आधार पर निर्धारित किए जाते हैं।

ज्योतिष वेदांग में ऋतुओं का भी विशेष महत्व है। छह ऋतुएँ हैं - वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमंत और शिशिर। प्रत्येक ऋतु दो-दो महीनों की होती है। इन ऋतुओं के अनुसार यज्ञ और अनुष्ठान किए जाते हैं। ज्योतिष वेदांग का महत्व इस बात से समझा जा सकता है कि इसे "वेद पुरुष" की आँखों के रूप में वर्णित किया गया है। जिस प्रकार आँखें दृष्टि प्रदान करती हैं, उसी प्रकार ज्योतिष वेदों के अनुष्ठानों के उचित समय का ज्ञान प्रदान करता है। आधुनिक खगोल विज्ञान और गणित के विकास में ज्योतिष वेदांग का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। प्राचीन भारतीय ज्योतिषियों ने सूर्य, चंद्र और ग्रहों की गति की सटीक गणना की थी। उन्होंने ग्रहण, नक्षत्रों की स्थिति, ऋतु परिवर्तन आदि की भी सटीक भविष्यवाणी की थी। आज भी भारतीय पंचांग ज्योतिष वेदांग के सिद्धांतों पर आधारित है।

वेदांग वैदिक ज्ञान के अनिवार्य अंग हैं, जो वेदों को समझने, उच्चारण करने और उनके अनुष्ठानों को निष्पादित करने में सहायता करते हैं। इन छह वेदांगों का अपना-अपना विशिष्ट क्षेत्र और महत्व है, फिर भी ये सभी परस्पर संबंधित और पूरक हैं। शिक्षा मंत्रों के सही उच्चारण का ज्ञान प्रदान करती है, कल्प अनुष्ठानों के विधि-विधानों का ज्ञान प्रदान करता है, व्याकरण भाषा के शुद्ध रूप का ज्ञान प्रदान करता है, निरुक्त शब्दों के अर्थ का ज्ञान प्रदान करता है, छंद वैदिक मंत्रों के छंदों का ज्ञान प्रदान करता है और ज्योतिष अनुष्ठानों के उचित समय का ज्ञान प्रदान करता है। वेदांगों का विकास वैदिक काल से ही हुआ था,

लेकिन वर्तमान में उपलब्ध अधिकांश वेदांग ग्रंथ उत्तर वैदिक काल (800-400 ईसा पूर्व) के हैं। इन ग्रंथों में वेदों के अध्ययन और अनुष्ठानों के लिए आवश्यक नियमों और सिद्धांतों का विस्तृत वर्णन मिलता है। वेदांगों का महत्व न केवल धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से, बल्कि वैज्ञानिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी है। ये प्राचीन भारतीय विज्ञान, गणित, भाषा विज्ञान, खगोल विज्ञान, समाज व्यवस्था और संस्कृति के अध्ययन के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। आधुनिक समय में भी वेदांगों का अध्ययन और अनुसंधान जारी है। विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों में वेदांगों पर शोध कार्य हो रहा है। वेदांगों के अध्ययन से न केवल प्राचीन भारतीय ज्ञान-विज्ञान की समझ विकसित होती है, बल्कि आधुनिक समस्याओं के समाधान के लिए नई दृष्टि भी मिलती है। वेदांगों का अध्ययन हमें प्राचीन भारतीय ऋषियों और मनीषियों की वैज्ञानिक और व्यवस्थित सोच से परिचित कराता है। उन्होंने वेदों के ज्ञान को सरल, व्यवस्थित और व्यावहारिक बनाने के लिए वेदांगों का विकास किया, जिससे वैदिक ज्ञान सदियों तक सुरक्षित रह सका और पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होता रहा।

आज के वैज्ञानिक युग में भी वेदांगों की प्रासंगिकता बनी हुई है। शिक्षा वेदांग के ध्वनि विज्ञान के सिद्धांत आधुनिक भाषा विज्ञान में उपयोगी हैं, कल्प वेदांग के अनुष्ठान विज्ञान के सिद्धांत मनोविज्ञान और समाज विज्ञान में उपयोगी हैं, व्याकरण वेदांग के भाषा विज्ञान के सिद्धांत कंप्यूटर विज्ञान और प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण में उपयोगी हैं, निरुक्त वेदांग के शब्द विज्ञान के सिद्धांत शब्दकोश विज्ञान और भाषा विज्ञान में उपयोगी हैं, छंद वेदांग के छंद विज्ञान के सिद्धांत संगीत विज्ञान और काव्य शास्त्र में उपयोगी हैं, और ज्योतिष वेदांग के खगोल विज्ञान के सिद्धांत आधुनिक खगोल विज्ञान और गणित में उपयोगी हैं। वेदांगों का अध्ययन हमें प्राचीन और आधुनिक, पूर्व और पश्चिम, विज्ञान और अध्यात्म के बीच संतुलन और समन्वय स्थापित करने में सहायता करता है। यह हमें सिखाता है कि ज्ञान एक है, और उसके विभिन्न पहलू एक-दूसरे के पूरक हैं, न कि विरोधी। वेदांगों का अध्ययन हमें यह भी सिखाता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में शास्त्रों का अध्ययन केवल बौद्धिक व्यायाम या शैक्षिक गतिविधि नहीं, बल्कि जीवन को सुखमय, समृद्ध और अर्थपूर्ण बनाने का माध्यम है। वेदांगों का अध्ययन हमें वेदों के ज्ञान को व्यावहारिक जीवन में उतारने की कला सिखाता है। अंत में, वेदांगों का अध्ययन हमें प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा की गहराई, व्यापकता और समृद्धि का बोध कराता है। यह हमें प्रेरित करता है कि हम अपनी सांस्कृतिक विरासत पर गर्व करें और उसके संरक्षण और संवर्धन में अपना योगदान दें। वेदांगों का अध्ययन हमें न केवल प्राचीन ज्ञान से जोड़ता है, बल्कि हमें भविष्य की चुनौतियों का सामना करने के लिए भी सशक्त बनाता है। इस प्रकार

वेदांग हमारी सांस्कृतिक और बौद्धिक विरासत के अमूल्य रत्न हैं, जिनका अध्ययन और अनुसंधान आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जितना प्राचीन काल में था। ये हमें प्राचीन ऋषियों की दूरदर्शिता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिचय देते हैं, और हमें अपनी जड़ों से जुड़े रहने की प्रेरणा देते हैं।

इकाई 8: वेदों में सामाजिक और नैतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति

भारतीय संस्कृति और ज्ञान परंपरा के आधारभूत स्तंभ के रूप में वेद हमारे सामाजिक और नैतिक जीवन के मार्गदर्शक रहे हैं। वैदिक साहित्य न केवल अध्यात्मिक ज्ञान का भंडार है, बल्कि मानव जीवन के विविध पहलुओं को समझने और उन्हें सुचारु रूप से संचालित करने का विज्ञान भी है। वेदों में निहित सामाजिक और नैतिक मूल्य आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं, जितने हजारों वर्ष पूर्व थे। यह अध्याय वेदों में निहित सामाजिक और नैतिक मूल्यों का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जिससे हम समझ सकें कि किस प्रकार वैदिक ज्ञान आधुनिक समाज के लिए भी मार्गदर्शक बन सकता है। वेद भारतीय संस्कृति की आधारशिला हैं, जिन्हें अपौरुषेय (अमानवीय) माना जाता है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद – इन चार वेदों में मानव जीवन के विभिन्न आयामों का विवेचन मिलता है। इन ग्रंथों में केवल धार्मिक अनुष्ठान ही नहीं, बल्कि समाज व्यवस्था, राजनीति, अर्थव्यवस्था, शिक्षा, परिवार, और व्यक्तिगत आचरण संबंधी मार्गदर्शन भी मिलता है। इन वैदिक मूल्यों की विशेषता यह है कि ये न केवल व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास पर बल देते हैं, बल्कि सामूहिक कल्याण और समग्र सामाजिक समरसता को भी महत्व देते हैं।

वैदिक सामाजिक व्यवस्था का आधार

वैदिक काल में समाज व्यवस्था के मूल में 'ऋत' की अवधारणा थी। 'ऋत' का अर्थ है – प्राकृतिक नियम या सार्वभौमिक व्यवस्था। इस अवधारणा के अनुसार प्रकृति की तरह ही मानव समाज भी कुछ नियमों से बंधा होना चाहिए, जिससे सामाजिक संतुलन बना रहे। ऋग्वेद में 'ऋत' का उल्लेख अनेक स्थानों पर मिलता है, जहां इसे न केवल प्राकृतिक नियम बल्कि नैतिक और आध्यात्मिक नियम के रूप में भी प्रस्तुत किया गया है। वैदिक समाज व्यवस्था में वर्ण व्यवस्था का विशेष महत्व था। प्रारंभिक वैदिक साहित्य में वर्ण व्यवस्था का आधार जन्म नहीं, बल्कि कर्म और गुण था। पुरुष सूक्त (ऋग्वेद 10.90) में वर्णित है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र – ये चारों वर्ण समाज रूपी पुरुष के विभिन्न अंगों से उत्पन्न हुए हैं। यह रूपक यह दर्शाता है कि किस प्रकार समाज के विभिन्न वर्ग एक-दूसरे पर निर्भर हैं और एक-दूसरे के पूरक हैं।

वैदिक समाज में परिवार की अवधारणा 'कुटुंब' पर आधारित थी। कुटुंब में न केवल माता-पिता और बच्चे, बल्कि विस्तृत परिवार के सदस्य भी शामिल थे। परिवार का मुखिया 'गृहपति' कहलाता था, जिसका कर्तव्य था परिवार के सभी सदस्यों का भरण-पोषण और संरक्षण करना। अथर्ववेद में परिवार की एकता और सामंजस्य पर विशेष बल दिया गया है। अथर्ववेद के एक मंत्र में कहा गया है: "संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्" अर्थात, "एक साथ चलो, एक साथ बोलो, एक-दूसरे के मन को जानो।" यह मंत्र परिवार और समाज में समन्वय और सद्भाव का संदेश देता है। वैदिक समाज में स्त्री-पुरुष समानता का भाव था। ऋग्वेद में अनेक ऋचाएँ ऐसी हैं, जिनकी रचना महिला ऋषिकाओं ने की थी। गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा, घोषा, अपाला जैसी विदुषी महिलाओं का उल्लेख वैदिक साहित्य में मिलता है। विवाह को एक पवित्र संस्कार माना जाता था, जिसमें पति-पत्नी को 'सहधर्मचारिणी' (धर्म का साथ निभाने वाली) कहा गया है। ऋग्वेद के विवाह सूक्त में वधू को संबोधित करते हुए कहा गया है: "सम्राज्ञी श्वशुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्रवां भव। ननान्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधि देवृषु॥" अर्थात, "तुम अपने ससुर, सास, ननद और देवर की रानी बनो।" यह मंत्र नवविवाहिता को परिवार में एक सम्मानजनक स्थान प्रदान करता है।

नैतिक मूल्यों का आधार: धर्म और कर्म

वैदिक दर्शन में धर्म और कर्म की अवधारणा नैतिक मूल्यों का आधार है। 'धर्म' शब्द संस्कृत धातु 'धृ' से बना है, जिसका अर्थ है 'धारण करना'। इस प्रकार, धर्म वह है जो समाज और जीवन को धारण करता है, जो व्यवस्था और संतुलन को बनाए रखता है। वैदिक साहित्य में धर्म को व्यापक अर्थ में परिभाषित किया गया है, जिसमें न केवल धार्मिक अनुष्ठान, बल्कि नैतिक कर्तव्य और सामाजिक उत्तरदायित्व भी शामिल हैं। 'कर्म' का सिद्धांत वैदिक नैतिकता का मूल आधार है। इस सिद्धांत के अनुसार, प्रत्येक कर्म का फल मिलता है, और व्यक्ति अपने कर्मों के लिए स्वयं उत्तरदायी है। यह सिद्धांत व्यक्ति को स्वयं के कार्यों के प्रति जागरूक और जिम्मेदार बनाता है। ऋग्वेद में कहा गया है: "यथा कर्म तथा फलम्" अर्थात, "जैसा कर्म, वैसा फल।" यह सिद्धांत न केवल व्यक्तिगत नैतिकता का आधार है, बल्कि सामाजिक न्याय और समानता का भी समर्थन करता है। वैदिक नैतिकता में 'यज्ञ' की अवधारणा भी महत्वपूर्ण है। यज्ञ केवल एक धार्मिक अनुष्ठान नहीं है, बल्कि त्याग और समर्पण का प्रतीक भी है। यजुर्वेद में यज्ञ को समाज के कल्याण का माध्यम बताया गया है। यज्ञ के माध्यम से न केवल देवताओं को प्रसन्न किया जाता था, बल्कि समाज में सामूहिक भावना और परस्पर सहयोग का भाव भी विकसित होता था। वैदिक नैतिकता का एक और महत्वपूर्ण पहलू है – 'ऋण' की अवधारणा। ऋण का अर्थ है 'कर्ज' या 'ऋणी होना'। वैदिक दर्शन के

अनुसार, प्रत्येक मनुष्य जन्म से ही चार प्रकार के ऋणों से बंधा होता है: देव ऋण (देवताओं के प्रति ऋण), पितृ ऋण (पूर्वजों के प्रति ऋण), ऋषि ऋण (ज्ञान देने वालों के प्रति ऋण) और मनुष्य ऋण (समाज के प्रति ऋण)। इन ऋणों को चुकाने के लिए व्यक्ति को यज्ञ, श्राद्ध, स्वाध्याय और अतिथि सेवा जैसे कर्म करने होते हैं। यह अवधारणा व्यक्ति को समाज और प्रकृति के प्रति उत्तरदायी बनाती है।

सत्य और अहिंसा: वैदिक नैतिकता के स्तंभ

वैदिक नैतिकता के दो प्रमुख स्तंभ हैं – सत्य और अहिंसा। सत्य को वेदों में सर्वोच्च मूल्य माना गया है। ऋग्वेद में कहा गया है: "ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत" अर्थात, "ऋत और सत्य तपस्या से उत्पन्न हुए हैं।" यहां 'ऋत' प्राकृतिक नियम है और 'सत्य' मानवीय आचरण का आधार। सत्य का पालन न केवल वाणी में, बल्कि विचार और कर्म में भी आवश्यक माना गया है। अहिंसा भी वैदिक नैतिकता का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है। अथर्ववेद में अहिंसा का संदेश स्पष्ट रूप से मिलता है: "मा हिंसिष्ट द्विपदं मा चतुष्पदम्" अर्थात, "न तो द्विपद (मनुष्य) की हिंसा करो, न ही चतुष्पद (पशु) की।" यह मंत्र सभी प्राणियों के प्रति अहिंसा का संदेश देता है। यजुर्वेद में भी अहिंसा पर बल दिया गया है: "अहिंसा परमो धर्मः" अर्थात, "अहिंसा सबसे बड़ा धर्म है।"

सत्य और अहिंसा के साथ-साथ, वैदिक नैतिकता में दान, दया, क्षमा, तप, त्याग जैसे मूल्यों पर भी बल दिया गया है। इन मूल्यों का पालन करने से न केवल व्यक्ति का नैतिक विकास होता है, बल्कि समाज में शांति और सद्भाव भी स्थापित होता है।

शिक्षा और ज्ञान: वैदिक समाज का आधार

वैदिक समाज में शिक्षा और ज्ञान को विशेष महत्व दिया गया था। शिक्षा का उद्देश्य केवल जीविकोपार्जन नहीं, बल्कि व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास था। वैदिक शिक्षा प्रणाली में 'गुरुकुल' व्यवस्था थी, जहां विद्यार्थी गुरु के साथ रहकर न केवल शास्त्रों का अध्ययन करते थे, बल्कि जीवन के व्यावहारिक पहलुओं को भी सीखते थे। ऋग्वेद में ज्ञान की देवी सरस्वती की स्तुति में कहा गया है: "या कुन्देन्दुतुषार हारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता, या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना..." यह मंत्र ज्ञान और विद्या के महत्व को दर्शाता है। वैदिक समाज में शिक्षा का अधिकार सभी को था, चाहे वे किसी भी वर्ण या लिंग के हों।

वैदिक शिक्षा का मूल मंत्र था: "सा विद्या या विमुक्तये" अर्थात, "वही ज्ञान सच्चा है, जो मुक्ति दिलाए।" यहां मुक्ति का अर्थ केवल आध्यात्मिक मुक्ति नहीं, बल्कि अज्ञान, पूर्वाग्रह और संकीर्णता से मुक्ति भी है। वैदिक दर्शन में ज्ञान को पांच प्रकार से वर्गीकृत किया गया है: (1) श्रवण (सुनना), (2) मनन (चिंतन करना), (3) निदिध्यासन (गहन अध्ययन), (4) साक्षात्कार (अनुभव करना), और (5) अनुभूति (आत्मसात करना)। वैदिक शिक्षा का एक महत्वपूर्ण पहलू था – शिष्य और गुरु का संबंध। गुरु को माता-पिता से भी ऊपर का स्थान दिया गया था: "माता पिता गुरु देवम्" अर्थात, "माता, पिता और गुरु देवता समान हैं।" गुरु न केवल शास्त्रों का ज्ञान देता था, बल्कि शिष्य के चरित्र निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था।

आर्थिक मूल्य और व्यवस्था

वैदिक समाज में आर्थिक व्यवस्था का आधार 'वसुधैव कुटुम्बकम्' (संपूर्ण विश्व एक परिवार है) की अवधारणा थी। इस अवधारणा के अनुसार, संपत्ति और संसाधनों का वितरण इस प्रकार होना चाहिए कि समाज के सभी वर्गों का कल्याण हो। अथर्ववेद में धन और संपत्ति को 'राष्ट्र' (राष्ट्र का कल्याण) से जोड़ा गया है। वैदिक अर्थव्यवस्था में 'गोधन' (गायों की संपत्ति) का विशेष महत्व था। गाय न केवल दूध, घी और अन्य उत्पादों का स्रोत थी, बल्कि कृषि कार्यों में भी सहायक थी। अथर्ववेद में गायों के संरक्षण और पालन पर विशेष ध्यान दिया गया है। कृषि वैदिक अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार थी। ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर कृषि कार्यों, फसलों और खेती के उपकरणों का उल्लेख मिलता है। यजुर्वेद में कृषि को 'उर्वरा' (धरती की उर्वरा शक्ति) से जोड़ा गया है। वैदिक समाज में अन्न को 'ब्रह्म' (परमात्मा) माना जाता था: "अन्नं ब्रह्म" अर्थात, "अन्न ही ब्रह्म है।" यह अवधारणा खाद्य सुरक्षा और कृषि के महत्व को दर्शाती है।

व्यापार और वाणिज्य भी वैदिक अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण अंग थे। ऋग्वेद में समुद्री व्यापार और नावों का उल्लेख मिलता है। वैदिक समाज में व्यापारियों का एक विशिष्ट वर्ग था – 'वणिक'। ये व्यापारी न केवल आर्थिक गतिविधियों में संलग्न थे, बल्कि विभिन्न क्षेत्रों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। वैदिक अर्थव्यवस्था में 'दान' और 'दक्षिणा' की अवधारणा भी महत्वपूर्ण थी। दान का अर्थ था – स्वेच्छा से दिया गया धन या वस्तु, जबकि दक्षिणा गुरु या पुरोहित को दी जाने वाली भेंट थी। ये प्रथाएं न केवल आर्थिक पुनर्वितरण का माध्यम थीं, बल्कि सामाजिक सद्भाव और सहयोग को भी बढ़ावा देती थीं।

राजनीतिक मूल्य और व्यवस्था

वैदिक काल में राजनीतिक व्यवस्था का आधार 'राजन्य' वर्ण था, जिसे बाद में 'क्षत्रिय' कहा गया। राजा समाज का मुखिया होता था, जिसका प्रमुख कर्तव्य प्रजा का संरक्षण और न्याय प्रदान करना था। अथर्ववेद में राजा के कर्तव्यों का विस्तार से वर्णन किया गया है। वैदिक राजनीतिक दर्शन में 'राजधर्म' की अवधारणा महत्वपूर्ण थी। राजधर्म के अनुसार, राजा को निष्पक्ष, न्यायप्रिय और प्रजा-हितैषी होना चाहिए। ऋग्वेद में राजा को 'गोपा जनस्य' (जनता का रक्षक) कहा गया है। वैदिक राजनीतिक व्यवस्था में 'सभा' और 'समिति' नामक दो संस्थाएं थीं, जो आधुनिक लोकतांत्रिक संस्थाओं के समान थीं। सभा वरिष्ठ और अनुभवी लोगों की संस्था थी, जबकि समिति में सभी वर्गों के प्रतिनिधि शामिल होते थे। ये संस्थाएं राजा को परामर्श देती थीं और प्रशासनिक निर्णयों में भाग लेती थीं।

वैदिक राजनीतिक दर्शन में युद्ध और शांति दोनों पर विचार किया गया है। युद्ध को अंतिम विकल्प माना जाता था, और शांति स्थापना को प्राथमिकता दी जाती थी। अथर्ववेद में 'शांति सूक्त' में कहा गया है: "शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा..." अर्थात, "मित्र, वरुण, अर्यमा हमारे लिए शांतिदायक हों।" यह मंत्र विश्व शांति और सद्भाव का संदेश देता है। वैदिक राजनीतिक दर्शन का एक महत्वपूर्ण पहलू है – 'विराट' की अवधारणा। विराट का अर्थ है – विशाल या व्यापक। इस अवधारणा के अनुसार, समाज और राष्ट्र एक जीवित संरचना है, जिसके विभिन्न अंग एक-दूसरे पर निर्भर हैं। पुरुष सूक्त में इस अवधारणा का विस्तार से वर्णन किया गया है।

परिवार और विवाहः सामाजिक संस्थाओं का आधार

वैदिक समाज में परिवार को सामाजिक संरचना की मूल इकाई माना जाता था। परिवार न केवल रक्त संबंधों पर आधारित था, बल्कि सामूहिक जीवन और सहयोग का प्रतीक भी था। अथर्ववेद में परिवार के सदस्यों के बीच सद्भाव और एकता का संदेश दिया गया है: "सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः। अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥" अर्थात, "मैं तुम्हारे हृदयों में एकता और मन में समानता उत्पन्न करता हूँ, विद्वेष को दूर करता हूँ। जैसे गाय अपने नवजात बछड़े से प्रेम करती है, वैसे ही तुम एक-दूसरे से प्रेम करो।" वैदिक समाज में विवाह एक पवित्र संस्कार माना जाता था। ऋग्वेद के विवाह सूक्त में विवाह के विभिन्न पहलुओं का वर्णन मिलता है। विवाह के समय वर और वधू को दिए जाने वाले आशीर्वाद में कहा जाता था: "धर्मचर्या परोऽधर्मः, अर्थात् "धर्म का पालन करते हुए जीवन बिताओ।" विवाह का उद्देश्य केवल शारीरिक संतुष्टि नहीं, बल्कि धर्म, अर्थ और काम – तीनों पुरुषार्थों की प्राप्ति था।

वैदिक समाज में 'अग्निहोत्र' (अग्नि की पूजा) को परिवार का आधार माना जाता था। प्रत्येक गृहस्थ को प्रतिदिन अग्निहोत्र करना होता था, जिससे परिवार में सुख, शांति और समृद्धि बनी रहे। अथर्ववेद में गृहस्थ जीवन के महत्व पर बल दिया गया है: "गृहस्थो ब्रह्मचारिभ्यो वानप्रस्थेभ्य: संन्यासिभ्यश्च भिक्षां दद्यात्" अर्थात, "गृहस्थ को ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी – सभी को भोजन देना चाहिए।" यह मंत्र गृहस्थ जीवन के सामाजिक महत्व को दर्शाता है। वैदिक समाज में 'आश्रम व्यवस्था' के अंतर्गत जीवन को चार भागों में विभाजित किया गया था: ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। इस व्यवस्था का उद्देश्य व्यक्ति के जीवन को क्रमबद्ध और अनुशासित बनाना था, जिससे वह अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए आध्यात्मिक विकास भी कर सके।

प्रकृति और पर्यावरण: वैदिक दृष्टिकोण

वैदिक दर्शन में प्रकृति और पर्यावरण को विशेष महत्व दिया गया है। वेदों में प्रकृति को देवी-देवताओं के रूप में पूजा जाता है। सूर्य, चंद्र, वायु, अग्नि, वरुण (जल) आदि प्राकृतिक तत्वों की देवता के रूप में वंदना की गई है। यह प्रकृति के प्रति श्रद्धा और सम्मान का प्रतीक है। ऋग्वेद में पृथ्वी को 'माता' कहा गया है: "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः" अर्थात, "पृथ्वी मेरी माता है और मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ।" यह मंत्र मानव और प्रकृति के बीच मातृ-पुत्र संबंध को दर्शाता है। वैदिक दर्शन में प्रकृति के सभी तत्वों को परस्पर जुड़ा हुआ माना गया है। अथर्ववेद में कहा गया है: "द्यौः शान्तिः अन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिः आपः शान्तिः ओषधयः शान्तिः..." अर्थात, "आकाश में शांति हो, अंतरिक्ष में शांति हो, पृथ्वी पर शांति हो, जल में शांति हो, औषधियों में शांति हो..." यह मंत्र प्रकृति के विभिन्न तत्वों के बीच सामंजस्य और संतुलन का महत्व बताता है।

वैदिक समाज में वनों और वृक्षों का विशेष महत्व था। अथर्ववेद में वनों की रक्षा का संदेश दिया गया है: "वनस्पते वीडवङ्गो हि भूयाः अस्मां सूर्यात् परिपाहि त्वम्" अर्थात, "हे वनस्पति! तुम शाखाओं से युक्त होकर बढ़ते रहो और हमें सूर्य की तपन से बचाओ।" यह मंत्र वनों के पर्यावरणीय महत्व को दर्शाता है। वैदिक समाज में जल संरक्षण पर भी बल दिया गया था। ऋग्वेद में जल को 'अमृत' (अमरता देने वाला) कहा गया है: "आपो हि ष्ठा मयोभुवः..." यह मंत्र जल के महत्व और उसके संरक्षण का संदेश देता है। वैदिक दर्शन में जल को पवित्र माना जाता था, और उसे प्रदूषित करना पाप माना जाता था। वैदिक समाज में पशु-पक्षियों को भी सम्मान दिया जाता था। गाय, हाथी, घोड़ा, सिंह, सर्प, गरुड़ आदि अनेक पशु-पक्षियों को देवताओं

के वाहन या प्रतीक के रूप में माना जाता था। अथर्ववेद में पशुओं की रक्षा का संदेश दिया गया है: "मा नो गोषु अश्वेषु वीरेषु..." अर्थात, "हमारी गायों, घोड़ों और वीरों की रक्षा करो।"

आध्यात्मिक मूल्य और साधना

वैदिक दर्शन में आध्यात्मिक मूल्यों का विशेष महत्व है। वेदों का मूल संदेश है – आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान। ऋग्वेद में कहा गया है: "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" अर्थात, "सत्य एक है, विद्वान उसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं।" यह मंत्र धार्मिक समन्वय और सहिष्णुता का संदेश देता है। वैदिक साधना का मूल लक्ष्य है – 'मोक्ष' या 'मुक्ति'। मोक्ष का अर्थ है – जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वेदों में विभिन्न साधना मार्गों का वर्णन मिलता है: ज्ञान मार्ग, भक्ति मार्ग और कर्म मार्ग। ज्ञान मार्ग में आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान पर बल दिया जाता है। उपनिषदों में 'तत्त्वमसि' (वह तू है), 'अहं ब्रह्मास्मि' (मैं ब्रह्म हूँ) जैसे महावाक्यों के माध्यम से आत्मा और परमात्मा की एकता का ज्ञान कराया जाता है।

भक्ति मार्ग में ईश्वर के प्रति प्रेम और समर्पण पर बल दिया जाता है। वेदों में विभिन्न देवताओं की स्तुति और उपासना के मंत्र मिलते हैं। इन मंत्रों का उद्देश्य ईश्वर के प्रति श्रद्धा और समर्पण का भाव जगाना है। कर्म मार्ग में निष्काम कर्म पर बल दिया जाता है। निष्काम कर्म का अर्थ है – फल की इच्छा के बिना कर्म करना। यजुर्वेद में कहा गया है: "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः" अर्थात, "कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करो।" यह मंत्र कर्मयोग का संदेश देता है। वैदिक साधना में 'योग' का विशेष महत्व है। योग का अर्थ है – 'जुड़ना' या 'एकता'। योग के माध्यम से व्यक्ति अपनी आत्मा को परमात्मा से जोड़ता है। यजुर्वेद में योग के विभिन्न अंगों का वर्णन मिलता है: यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

सामाजिक एकता और समरसता

वैदिक दर्शन में सामाजिक एकता और समरसता पर विशेष बल दिया गया है। ऋग्वेद में एक प्रसिद्ध मंत्र है: "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" अर्थात, "सत्य एक है, विद्वान उसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं।" यह मंत्र धार्मिक समन्वय और सहिष्णुता का संदेश देता है, जो सामाजिक एकता का आधार है। अथर्ववेद में सामाजिक समरसता का संदेश दिया गया है: "संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्" अर्थात, "एक साथ चलो, एक साथ बोलो, एक-दूसरे के मन को जानो।" यह मंत्र सामूहिक सद्भाव और समन्वय का संदेश देता

है। वैदिक समाज में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' (संपूर्ण विश्व एक परिवार है) की अवधारणा थी। इस अवधारणा के अनुसार, पूरा विश्व एक परिवार की तरह है, और सभी मनुष्य एक-दूसरे के भाई-बहन हैं। यह अवधारणा विश्व बंधुत्व और अंतर्राष्ट्रीय सद्भाव का आधार है। वैदिक समाज में विविधता में एकता का दर्शन था। विभिन्न वर्णों, जातियों, धर्मों और भाषाओं के लोग एक साथ रहते थे, और एक-दूसरे के सांस्कृतिक मूल्यों का सम्मान करते थे। ऋग्वेद में कहा गया है: "आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः" अर्थात, "हमारे पास सभी दिशाओं से कल्याणकारी विचार आएं।" यह मंत्र सांस्कृतिक आदान-प्रदान और समन्वय का संदेश देता है।

स्वास्थ्य और आयुर्वेद

वैदिक दर्शन में स्वास्थ्य को विशेष महत्व दिया गया है। अथर्ववेद में स्वास्थ्य संबंधी अनेक मंत्र मिलते हैं, जिन्हें 'भैषज्य सूक्त' कहा जाता है। इन मंत्रों में विभिन्न रोगों के उपचार और स्वास्थ्य संरक्षण के उपाय बताए गए हैं। वैदिक चिकित्सा पद्धति 'आयुर्वेद' का मूल स्रोत अथर्ववेद है। आयुर्वेद का अर्थ है – 'आयु का ज्ञान'। आयुर्वेद में शरीर को तीन दोषों – वात, पित्त और कफ का संतुलन माना जाता है। इन दोषों का असंतुलन रोग का कारण होता है। अथर्ववेद में विभिन्न औषधियों और उनके उपयोग का वर्णन मिलता है। वैदिक काल में जड़ी-बूटियों, खनिजों और पशु उत्पादों से बनी औषधियों का प्रयोग किया जाता था। अथर्ववेद में औषधियों की स्तुति में कहा गया है: "या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा..." अर्थात, "जो औषधियां देवताओं से पहले, तीन युगों से पहले उत्पन्न हुई हैं..."

वैदिक दर्शन में स्वास्थ्य का अर्थ केवल शारीरिक स्वास्थ्य नहीं, बल्कि मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य भी है। यजुर्वेद में प्रार्थना की गई है: "ॐ सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥" अर्थात, "सभी सुखी हों, सभी रोगमुक्त हों, सभी कल्याण देखें, कोई दुःखी न हो।" यह मंत्र सार्वभौमिक स्वास्थ्य और कल्याण का संदेश देता है।

कला और सौंदर्य

वैदिक साहित्य में कला और सौंदर्य को भी महत्व दिया गया है। ऋग्वेद में कवि को 'ऋषि' या 'कवि' कहा गया है, जो अपनी कल्पना और प्रतिभा से नए-नए काव्य की रचना करता है। वैदिक मंत्रों में काव्यात्मकता, छंद, अलंकार और रस का समावेश मिलता है। सामवेद संगीत का वेद है। इसमें ऋग्वेद के मंत्रों को संगीतबद्ध किया गया है। सामवेद के मंत्रों को 'साम' कहा जाता है, जिसका अर्थ है – 'गान'। सामवेद में

सात स्वरों – षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद का उल्लेख मिलता है, जो आधुनिक संगीत के सा, रे, गा, मा, पा, धा, नि के समान हैं। यजुर्वेद में नृत्य और अभिनय का उल्लेख मिलता है। वैदिक अनुष्ठानों में नृत्य और संगीत का विशेष महत्व था। ये कलाएं न केवल मनोरंजन का माध्यम थीं, बल्कि आध्यात्मिक साधना का भी अंग थीं।

वैदिक समाज में वास्तुकला और मूर्तिकला भी विकसित थी। यजुर्वेद में यज्ञवेदी, अग्निकुंड और यज्ञमंडप के निर्माण का विस्तार से वर्णन मिलता है। ये निर्माण न केवल कलात्मक थे, बल्कि वैज्ञानिक सिद्धांतों पर भी आधारित थे। वैदिक काल में आभूषण, वस्त्र और अलंकरण कला भी विकसित थी। ऋग्वेद में सोने, चांदी, मोती और रत्नों से बने आभूषणों का उल्लेख मिलता है। ये आभूषण न केवल सौंदर्य के लिए, बल्कि सामाजिक स्थिति के प्रतीक के रूप में भी पहने जाते थे।

वैदिक मूल्यों की प्रासंगिकता

वैदिक सामाजिक और नैतिक मूल्य आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं, जितने हजारों वर्ष पूर्व थे। आधुनिक समाज में अनेक समस्याएं – जैसे पर्यावरण प्रदूषण, सामाजिक विघटन, नैतिक पतन, और मानसिक तनाव – इसलिए उत्पन्न हुई हैं, क्योंकि हमने वैदिक मूल्यों को भुला दिया है। वैदिक पर्यावरण संरक्षण के सिद्धांत आज के समय में विशेष रूप से प्रासंगिक हैं। जब वैश्विक तापमान वृद्धि, वनों की कटाई, जल प्रदूषण और जैव विविधता का ह्रास जैसी समस्याएं विश्व के समक्ष चुनौती बन गई हैं, तब वैदिक 'प्रकृति पूजा' की अवधारणा हमें प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण संबंध स्थापित करने का मार्ग दिखाती है।

वैदिक 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा अंतर्राष्ट्रीय शांति और सहयोग का आधार बन सकती है। जब विश्व धार्मिक, जातीय और राष्ट्रीय विवादों से ग्रस्त है, तब यह अवधारणा हमें विश्व बंधुत्व और मानवीय एकता का संदेश देती है। वैदिक निष्काम कर्म का सिद्धांत व्यक्तिगत और व्यावसायिक नैतिकता का आधार बन सकता है। यह सिद्धांत हमें सिखाता है कि अपने कर्तव्य का पालन निष्ठापूर्वक करना चाहिए, बिना फल की चिंता किए। यह दृष्टिकोण व्यावसायिक नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व को बढ़ावा देता है।

वैदिक 'ऋण' की अवधारणा हमें सामाजिक और पर्यावरणीय उत्तरदायित्व का बोध कराती है। यह अवधारणा हमें सिखाती है कि हम अपने पूर्वजों, ज्ञानदाताओं, समाज और प्रकृति के प्रति ऋणी हैं, और इन

ऋणों को चुकाना हमारा कर्तव्य है। वैदिक 'सत्य' और 'अहिंसा' के सिद्धांत व्यक्तिगत और सामाजिक आचरण के मार्गदर्शक बन सकते हैं। ये सिद्धांत हमें सिखाते हैं कि सत्य का पालन करना और किसी भी प्राणी को हानि न पहुंचाना सबसे बड़ा धर्म है।

आधुनिक सन्दर्भ में वैदिक मूल्य

आधुनिक युग में, जहां तकनीकी विकास और वैश्वीकरण ने जीवन को तेज़ और जटिल बना दिया है, वैदिक मूल्य जीवन को सरल, शांतिपूर्ण और अर्थपूर्ण बनाने में सहायक हो सकते हैं। वैदिक साहित्य में निहित ज्ञान और विज्ञान आधुनिक समस्याओं के समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। वैदिक शिक्षा प्रणाली, जिसमें आत्म-अनुशासन, गुरु-शिष्य परंपरा और व्यावहारिक ज्ञान पर बल दिया जाता है, आधुनिक शिक्षा प्रणाली को समृद्ध कर सकती है। वैदिक मनोविज्ञान, जिसमें मन, बुद्धि और आत्मा की अवधारणाओं का विस्तार से वर्णन मिलता है, आधुनिक मनोवैज्ञानिक समस्याओं के समाधान में सहायक हो सकता है। वैदिक चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद, जिसमें रोग की रोकथाम और स्वास्थ्य संरक्षण पर बल दिया जाता है, आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के साथ मिलकर स्वास्थ्य सेवाओं को अधिक प्रभावी बना सकती है। आयुर्वेदिक औषधियां और उपचार पद्धतियां अनेक आधुनिक रोगों के लिए वैकल्पिक उपचार प्रदान कर सकती हैं।

वैदिक अर्थव्यवस्था के सिद्धांत, जिनमें सामूहिक कल्याण, संसाधनों का न्यायपूर्ण वितरण और पर्यावरण संरक्षण पर बल दिया जाता है, आधुनिक आर्थिक व्यवस्था को अधिक न्यायपूर्ण और स्थिर बना सकते हैं। वैदिक अर्थशास्त्र में 'लोकसंग्रह' (सार्वजनिक कल्याण) की अवधारणा आधुनिक सामाजिक न्याय के सिद्धांतों से मेल खाती है। वैदिक राजनीतिक दर्शन, जिसमें राजा (शासक) को प्रजा का सेवक माना जाता है, आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था को मज़बूत बना सकता है। वैदिक 'राजधर्म' के सिद्धांत आधुनिक राजनेताओं और अधिकारियों के लिए आचार संहिता का आधार बन सकते हैं।

वेदों में निहित सामाजिक और नैतिक मूल्य भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर हैं। ये मूल्य न केवल व्यक्तिगत जीवन को समृद्ध बनाते हैं, बल्कि सामाजिक सद्भाव, पर्यावरण संरक्षण और वैश्विक शांति का भी आधार हैं। वैदिक ज्ञान का महत्व इसकी प्राचीनता में नहीं, बल्कि इसकी सार्वकालिक और सार्वभौमिक प्रासंगिकता में है। आधुनिक समाज की जटिल समस्याओं का समाधान करने के लिए हमें वैदिक मूल्यों की ओर लौटना होगा। ये मूल्य हमें सिखाते हैं कि सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा, त्याग, और सेवा – ये मानव

जीवन के शाश्वत मूल्य हैं, जो किसी भी काल और परिस्थिति में प्रासंगिक रहेंगे। वैदिक मूल्यों का अध्ययन और अनुसरण करके हम न केवल अपने व्यक्तिगत जीवन को समृद्ध बना सकते हैं, बल्कि एक बेहतर समाज और विश्व का निर्माण भी कर सकते हैं। वेदों का संदेश है – "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" अर्थात, "इस विश्व को श्रेष्ठ बनाओ।" यह संदेश आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जितना हजारों वर्ष पूर्व था। वैदिक ऋषियों ने जो ज्ञान हजारों वर्ष पहले प्राप्त किया था, वह आज भी मानव जाति के लिए मार्गदर्शक बना हुआ है। वैदिक मूल्यों का अनुसरण करके हम अपने जीवन को अधिक अर्थपूर्ण, शांतिपूर्ण और आनंदमय बना सकते हैं, और एक बेहतर विश्व का निर्माण कर सकते हैं, जहां सभी प्राणी शांति और सद्भाव से रह सकें। अंत में, यह कहा जा सकता है कि वेदों में निहित सामाजिक और नैतिक मूल्य भारतीय संस्कृति की ही नहीं, बल्कि संपूर्ण मानव सभ्यता की अमूल्य धरोहर हैं। इन मूल्यों का अध्ययन, अनुसंधान और प्रसार करना हमारा कर्तव्य है, ताकि आने वाली पीढ़ियां भी इस अमूल्य ज्ञान का लाभ उठा सकें और अपने जीवन को सार्थक बना सकें। वेदों का संदेश सार्वकालिक और सार्वभौमिक है, जो मानव जाति को आध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक उत्थान का मार्ग दिखाता है।

इकाई 9: उपनिषद और दर्शन, मोक्ष की अवधारणा, षट्दर्शन, सांख्य और योग दर्शन

भारतीय दार्शनिक परंपरा विश्व की प्राचीनतम और समृद्धतम विचारधाराओं में से एक है। इसका इतिहास लगभग तीन हजार वर्षों का है, जिसमें अनेक महत्वपूर्ण दार्शनिक ग्रंथों, विचारों और सिद्धांतों का विकास हुआ है। इस समृद्ध परंपरा में उपनिषद, वेदांत, और षट्दर्शन जैसे महत्वपूर्ण दार्शनिक स्तंभ हैं, जिन्होंने न केवल भारतीय संस्कृति और धर्म को प्रभावित किया है, बल्कि वैश्विक दर्शन में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस अध्याय में हम भारतीय दर्शन के इन महत्वपूर्ण पहलुओं का विस्तृत अध्ययन करेंगे। सर्वप्रथम, हम उपनिषदों की दार्शनिक अवधारणाओं पर चर्चा करेंगे, जो वेदों के ज्ञानकांड का प्रतिनिधित्व करते हैं और भारतीय दर्शन की आधारशिला माने जाते हैं। इसके बाद, हम मोक्ष की अवधारणा का गहन विश्लेषण करेंगे, जो भारतीय दर्शन का केंद्रीय लक्ष्य है। तत्पश्चात, हम भारतीय दर्शन के छह प्रमुख दर्शनों - न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदांत - का परिचय देंगे। अंत में, हम सांख्य और योग दर्शन पर विशेष ध्यान केंद्रित करेंगे, उनके सिद्धांतों, अवधारणाओं और आधुनिक समय में उनकी प्रासंगिकता का विस्तृत विवेचन करेंगे। यह अध्याय भारतीय दर्शन के इन पहलुओं को समझने में रुचि रखने वाले पाठकों के लिए एक व्यापक मार्गदर्शिका के रूप में कार्य करेगा, जिससे वे इन गहन दार्शनिक विचारों को अपने जीवन में भी उतार सकें।

उपनिषदः ज्ञान का अमृत स्रोत

उपनिषदों का परिचय और महत्व

उपनिषद वैदिक साहित्य के अंतिम भाग हैं, जिन्हें 'वेदांत' भी कहा जाता है, जिसका अर्थ है 'वेद का अंत या चरम लक्ष्य'। 'उपनिषद' शब्द संस्कृत के 'उप' (निकट), 'नि' (नीचे) और 'षद' (बैठना) से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है 'गुरु के निकट बैठकर प्राप्त किया गया ज्ञान'। प्राचीन काल में, शिष्य अपने गुरु के समीप बैठकर आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करते थे, इसलिए इन ग्रंथों को उपनिषद कहा गया। उपनिषदों की संख्या के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ के अनुसार इनकी संख्या 108 या उससे भी अधिक है, जबकि आचार्य शंकर ने 10 प्रमुख उपनिषदों पर भाष्य लिखा है, जिन्हें दश मुख्य उपनिषद कहा जाता है। ये हैं: ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुंडक, मांडूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छांदोग्य और बृहदारण्यक उपनिषद। उपनिषद भारतीय दर्शन के मूल स्रोत हैं और इनका प्रभाव न केवल भारतीय दार्शनिक परंपरा पर, बल्कि विश्व के अनेक विचारकों और दार्शनिकों पर भी पड़ा है। जर्मन दार्शनिक शोपेनहॉवर ने उपनिषदों को 'सबसे उच्च मानवीय ज्ञान' कहा था। अमेरिकी दार्शनिक राल्फ वाल्डो इमर्सन और हेनरी डेविड थोरो भी उपनिषदों से गहराई से प्रभावित थे।

उपनिषदों के मूल सिद्धांत

उपनिषदों में अनेक गहन दार्शनिक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है, जिनमें ब्रह्म, आत्मा, माया, कर्म और मोक्ष जैसी अवधारणाएँ प्रमुख हैं।

ब्रह्म और आत्मा की अवधारणा

उपनिषदों का सबसे मौलिक सिद्धांत 'ब्रह्म' और 'आत्मा' की अवधारणा है। ब्रह्म सर्वव्यापी, शाश्वत, निर्गुण और निराकार परम सत्य है, जो सृष्टि का मूल कारण है। आत्मा व्यक्तिगत चेतना या जीवात्मा है। उपनिषदों का महान संदेश 'अयम् आत्मा ब्रह्म' (यह आत्मा ब्रह्म है) और 'तत्त्वमसि' (वह तू है) जैसे महावाक्यों में निहित है, जो आत्मा और ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन करते हैं। बृहदारण्यक उपनिषद में याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी के संवाद में यह कहा गया है: "न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति, आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति" अर्थात "पति, पति के लिए प्रिय नहीं होता, बल्कि आत्मा के लिए प्रिय होता है।" इस प्रकार, उपनिषद बताते हैं कि सभी प्रेम वास्तव में आत्मा के प्रति प्रेम है। छांदोग्य उपनिषद में, उद्दालक अपने पुत्र

श्वेतकेतु को विभिन्न उदाहरणों द्वारा समझाते हैं कि कैसे सूक्ष्म तत्व (ब्रह्म) सभी वस्तुओं में व्याप्त है, जैसे नमक पानी में घुलकर अदृश्य हो जाता है लेकिन उसका स्वाद हर कण में मौजूद रहता है। वे अपने उपदेश को "तत्त्वमसि" (वह तू है) महावाक्य के साथ समाप्त करते हैं, जो आत्मा और ब्रह्म की एकता का प्रतीक है।

माया की अवधारणा

उपनिषदों में 'माया' की अवधारणा भी महत्वपूर्ण है। माया वह शक्ति है जो जगत की विविधता और भिन्नता का भ्रम उत्पन्न करती है। यह ब्रह्म की वह शक्ति है जिसके कारण अद्वैत ब्रह्म अनेक रूपों में प्रतीत होता है। माया के कारण ही हम आत्मा और ब्रह्म की एकता को नहीं पहचान पाते और जगत को वास्तविक मानकर उसमें आसक्त हो जाते हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद में कहा गया है: "मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं च महेश्वरम्" अर्थात "प्रकृति को माया जानो और महेश्वर को मायावी।" यहाँ प्रकृति (जगत) को माया और ईश्वर को उसका नियंता बताया गया है।

कर्म सिद्धांत

उपनिषदों में कर्म सिद्धांत का भी विस्तृत वर्णन मिलता है। इसके अनुसार, हमारे सभी कर्मों का फल हमें अवश्य भोगना पड़ता है। अच्छे कर्मों का अच्छा फल और बुरे कर्मों का बुरा फल मिलता है। कर्मों के फल के कारण ही जीवात्मा जन्म-मृत्यु के चक्र में बंधी रहती है। बृहदारण्यक उपनिषद में कहा गया है: "यथाकारी यथाचारी तथा भवति" अर्थात "जैसा करता है, जैसा आचरण करता है, वैसा ही बन जाता है।" इस प्रकार, हमारे कर्म ही हमारे भविष्य को निर्धारित करते हैं।

उपनिषदों का दार्शनिक योगदान

उपनिषदों का भारतीय दर्शन में अद्वितीय योगदान है। ये वेदों के कर्मकांड से आगे बढ़कर ज्ञानकांड पर बल देते हैं और आध्यात्मिक अनुभूति को महत्व देते हैं। उपनिषदों ने भारतीय दर्शन को निम्नलिखित महत्वपूर्ण अवधारणाएँ दी हैं:

आत्म-साक्षात्कार का महत्व: उपनिषद आत्म-साक्षात्कार को जीवन का परम लक्ष्य मानते हैं। मुंडक उपनिषद में कहा गया है: "ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति" अर्थात "ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है।" इस प्रकार, आत्म-ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

अद्वैत दर्शन का आधार: उपनिषदों ने अद्वैत वेदांत के दर्शन का आधार प्रदान किया, जिसे बाद में आचार्य शंकर ने विस्तार से प्रतिपादित किया। अद्वैत दर्शन के अनुसार, ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है, और जगत माया के कारण भिन्न प्रतीत होता है।

नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का प्रतिपादन: उपनिषदों में नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों पर भी बल दिया गया है। तैत्तिरीय उपनिषद का प्रसिद्ध वचन है: "सत्यं वद, धर्मं चर" अर्थात "सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो।" इस प्रकार, उपनिषद केवल दार्शनिक सिद्धांतों तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि वे जीवन के व्यावहारिक पहलुओं पर भी मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

ज्ञान की प्रकृति पर विचार: उपनिषदों में ज्ञान की प्रकृति पर गहन चिंतन मिलता है। केन उपनिषद में कहा गया है: "यत् वाचा अनभ्युदितम् येन वाक् अभ्युद्यते" अर्थात "जो वाणी से नहीं कहा जा सकता, जिसके द्वारा वाणी प्रकट होती है।" इस प्रकार, उपनिषद बताते हैं कि सत्य की अनुभूति शब्दों से परे है।

उपनिषदों का आधुनिक प्रासंगिकता: उपनिषदों के सिद्धांत आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने वे हजारों वर्ष पहले थे। आधुनिक विज्ञान और मनोविज्ञान के विकास के साथ, उपनिषदों के कई सिद्धांतों की वैज्ञानिक पुष्टि हुई है।

आधुनिक भौतिकी और उपनिषद: आधुनिक क्वांटम भौतिकी के कई सिद्धांत उपनिषदों के विचारों से मेल खाते हैं। जैसे, क्वांटम भौतिकी का अनिश्चितता का सिद्धांत और उपनिषदों का माया सिद्धांत, दोनों ही यह बताते हैं कि हमारा अनुभव किया हुआ जगत वास्तविकता का पूर्ण चित्रण नहीं है।

प्रसिद्ध भौतिक विज्ञानी अर्विन श्रोडिंगर, जिन्होंने क्वांटम मैकेनिक्स में महत्वपूर्ण योगदान दिया, उपनिषदों से गहराई से प्रभावित थे। उन्होंने अपनी पुस्तक "माई व्यू ऑफ द वर्ल्ड" में लिखा है: "उपनिषदों का निष्कर्ष अद्भुत रूप से स्पष्ट और एकमत है... चेतना एक और अद्वितीय है।"

मनोविज्ञान और उपनिषद

आधुनिक मनोविज्ञान में, विशेषकर युंग के अवचेतन और सामूहिक अवचेतन के सिद्धांत, उपनिषदों के आत्मा और ब्रह्म के सिद्धांतों से समानता रखते हैं। युंग ने स्वयं उपनिषदों का अध्ययन किया था और उनसे प्रभावित थे।

वैश्विक शांति और एकता में योगदान: उपनिषदों का 'वसुधैव कुटुम्बकम्' (पूरी दुनिया एक परिवार है) का संदेश आज के विभाजित विश्व में शांति और एकता स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। उपनिषदों का 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (सब कुछ ब्रह्म है) का सिद्धांत सभी जीवों और प्राकृतिक संसाधनों के प्रति सम्मान और संरक्षण का संदेश देता है।

मोक्ष की अवधारणा: आत्मा की परम मुक्ति

मोक्ष का अर्थ और महत्व

मोक्ष भारतीय दर्शन का केंद्रीय लक्ष्य है, जिसका अर्थ है आत्मा की परम मुक्ति या स्वतंत्रता। यह जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति और परमानंद की प्राप्ति है। विभिन्न भारतीय दर्शनिक परंपराओं में मोक्ष की अवधारणा थोड़ी भिन्न हो सकती है, लेकिन मूल रूप से यह दुःख से मुक्ति और परम आनंद की प्राप्ति को ही संदर्भित करता है। मुंडक उपनिषद में मोक्ष की अवस्था का वर्णन इस प्रकार किया गया है: "तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति" अर्थात "तब ज्ञानी पुण्य और पाप दोनों को त्यागकर, निर्मल होकर, परम साम्य (समता) को प्राप्त करता है।"

विभिन्न दर्शनों में मोक्ष की अवधारणा

भारतीय दर्शन के विभिन्न संप्रदायों में मोक्ष की अवधारणा में थोड़ी भिन्नता है:

अद्वैत वेदांत में मोक्ष

अद्वैत वेदांत के अनुसार, मोक्ष आत्मा और ब्रह्म की एकता का ज्ञान है। जब व्यक्ति यह जान लेता है कि 'अहं ब्रह्मास्मि' (मैं ब्रह्म हूँ), तो वह मुक्त हो जाता है। आचार्य शंकर के अनुसार, अविद्या (अज्ञान) के कारण ही हम आत्मा को शरीर, मन या बुद्धि समझ लेते हैं और दुःख का अनुभव करते हैं। ज्ञान के उदय से अविद्या नष्ट हो जाती है और हम अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान लेते हैं।

विशिष्टाद्वैत में मोक्ष: रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत के अनुसार, मोक्ष भगवान के साथ एकता नहीं, बल्कि उनके साथ निकटता और प्रेम का अनुभव है। मुक्त आत्मा अपनी व्यक्तिगत पहचान बनाए रखती है और भगवान के साथ प्रेमपूर्ण संबंध का आनंद लेती है।

द्वैत में मोक्ष: मध्वाचार्य के द्वैत दर्शन के अनुसार, मोक्ष भगवान के साथ सेवा और भक्ति का अनुभव है। मुक्त आत्मा भगवान से भिन्न रहती है और उनकी सेवा में परमानंद का अनुभव करती है।

सांख्य में मोक्ष: सांख्य दर्शन के अनुसार, मोक्ष पुरुष (आत्मा) और प्रकृति के भेद का ज्ञान है। जब पुरुष यह जान लेता है कि वह प्रकृति से भिन्न है, तो वह मुक्त हो जाता है।

योग में मोक्ष; पतंजलि के योग दर्शन के अनुसार, मोक्ष चित्त की वृत्तियों का निरोध है। जब चित्त की सभी वृत्तियाँ शांत हो जाती हैं, तो द्रष्टा (पुरुष) अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है, जिसे 'कैवल्य' कहा जाता है।

जैन दर्शन में मोक्ष: जैन दर्शन में मोक्ष को 'निर्वाण' कहा जाता है, जो आत्मा का कर्म-बंधनों से पूर्ण मुक्ति है। जब आत्मा सभी कर्मों से मुक्त हो जाती है, तो वह अपने शुद्ध स्वरूप में प्रकट होती है और अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख और अनंत वीर्य का अनुभव करती है।

बौद्ध दर्शन में मोक्ष: बौद्ध दर्शन में मोक्ष को 'निर्वाण' कहा जाता है, जो तृष्णा (इच्छा) के निरोध से प्राप्त होता है। बुद्ध ने आर्य अष्टांगिक मार्ग बताया, जिसका अनुसरण करके व्यक्ति निर्वाण प्राप्त कर सकता है।

मोक्ष प्राप्ति के मार्ग

भारतीय दर्शन में मोक्ष प्राप्ति के लिए विभिन्न मार्ग बताए गए हैं:

ज्ञान मार्ग: ज्ञान मार्ग आत्मा और ब्रह्म की एकता के ज्ञान पर आधारित है। इसमें श्रवण (गुरु से सुनना), मनन (चिंतन) और निदिध्यासन (ध्यान) के माध्यम से आत्म-ज्ञान प्राप्त किया जाता है। उपनिषदों और वेदांत दर्शन में इस मार्ग पर विशेष बल दिया गया है।

भक्ति मार्ग: भक्ति मार्ग ईश्वर के प्रति प्रेम और समर्पण पर आधारित है। इसमें नामस्मरण, कीर्तन, प्रार्थना आदि के माध्यम से ईश्वर से निकटता स्थापित की जाती है। भागवत पुराण और भक्ति सूत्र में इस मार्ग का विस्तृत वर्णन मिलता है।

कर्म मार्ग: कर्म मार्ग निष्काम कर्म पर आधारित है। इसमें फल की इच्छा के बिना कर्तव्य का पालन किया जाता है। भगवद्गीता में कर्म योग का विस्तृत वर्णन मिलता है, जिसमें कहा गया है: "कर्मण्येवाधिकारस्ते मां फलेषु कदाचन" अर्थात "कर्म करने का अधिकार तुम्हारा है, फल की इच्छा मत करो।"

राज योग: पतंजलि के योग दर्शन में वर्णित अष्टांग योग को राज योग कहा जाता है। इसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के माध्यम से चित्त की वृत्तियों का निरोध किया जाता है।

मोक्ष की प्रासंगिकता आधुनिक संदर्भ में

आधुनिक युग में, जहाँ तनाव, चिंता और अवसाद जैसी समस्याएँ बढ़ रही हैं, मोक्ष की अवधारणा विशेष रूप से प्रासंगिक हो जाती है। यद्यपि आधुनिक मनुष्य के लिए पूर्ण मोक्ष की प्राप्ति कठिन हो सकती है, लेकिन मोक्ष के सिद्धांतों और मार्गों का अनुसरण करके वह आंतरिक शांति और संतुष्टि प्राप्त कर सकता है।

मानसिक स्वास्थ्य और मोक्ष

आधुनिक मनोविज्ञान में, ध्यान और योग जैसी प्राचीन तकनीकों का उपयोग मानसिक स्वास्थ्य में सुधार के लिए किया जा रहा है। इन तकनीकों का मूल लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति था, लेकिन आज इनका उपयोग तनाव कम करने, एकाग्रता बढ़ाने और मानसिक शांति प्राप्त करने के लिए किया जाता है।

जीवन की गुणवत्ता में सुधार

मोक्ष के सिद्धांत हमें सिखाते हैं कि वास्तविक सुख बाहरी वस्तुओं में नहीं, बल्कि आंतरिक शांति में है। यह समझ आधुनिक उपभोक्तावादी संस्कृति में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, जहाँ लोग अक्

आत्म मूल्यांकन प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न (MCQs)

1. ऋग्वेद में कुल कितने मंडल हैं?

a) 8

b) 10

c) 12

d) 14

2. सामवेद का मुख्य विषय क्या है?

a) यज्ञ विधि

b) संगीत और स्तुति

c) जादू-टोना

d) ज्ञान का भंडार

3. अथर्ववेद में मुख्य रूप से क्या वर्णित है?

a) राजनीतिक व्यवस्था

b) औषधि एवं चिकित्सा विद्या

c) केवल यज्ञ विधि

d) केवल गणित

4. निम्नलिखित में से कौन-सा वेदांग व्याकरण से संबंधित है?

a) शिक्षा

b) कल्प

c) निरुक्त

d) पाणिनि का अष्टाध्यायी

5. 'छंद' वेदांग किससे संबंधित है?

a) वैदिक काव्य की व्याख्या

b) वैदिक स्वरों के उच्चारण

c) वैदिक पद्य के मात्रिक नियम

d) वैदिक शब्दों के अर्थ

6. निम्न में से कौन-सा उपनिषद सबसे प्राचीन माना जाता है?

a) छांदोग्य उपनिषद

b) बृहदारण्यक उपनिषद

c) ईशावास्य उपनिषद

d) मुंडक उपनिषद

7. योग दर्शन के प्रणेता कौन माने जाते हैं?

a) कपिल

b) पतंजलि

c) गौतम

d) जैमिनि

8. सांख्य दर्शन में कुल कितने तत्त्वों का वर्णन किया गया है?

a) 21

b) 24

c) 25

d) 30

9. यजुर्वेद मुख्यतः किस विषय से संबंधित है?

a) ज्ञान और विज्ञान

b) यज्ञ और कर्मकांड

c) संगीत और स्वर

d) चिकित्सा

10. वेदों में 'अष्टक', 'अध्याय', 'अनुवाक' और 'सूक्त' क्या दर्शाते हैं?

a) वेदों के अलग-अलग नाम

b) वेदों के रचनाकार

c) वेदों के विभाजन की इकाइयाँ

d) वेदों के देवता

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. ऋग्वेद की रचना शैली और विषय वस्तु पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
2. वेदों का साहित्यिक महत्व क्या है? संक्षेप में बताइए।
3. 'शिक्षा' वेदांग का वेदों के अध्ययन में क्या महत्व है?
4. वेदों में वर्णित सामाजिक मूल्यों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
5. 'मोक्ष' की अवधारणा को उपनिषदों के परिप्रेक्ष्य में समझाइए।
6. 'कल्प' वेदांग के मुख्य विषय क्या हैं?
7. वेदों में नैतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
8. योग दर्शन के आठ अंगों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
9. सांख्य दर्शन की प्रकृति और पुरुष की अवधारणा को संक्षेप में समझाइए।
10. वेदों में कर्म और धर्म की अवधारणा का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. चारों वेदों की संरचना, विषय वस्तु और महत्व का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. वेदों के साहित्यिक और दार्शनिक पक्ष का विश्लेषण कीजिए। वैदिक साहित्य का भारतीय संस्कृति पर क्या प्रभाव पड़ा?
3. छः वेदांगों का विस्तृत वर्णन करते हुए उनके महत्व और उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।
4. वेदों में सामाजिक और नैतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति किस प्रकार हुई है? विस्तार से व्याख्या कीजिए।

5. उपनिषदों के मुख्य दार्शनिक सिद्धांतों का विवेचन कीजिए। आधुनिक समय में उनकी प्रासंगिकता पर प्रकाश डालिए।
6. मोक्ष की अवधारणा का विभिन्न दर्शनों के परिप्रेक्ष्य में तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कीजिए।
7. "षड्दर्शन भारतीय चिंतन की एक समग्र प्रणाली है।" इस कथन की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
8. सांख्य और योग दर्शन के मूल सिद्धांतों का विश्लेषण कीजिए। दोनों दर्शनों के बीच अंतर्संबंध पर प्रकाश डालिए।
9. वैदिक काल में समाज व्यवस्था और जीवन शैली का वर्णन कीजिए। वेदों में वर्णित राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था पर प्रकाश डालिए।
10. वेदांग ज्योतिष का विस्तृत वर्णन करते हुए प्राचीन भारतीय ज्योतिष विज्ञान के योगदान पर प्रकाश डालिए।

मॉड्यूल 3

महाकाव्य, पुराण और नीति-साहित्य

उद्देश्य

- रामायण और महाभारत में निहित दार्शनिक विचारों और नैतिक मूल्यों को समझना।
- पुराणों की रचना, विषय-वस्तु और लोक जीवन में उनकी भूमिका का अध्ययन करना।
- लोकनृत्य और दर्शन के माध्यम से भारतीय संस्कृति की विविधता को जानना।
- नीति ग्रंथों जैसे चाणक्य नीति, हितोपदेश और पंचतंत्र की शिक्षाओं का विश्लेषण करना।
- नीति-साहित्य में निहित व्यवहारिक ज्ञान और उसकी उपयोगिता को समझना।
- स्त्री दृष्टिकोण से सामाजिक संरचना और साहित्यिक अभिव्यक्तियों का मूल्यांकन करना।
- महाकाव्यों और पुराणों के माध्यम से सांस्कृतिक विरासत की पहचान करना।
- नीति-साहित्य के माध्यम से नैतिक और सामाजिक चेतना को विकसित करना।

इकाई 10: रामायण और महाभारत में दर्शन और मूल्य

महाभारत में भीष्म, युधिष्ठिर और दुर्योधन के रूप में तीन राजनीतिक नेताओं का चित्रण किया गया है। भीष्म एक महान योद्धा और राजनीतिज्ञ हैं, लेकिन वे धृतराष्ट्र के पुत्रों के प्रति अपने कर्तव्य के कारण अधर्म का समर्थन करने के लिए विवश हो जाते हैं। युधिष्ठिर धर्मराज के नाम से जाने जाते हैं और वे हमेशा धर्म का पालन करते हैं। दुर्योधन एक महत्वाकांक्षी और स्वार्थी राजा हैं जो अपने स्वार्थ के लिए अधर्म का मार्ग अपनाते हैं। ये तीनों चरित्र राजनीति में धर्म और अधर्म के संघर्ष को दर्शाते हैं। महाभारत में विदुर नीति के माध्यम से राजनीतिक दर्शन के विभिन्न पहलुओं को समझाया गया है। विदुर धृतराष्ट्र को सलाह देते हैं कि एक अच्छे राजा को कैसे राज्य करना चाहिए, उसे किन गुणों को अपनाना चाहिए और किन दोषों से बचना चाहिए। वे कहते हैं कि राजा को न्यायप्रिय, दयालु, बुद्धिमान और साहसी होना चाहिए। महाभारत में शांति पर्व में भीष्म युधिष्ठिर को राजधर्म सिखाते हैं। वे कहते हैं कि राजा को अपनी प्रजा का पिता होना चाहिए, उसे प्रजा के दुख-दर्द को समझना चाहिए और उनके कल्याण के लिए काम करना चाहिए। वे यह भी कहते हैं कि राजा को अपने मंत्रियों की सलाह सुननी चाहिए और उनके साथ विचार-विमर्श करके निर्णय लेना चाहिए।

रामायण और महाभारत दोनों में राजनीति में नैतिकता के महत्व पर जोर दिया गया है। राम और युधिष्ठिर दोनों नैतिक मूल्यों पर आधारित राजनीति का अनुसरण करते हैं। वे सत्य, न्याय, करुणा और त्याग के आधार पर अपना राज्य चलाते हैं। इसके विपरीत, रावण और दुर्योधन स्वार्थ, अहंकार और लोभ के आधार पर अपना राज्य चलाते हैं और अंत में विनाश को प्राप्त होते हैं। इन महाकाव्यों में यह भी दर्शाया गया है कि राजनीति में कूटनीति का महत्व होता है। राम रावण के विरुद्ध युद्ध में विभीषण और सुग्रीव जैसे सहयोगियों का समर्थन प्राप्त करते हैं। पांडव भी कृष्ण जैसे कूटनीतिज्ञ का समर्थन प्राप्त करके अपनी स्थिति मजबूत करते हैं। इन महाकाव्यों से हम सीखते हैं कि राजनीति में धर्म, नीति और कूटनीति का संतुलन महत्वपूर्ण है। राजा को अपनी प्रजा के हित के लिए काम करना चाहिए, उसे न्यायप्रिय होना चाहिए और उसे अपने राज्य की सुरक्षा और समृद्धि के लिए कूटनीति का प्रयोग करना चाहिए।

रामायण और महाभारत में आर्थिक दर्शन

रामायण और महाभारत में आर्थिक दर्शन के विभिन्न पहलुओं को भी उजागर किया गया है। ये महाकाव्य हमें धन के महत्व, धन का उचित उपयोग, व्यापार, कृषि और अर्थव्यवस्था के अन्य पहलुओं के बारे में महत्वपूर्ण सिद्धांत प्रदान करते हैं। रामायण में अयोध्या को एक समृद्ध राज्य के रूप में चित्रित किया गया है, जहां का प्रत्येक नागरिक सुखी और संतुष्ट है। दशरथ एक संपन्न राजा हैं जो अपनी प्रजा की भलाई के लिए अपने धन का उपयोग करते हैं। राम भी अपने राज्य में आर्थिक समृद्धि लाते हैं और सभी नागरिकों के कल्याण का ध्यान रखते हैं। महाभारत में कर्ण का चरित्र दान के महत्व को उजागर करता है। कर्ण अपने धन का उपयोग दूसरों की सहायता के लिए करते हैं और इसलिए उन्हें "दानवीर" कहा जाता है। वे यहां तक कि अपने कवच और कुंडल भी दान कर देते हैं, जो उनके जीवन के लिए महत्वपूर्ण हैं।

महाभारत में द्रुपद और द्रोणाचार्य के संबंधों से हम सीखते हैं कि धन और सत्ता मित्रता को प्रभावित कर सकते हैं। जब द्रुपद गरीब थे, तब वे द्रोणाचार्य के मित्र थे, लेकिन धनी और शक्तिशाली बनने के बाद उन्होंने अपने मित्र का अपमान किया। यह दर्शाता है कि धन और सत्ता का अहंकार मानवीय संबंधों को नष्ट कर सकता है। महाभारत में युधिष्ठिर जुए में अपना सब कुछ हार जाते हैं, जिससे हम सीखते हैं कि जुआ और धन का अनुचित उपयोग विनाश का कारण बन सकता है। यह हमें सिखाता है कि धन का उपयोग विवेकपूर्वक करना चाहिए। महाभारत में भीष्म युधिष्ठिर को अर्थशास्त्र के विभिन्न पहलुओं के बारे में सिखाते हैं। वे कहते हैं कि राजा को करों का उचित संग्रह करना चाहिए, लेकिन प्रजा पर अत्यधिक बोझ

नहीं डालना चाहिए। वे यह भी कहते हैं कि राजा को अपने राज्य की अर्थव्यवस्था का विकास करना चाहिए, कृषि, व्यापार और उद्योग को प्रोत्साहित करना चाहिए। इन महाकाव्यों से हम सीखते हैं कि धन महत्वपूर्ण है, लेकिन उससे भी महत्वपूर्ण है उसका उचित उपयोग। धन का उपयोग स्वयं के और दूसरों के कल्याण के लिए करना चाहिए, न कि अहंकार और स्वार्थ के लिए। हम यह भी सीखते हैं कि आर्थिक समृद्धि और सामाजिक न्याय का संतुलन महत्वपूर्ण है।

रामायण और महाभारत में नैतिक दर्शन: कर्तव्य और धर्म

रामायण और महाभारत में नैतिक दर्शन का गहन चित्रण किया गया है। ये महाकाव्य हमें कर्तव्य, धर्म, सत्य, अहिंसा, त्याग और प्रेम जैसे नैतिक मूल्यों के बारे में महत्वपूर्ण सिद्धांत प्रदान करते हैं।

रामायण में राम का चरित्र नैतिक आदर्शों का प्रतीक है। वे सत्य और धर्म का पालन करते हैं, चाहे परिस्थितियां कितनी भी प्रतिकूल क्यों न हों। वे कहते हैं, "रघुकुल रीत सदा चली आई, प्राण जाए पर वचन न जाई।" यह सिद्धांत हमें सिखाता है कि सत्य और वचन का पालन जीवन से भी महत्वपूर्ण है। रामायण में लक्ष्मण भ्रातृ प्रेम और समर्पण का प्रतीक हैं। वे अपने भाई राम के साथ वनवास जाते हैं और हर परिस्थिति में उनका साथ देते हैं। यह दर्शाता है कि प्रेम और समर्पण व्यक्ति को कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी शक्ति प्रदान करते हैं। रामायण में हनुमान भक्ति और सेवा का प्रतीक हैं। वे राम के प्रति अटूट भक्ति रखते हैं और उनकी सेवा में अपना जीवन समर्पित कर देते हैं। यह दर्शाता है कि भक्ति और सेवा व्यक्ति को महान कार्य करने की प्रेरणा देते हैं।

महाभारत में युधिष्ठिर सत्य और धर्म के प्रतीक हैं। वे हमेशा सत्य बोलते हैं और धर्म का पालन करते हैं। यहां तक कि जब वे जुए में अपना सब कुछ हार जाते हैं, तब भी वे अपने वचन का पालन करते हैं और वनवास जाते हैं। यह दर्शाता है कि सत्य और धर्म व्यक्ति के जीवन के आधार हैं। महाभारत में भीष्म त्याग और प्रतिबद्धता के प्रतीक हैं। वे अपने पिता की खुशी के लिए राज्य का त्याग कर देते हैं और आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत लेते हैं। यह दर्शाता है कि त्याग व्यक्ति को महानता प्रदान करता है। महाभारत में अर्जुन कर्तव्य और धर्म के संघर्ष का प्रतीक हैं। वे युद्ध के मैदान में अपने रिश्तेदारों और गुरुओं के विरुद्ध लड़ने से हिचकिचाते हैं, लेकिन कृष्ण उन्हें सिखाते हैं कि एक क्षत्रिय का कर्तव्य युद्ध करना है और धर्म की रक्षा करना है। यह दर्शाता है कि कर्तव्य और धर्म का पालन करना जीवन का प्रमुख लक्ष्य है। महाभारत में कृष्ण धर्म और नीति के संतुलन के प्रतीक हैं। वे हमेशा धर्म का पक्ष लेते हैं, लेकिन वे यह भी समझते हैं कि

कभी-कभी धर्म की रक्षा के लिए कूटनीति का प्रयोग करना आवश्यक होता है। यह दर्शाता है कि जीवन में सिद्धांत और व्यवहार का संतुलन महत्वपूर्ण है। इन महाकाव्यों से हम सीखते हैं कि नैतिक मूल्यों का पालन करना जीवन का प्रमुख लक्ष्य है। सत्य, धर्म, अहिंसा, त्याग, प्रेम और सेवा जैसे नैतिक मूल्य व्यक्ति के जीवन को सार्थक बनाते हैं और समाज को सही दिशा देते हैं।

रामायण और महाभारत में प्रेम और संबंधों का दर्शन

रामायण और महाभारत में प्रेम और संबंधों के विभिन्न रूपों का सुंदर चित्रण किया गया है। ये महाकाव्य हमें पति-पत्नी, भाई-भाई, माता-पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य और मित्र-मित्र जैसे संबंधों के बारे में गहन अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं।

रामायण में राम-सीता का प्रेम पति-पत्नी के संबंध का आदर्श रूप है। राम सीता के प्रति अटूट प्रेम और समर्पण रखते हैं और सीता भी अपने पति का साथ हर परिस्थिति में देती हैं। यहां तक कि जब राम सीता को वनवास में साथ न लेना चाहते हैं, तब सीता कहती हैं, "पिया बिनु जीवन कैसे जीऊं" अर्थात पति के बिना मैं कैसे जी सकती हूं। यह दर्शाता है कि प्रेम और समर्पण पति-पत्नी के संबंध के आधार हैं। रामायण में राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न का प्रेम भाई-भाई के संबंध का आदर्श रूप है। लक्ष्मण राम के साथ वनवास जाते हैं, भरत राम के जूते सिंहासन पर रखकर राज्य की देखभाल करते हैं और शत्रुघ्न भरत का साथ देते हैं। यह दर्शाता है कि भाई-भाई के प्रेम में त्याग, समर्पण और सहयोग महत्वपूर्ण हैं। रामायण में दशरथ-कौशल्या-कैकेयी-सुमित्रा का संबंध परिवार की जटिलताओं को दर्शाता है। दशरथ अपनी पत्नियों से प्रेम करते हैं, लेकिन कैकेयी के प्रभाव में आकर वे एक गलत निर्णय लेते हैं। यह दर्शाता है कि परिवार में प्रेम के साथ-साथ विवेक भी महत्वपूर्ण होता है। महाभारत में द्रौपदी-पांडवों का संबंध एक अनूठे परिवार का चित्रण करता है, जहां एक पत्नी के पांच पति हैं। द्रौपदी हर पति के साथ न्याय करती हैं और पांडव भी द्रौपदी का सम्मान करते हैं। यह दर्शाता है कि संबंधों में सम्मान, न्याय और समझ महत्वपूर्ण होते हैं।

महाभारत में कृष्ण-अर्जुन का संबंध मित्रता का उत्कृष्ट उदाहरण है। कृष्ण अर्जुन के मित्र, मार्गदर्शक और सारथी हैं। वे अर्जुन को गीता का उपदेश देकर उनका मार्गदर्शन करते हैं। यह दर्शाता है कि मित्रता में सहयोग, मार्गदर्शन और सच्चाई महत्वपूर्ण होते हैं। महाभारत में द्रोणाचार्य-एकलव्य का संबंध गुरु-शिष्य के संबंध की जटिलताओं को दर्शाता है। एकलव्य द्रोणाचार्य को गुरु मानते हैं, भले ही द्रोणाचार्य ने उन्हें शिष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया। यहां तक कि जब द्रोणाचार्य गुरु दक्षिणा के रूप में उनके दाहिने

हाथ का अंगूठा मांगते हैं, तब भी एकलव्य बिना हिचकिचाहट के अपना अंगूठा काट देते हैं। यह दर्शाता है कि गुरु-शिष्य के संबंध में समर्पण और त्याग महत्वपूर्ण होते हैं। इन महाकाव्यों से हम सीखते हैं कि प्रेम और संबंध जीवन के आधार हैं। इनमें सम्मान, समर्पण, त्याग, विश्वास और समझ महत्वपूर्ण होते हैं। ये संबंध हमें जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हैं और हमारे जीवन को साथर्क बनाते हैं।

रामायण और महाभारत में संघर्ष और विजय का दर्शन

रामायण और महाभारत दोनों महाकाव्य संघर्ष और विजय की कहानियां हैं। ये हमें सिखाते हैं कि जीवन में संघर्ष अपरिहार्य हैं, लेकिन धैर्य, साहस और दृढ़ संकल्प से हम इन संघर्षों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

रामायण में राम को अनेक संघर्षों का सामना करना पड़ता है। वे वनवास भेज दिए जाते हैं, सीता का हरण हो जाता है, और उन्हें रावण जैसे शक्तिशाली शत्रु का सामना करना पड़ता है। लेकिन वे हर संघर्ष का धैर्य और साहस से सामना करते हैं और अंत में विजय प्राप्त करते हैं। यह हमें सिखाता है कि संघर्ष हमें मजबूत बनाते हैं और हमारे चरित्र का निर्माण करते हैं। रामायण में सीता भी अनेक संघर्षों का सामना करती हैं। वे वनवास में अनेक कठिनाइयों का सामना करती हैं, रावण द्वारा अपहरण किया जाता है, और अंत में अग्नि परीक्षा देती हैं। लेकिन वे हर संघर्ष में अपना धैर्य और गरिमा बनाए रखती हैं। यह हमें सिखाता है कि संघर्षों में भी हमें अपना आत्मसम्मान नहीं खोना चाहिए। महाभारत में पांडवों को भी अनेक संघर्षों का सामना करना पड़ता है। उन्हें जुए में सब कुछ हारना पड़ता है, वनवास और अज्ञातवास जाना पड़ता है, और अंत में कौरवों के विरुद्ध युद्ध करना पड़ता है। लेकिन वे हर संघर्ष का साहस और दृढ़ता से सामना करते हैं और अंत में धर्म की विजय होती है। यह हमें सिखाता है कि संघर्षों में हमें धर्म का साथ नहीं छोड़ना चाहिए।

महाभारत में अर्जुन का मानसिक संघर्ष भी महत्वपूर्ण है। वे युद्ध के मैदान में अपने रिश्तेदारों और गुरुओं के विरुद्ध लड़ने से हिचकिचाते हैं। कृष्ण उन्हें गीता का उपदेश देकर उनका मार्गदर्शन करते हैं और उन्हें अपने कर्तव्य का पालन करने के लिए प्रेरित करते हैं। यह हमें सिखाता है कि मानसिक संघर्ष भी उतने ही वास्तविक और कठिन होते हैं जितने शारीरिक संघर्ष, और इन्हें ज्ञान और मार्गदर्शन से ही जीता जा सकता है। इन महाकाव्यों से हम सीखते हैं कि संघर्ष जीवन का अंग हैं, लेकिन हमें इनसे घबराना नहीं चाहिए। हमें धैर्य, साहस, दृढ़ता और धर्म के साथ इन संघर्षों का सामना करना चाहिए। संघर्ष हमें मजबूत बनाते हैं, हमारे चरित्र का निर्माण करते हैं और हमें विजय की ओर ले जाते हैं।

रामायण और महाभारत में आध्यात्मिक दर्शन: मोक्ष और आत्मज्ञान

रामायण और महाभारत भारतीय आध्यात्मिक दर्शन के खजाने हैं। ये महाकाव्य हमें आत्मा, परमात्मा, मोक्ष, कर्म, ज्ञान और भक्ति जैसे आध्यात्मिक विषयों पर गहन अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। रामायण में राम केवल एक आदर्श राजा ही नहीं, बल्कि विष्णु के अवतार भी हैं। उनका जीवन हमें सिखाता है कि परमात्मा धर्म की रक्षा के लिए मानव रूप में अवतरित होते हैं और हमें जीवन का सही मार्ग दिखाते हैं। राम कहते हैं, "मर्यादा पुरुषोत्तम" अर्थात वे मर्यादाओं का पालन करने वाले उत्तम पुरुष हैं। यह हमें सिखाता है कि आध्यात्मिकता का अर्थ समाज की मर्यादाओं का पालन करना भी है। रामायण में हनुमान भक्ति का प्रतीक हैं। उनकी राम के प्रति अनन्य भक्ति हमें सिखाती है कि भक्ति से हम परमात्मा से एकाकार हो सकते हैं। हनुमान कहते हैं, "जाके प्रिय न राम वैदेही, तजिए ताहि कोटि वैरी सम" अर्थात जिसे राम और सीता प्रिय नहीं हैं, उसे करोड़ों शत्रुओं के समान त्याग देना चाहिए।

महाभारत में कृष्ण आध्यात्मिक दर्शन के केंद्र हैं। वे अर्जुन को गीता का उपदेश देकर आत्मा, परमात्मा, कर्म, ज्ञान और भक्ति के रहस्यों को उजागर करते हैं। वे कहते हैं, "अहं ब्रह्मास्मि" अर्थात मैं ब्रह्म हूं। यह हमें सिखाता है कि आत्मा और परमात्मा एक ही हैं, अद्वैत की स्थिति है। गीता में कृष्ण तीन योगों का उपदेश देते हैं - कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग। कर्मयोग हमें सिखाता है कि हमें अपने कर्तव्यों का पालन फल की इच्छा के बिना करना चाहिए। ज्ञानयोग हमें सिखाता है कि आत्मज्ञान से ही हम मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। भक्तियोग हमें सिखाता है कि भगवान के प्रति पूर्ण समर्पण से ही हम आध्यात्मिक उन्नति कर सकते हैं।

इकाई 11: पुराणों का ज्ञान, लोकनृत्य और दर्शन

भारतीय संस्कृति का अद्वितीय रूप उसके अनेक पहलुओं में दृष्टिगोचर होता है, जिनमें पुराण, लोकनृत्य और दर्शन प्रमुख हैं। ये तीनों तत्व एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं और सामूहिक रूप से भारतीय परंपरा की विविधता और समृद्धि का प्रतिनिधित्व करते हैं। पुराण हमारे प्राचीन ज्ञान के भंडार हैं, जिनमें सृष्टि के रहस्य से लेकर मानव जीवन के उद्देश्य तक अनेक विषयों पर गहन चिंतन मिलता है। लोकनृत्य हमारी सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का एक जीवंत माध्यम है, जो पीढ़ियों से पुराणिक कथाओं और दार्शनिक सिद्धांतों को साधारण जनता तक पहुंचाता आया है। दर्शन हमारे जीवन के मूलभूत प्रश्नों का उत्तर देता है

और आध्यात्मिक मार्गदर्शन प्रदान करता है। इस अध्याय में हम इन तीनों विषयों के अंतःसंबंधों की खोज करेंगे और यह समझने का प्रयास करेंगे कि कैसे ये हमारी सांस्कृतिक विरासत के अभिन्न अंग बन गए हैं।

पुराणों का महत्व और इतिहास

भारतीय साहित्य में पुराणों का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। 'पुराण' शब्द का अर्थ है 'प्राचीन' या 'पुरातन'। ये ग्रंथ भारतीय संस्कृति, धर्म, इतिहास और दर्शन का विशाल भंडार हैं। परंपरागत रूप से अठारह महापुराण और उपपुराण माने जाते हैं। प्रमुख पुराणों में ब्रह्म पुराण, पद्म पुराण, विष्णु पुराण, शिव पुराण, भागवत पुराण, नारद पुराण, मार्कण्डेय पुराण, अग्नि पुराण, भविष्य पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, लिंग पुराण, वराह पुराण, स्कंद पुराण, वामन पुराण, कूर्म पुराण, मत्स्य पुराण, गरुड़ पुराण और ब्रह्मांड पुराण शामिल हैं। पुराणों की रचना का काल लगभग 400 ईसा पूर्व से 1000 ईस्वी के बीच माना जाता है। हालांकि, पुराणों में वर्णित कथाएँ और ज्ञान मौखिक परंपरा के रूप में इससे भी पहले से चले आ रहे थे। पुराणों की विशेषता यह है कि वे समय-समय पर संशोधित और परिवर्धित होते रहे हैं, जिससे उनमें तत्कालीन समाज की आवश्यकताओं और मान्यताओं का प्रतिबिंब मिलता है। पुराणों में पांच मुख्य विषय होते हैं, जिन्हें 'पंचलक्षण' कहा जाता है: सर्ग (सृष्टि की उत्पत्ति), प्रतिसर्ग (सृष्टि का प्रलय और पुनर्जन्म), वंश (देवताओं और ऋषियों की वंशावली), मन्वंतर (मनु के कालखंड) और वंशानुचरित (राजवंशों का इतिहास)। इनके अतिरिक्त, पुराणों में धार्मिक अनुष्ठान, तीर्थ स्थान, दान, व्रत, योग, आयुर्वेद, ज्योतिष, वास्तुशास्त्र जैसे विषयों पर भी विस्तृत जानकारी मिलती है।

भागवत पुराण भक्ति आंदोलन का प्रमुख स्रोत रहा है, जिसमें कृष्ण के जीवन और लीलाओं का विस्तृत वर्णन है। शिव पुराण में शिव के विभिन्न रूपों और उनकी महिमा का वर्णन है। विष्णु पुराण में विष्णु के अवतारों और सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है। मार्कण्डेय पुराण में देवी दुर्गा की महिमा का वर्णन है, जिसमें 'दुर्गा सप्तशती' या 'चंडी पाठ' जैसे महत्वपूर्ण अंश शामिल हैं। पुराणों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वे जटिल दार्शनिक सिद्धांतों को कथाओं और रूपकों के माध्यम से सरल बनाते हैं, जिससे साधारण लोग भी उन्हें समझ सकें। उदाहरण के लिए, अद्वैत वेदांत के सिद्धांत को भागवत पुराण में कृष्ण और गोपियों की कथा के माध्यम से समझाया गया है, जहां आत्मा और परमात्मा के एकत्व को प्रेम के माध्यम से प्रकट किया गया है।

पुराणों में वर्णित दार्शनिक सिद्धांत

पुराणों में अनेक दार्शनिक सिद्धांतों का वर्णन मिलता है, जो भारतीय दर्शन की मूल अवधारणाओं को प्रतिबिंबित करते हैं। इनमें से कुछ प्रमुख सिद्धांत निम्नलिखित हैं:

सृष्टि का सिद्धांत

पुराणों में सृष्टि की उत्पत्ति के विभिन्न सिद्धांत वर्णित हैं। विष्णु पुराण के अनुसार, सृष्टि के आरंभ में केवल जल था, जिसमें भगवान विष्णु शेषनाग पर शयन कर रहे थे। उनकी नाभि से एक कमल निकला, जिस पर ब्रह्मा का जन्म हुआ। ब्रह्मा ने फिर सृष्टि की रचना की। शिव पुराण में शिव को सृष्टि का आदि कारण बताया गया है। भागवत पुराण में यह वर्णन मिलता है कि सृष्टि की रचना से पहले परमात्मा अकेले थे और उन्होंने 'बहु स्यां प्रजायेय' (मैं एक से अनेक हो जाऊं) का संकल्प किया, जिससे सृष्टि का विस्तार हुआ।

कर्म का सिद्धांत

पुराणों में कर्म के सिद्धांत पर बल दिया गया है, जिसके अनुसार हर कर्म का फल भोगना पड़ता है। गरुड़ पुराण में इस सिद्धांत का विस्तार से वर्णन है। इसमें बताया गया है कि मृत्यु के बाद आत्मा अपने कर्मों के अनुसार स्वर्ग या नरक में जाती है और फिर पुनर्जन्म लेती है। पद्म पुराण में कर्म के तीन प्रकार बताए गए हैं: संचित कर्म (पिछले जन्मों के संचित कर्म), प्रारब्ध कर्म (वर्तमान जन्म में भोगे जाने वाले कर्म) और आगामी कर्म (वर्तमान जन्म में किए जाने वाले नए कर्म)।

मोक्ष का सिद्धांत

पुराणों में मोक्ष या मुक्ति को जीवन का परम लक्ष्य माना गया है। भागवत पुराण में मोक्ष के चार प्रकार बताए गए हैं: सालोक्य (भगवान के लोक में निवास), सामीप्य (भगवान के समीप रहना), सारूप्य (भगवान के समान रूप प्राप्त करना) और सायुज्य (भगवान में लीन हो जाना)। शिव पुराण में मोक्ष प्राप्ति के लिए शिव की भक्ति पर बल दिया गया है। विष्णु पुराण में कहा गया है कि ज्ञान, कर्म और भक्ति के समन्वय से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

आत्मा और परमात्मा

पुराणों में आत्मा और परमात्मा के संबंध पर गहन चिंतन मिलता है। भागवत पुराण में कहा गया है कि आत्मा परमात्मा का अंश है, जो माया के प्रभाव से उससे अलग हो गई है। जब आत्मा माया के बंधन से

मुक्त होती है, तो वह अपने मूल स्वरूप को प्राप्त कर लेती है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में आत्मा की अमरता और शाश्वतता पर प्रकाश डाला गया है। लिंग पुराण में शिव को परमात्मा के रूप में वर्णित किया गया है, जो सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान हैं।

त्रिगुण सिद्धांत

पुराणों में प्रकृति के तीन गुणों - सत्व, रज और तम - का वर्णन मिलता है। भागवत पुराण के अनुसार, सृष्टि के सभी पदार्थ और प्राणी इन तीन गुणों के संयोग से बने हैं। सत्व गुण ज्ञान, प्रकाश और सुख से संबंधित है; रज गुण क्रिया, आसक्ति और दुःख से; और तम गुण अज्ञान, अकर्मण्यता और भ्रम से। मनुष्य के स्वभाव और व्यवहार में इन गुणों का प्रभाव दिखाई देता है। पद्म पुराण में इन गुणों के प्रभाव से मुक्त होकर 'त्रिगुणातीत' अवस्था प्राप्त करने का महत्व बताया गया है।

अवतारवाद

पुराणों में भगवान के अवतारों का विस्तृत वर्णन मिलता है। विष्णु पुराण में विष्णु के दस प्रमुख अवतारों (दशावतार) का उल्लेख है: मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि। भागवत पुराण में कहा गया है कि जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब भगवान अवतार लेते हैं। अवतारवाद का सिद्धांत यह दर्शाता है कि परमात्मा निराकार होते हुए भी साकार रूप धारण कर सकते हैं और संसार में आकर धर्म की स्थापना करते हैं।

पुराणों का सामाजिक और सांस्कृतिक महत्व

पुराणों का भारतीय समाज और संस्कृति पर गहरा प्रभाव पड़ा है। वे न केवल धार्मिक ग्रंथ हैं, बल्कि सामाजिक मूल्यों, आचार-विचार, परंपराओं और रीति-रिवाजों के महत्वपूर्ण स्रोत भी हैं। पुराणों ने समाज को नैतिक मार्गदर्शन प्रदान किया है और जीवन के विभिन्न पहलुओं पर अपनी दृष्टि प्रस्तुत की है। पुराणों में वर्णित आश्रम व्यवस्था (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास) ने भारतीय समाज को एक संतुलित जीवन शैली प्रदान की है। पुराणों में वर्णित वर्ण व्यवस्था ने समाज में कार्य विभाजन का आधार प्रदान किया, हालांकि कालांतर में इसका दुरुपयोग भी हुआ। पुराणों में स्त्री-पुरुष संबंधों, परिवार, विवाह, संतान पालन जैसे विषयों पर भी मार्गदर्शन मिलता है। पुराणों ने भारतीय कला, साहित्य, संगीत और नृत्य को भी प्रभावित किया है। पुराणिक कथाएँ भारतीय चित्रकला, मूर्तिकला, नाट्य और काव्य के प्रमुख विषय रहे हैं।

अजंता-एलोरा की गुफाओं में पुराणिक दृश्यों के चित्र, दक्षिण भारत के मंदिरों में रामायण और महाभारत की कथाओं के शिल्प, कथकली और भरतनाट्यम जैसे शास्त्रीय नृत्यों में पुराणिक कथाओं का अभिनय - ये सभी पुराणों के सांस्कृतिक प्रभाव के उदाहरण हैं।

पुराणों ने भारतीय त्योहारों और उत्सवों को भी आकार दिया है। होली, दीपावली, दशहरा, जन्माष्टमी, शिवरात्रि जैसे त्योहारों की पृष्ठभूमि में पुराणिक कथाएँ हैं। ये त्योहार न केवल धार्मिक महत्व रखते हैं, बल्कि सामाजिक एकता और सामूहिक उत्सव का भी माध्यम हैं। पुराणों के माध्यम से भारतीय संस्कृति में अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, अस्तेय, ब्रह्मचर्य जैसे मूल्यों का प्रचार हुआ है। पुराणों में वर्णित दान, सेवा, अतिथि सत्कार, गुरु भक्ति जैसे आदर्श भारतीय समाज के अभिन्न अंग बन गए हैं।

लोकनृत्य: परिचय और महत्व

भारतीय लोकनृत्य हमारी सांस्कृतिक विरासत का एक अमूल्य हिस्सा हैं। ये नृत्य सदियों से भारतीय जनजीवन का अभिन्न अंग रहे हैं और पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होते आए हैं। लोकनृत्य किसी भी क्षेत्र की संस्कृति, परंपराओं, रीति-रिवाजों, विश्वासों और जीवन शैली का जीवंत प्रतिबिंब होते हैं। लोकनृत्य और शास्त्रीय नृत्य में मुख्य अंतर यह है कि शास्त्रीय नृत्य नाट्यशास्त्र जैसे ग्रंथों पर आधारित होते हैं और इनके कठोर नियम और शैलीगत विशेषताएँ होती हैं, जबकि लोकनृत्य अधिक स्वाभाविक और स्वतंत्र होते हैं। लोकनृत्य सामान्यतः किसी विशेष अवसर, त्योहार, ऋतु परिवर्तन, जन्म, विवाह या फसल के समय सामूहिक रूप से किए जाते हैं। भारत के विभिन्न राज्यों में अलग-अलग प्रकार के लोकनृत्य प्रचलित हैं, जैसे - पंजाब का भांगड़ा और गिद्दा, राजस्थान का घूमर और कालबेलिया, गुजरात का गरबा और डांडिया रास, महाराष्ट्र का लावणी, बिहार का जट-जटिन, उत्तर प्रदेश का नौटंकी, असम का बिहू, पश्चिम बंगाल का छऊ, उड़ीसा का संबलपुरी, आंध्र प्रदेश का कोलाट्टम, केरल का ओपाना और कर्नाटक का डोलु कुनिता आदि।

लोकनृत्य का महत्व केवल मनोरंजन तक सीमित नहीं है। ये नृत्य सामाजिक एकता, सामूहिक भागीदारी और सांस्कृतिक पहचान के महत्वपूर्ण माध्यम हैं। लोकनृत्य के माध्यम से समाज के विभिन्न वर्गों के लोग एक साथ आते हैं, अपनी सांस्कृतिक विरासत का अनुभव करते हैं और अपनी परंपराओं को जीवित रखते हैं। इनमें पुरुष और महिलाएँ, युवा और वृद्ध, अमीर और गरीब - सभी समान रूप से भाग लेते हैं। लोकनृत्य कला और अभिव्यक्ति का एक शक्तिशाली माध्यम हैं। इनके माध्यम से लोग अपनी भावनाओं,

विचारों, आशाओं, आकांक्षाओं और अनुभवों को व्यक्त करते हैं। इन नृत्यों में क्षेत्र विशेष के इतिहास, भूगोल, आर्थिक गतिविधियों, सामाजिक संरचना और धार्मिक विश्वासों की झलक मिलती है। लोकनृत्य का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इनमें पुराणिक कथाओं और दार्शनिक सिद्धांतों को सरल और आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार, ये नृत्य ज्ञान के प्रसार और सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

प्रमुख भारतीय लोकनृत्य और उनकी विशेषताएँ

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक लोकनृत्य प्रचलित हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख लोकनृत्यों और उनकी विशेषताओं का वर्णन निम्नलिखित है:

भांगड़ा और गिद्दा (पंजाब)

भांगड़ा पंजाब का पारंपरिक पुरुष नृत्य है, जो मुख्य रूप से बैसाखी (फसल कटाई) के समय किया जाता है। इसमें नर्तक ढोल की थाप पर शरीर के विभिन्न अंगों, विशेषकर कंधों और पैरों का उत्साहपूर्ण संचालन करते हैं। ऊर्जा, उत्साह और जोश से भरपूर यह नृत्य पंजाबी संस्कृति का प्रतीक बन गया है। गिद्दा पंजाब का महिला लोकनृत्य है, जिसमें महिलाएँ गोल घेरे में खड़ी होकर ताली बजाते हुए और बोलियाँ गाते हुए नृत्य करती हैं। यह नृत्य भांगड़ा की तुलना में अधिक लयबद्ध और सौम्य होता है, लेकिन इसमें भी पंजाबी संस्कृति की जीवंतता झलकती है।

घूमर और कालबेलिया (राजस्थान)

घूमर राजस्थान की राजपूत महिलाओं का पारंपरिक नृत्य है, जिसे मुख्य रूप से गणगौर पर्व पर किया जाता है। इसमें महिलाएँ घेरे में खड़ी होकर धीरे-धीरे घूमती हैं और अपने विस्तृत घाघरों को लहराती हैं। यह नृत्य शालीनता, सौंदर्य और लय का अद्भुत संगम है। कालबेलिया राजस्थान की कालबेलिया जनजाति का नृत्य है, जिसमें महिलाएँ काले रंग के विस्तृत घाघरे पहनकर सांप के समान लचीले मूवमेंट करती हैं। इस नृत्य में मांदल और पुंगी जैसे वाद्ययंत्रों का प्रयोग होता है। यूनेस्को ने कालबेलिया नृत्य को अमूर्त सांस्कृतिक विरासत की सूची में शामिल किया है।

गरबा और डांडिया रास (गुजरात)

गरबा गुजरात का प्रसिद्ध लोकनृत्य है, जो नवरात्रि के दौरान किया जाता है। इसमें महिलाएँ गोल घेरे में घूमती हुई माँ दुर्गा की स्तुति करती हैं। गरबा शब्द 'गर्भ दीप' से आया है, जो एक मिट्टी का दीपक होता है और जो जीवन के स्रोत का प्रतीक है। डांडिया रास गुजरात का एक और लोकप्रिय नृत्य है, जिसमें पुरुष और महिलाएँ हाथों में रंगीन डंडे (डांडिया) लेकर एक-दूसरे के डंडों पर ताल के साथ प्रहार करते हुए नृत्य करते हैं। यह नृत्य कृष्ण और गोपियों के रास की याद दिलाता है और नवरात्रि और शरद पूर्णिमा पर किया जाता है।

बिहू (असम)

बिहू असम का लोकप्रिय लोकनृत्य है, जो बिहू त्योहार के अवसर पर किया जाता है। यह असमिया नव वर्ष का प्रतीक है और फसल के मौसम से जुड़ा है। इस नृत्य में युवक-युवतियां रंगीन परिधान पहनकर ढोल, पेपा, गगना, बांसुरी आदि वाद्ययंत्रों की धुन पर नृत्य करते हैं। बिहू नृत्य में हाथों और कंधों के मूवमेंट पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

छऊ (पश्चिम बंगाल, झारखंड, उड़ीसा)

छऊ पूर्वी भारत का एक मार्शल आर्ट (युद्ध कला) से प्रेरित नृत्य है, जिसमें मुखौटों का प्रयोग किया जाता है। इसके तीन प्रमुख रूप हैं - पुरुलिया छऊ (पश्चिम बंगाल), सरायकेला छऊ (झारखंड) और मयूरभंज छऊ (उड़ीसा)। इस नृत्य में पौराणिक कथाओं, देवी-देवताओं और प्राकृतिक शक्तियों के युद्ध का अभिनय किया जाता है। छऊ नृत्य में अभिनय, मुद्राएँ और शारीरिक संचालन से कहानी कही जाती है, जिसमें विशेष रूप से पैरों के मूवमेंट पर जोर दिया जाता है।

लावणी (महाराष्ट्र)

लावणी महाराष्ट्र का लोकप्रिय नृत्य है, जो मुख्य रूप से श्रृंगारिक भावों को व्यक्त करता है। इसमें नर्तकी ढोलकी की धुन पर अपने नाजुक हाव-भाव और कमर के लचीले मूवमेंट से दर्शकों को मोहित करती है। लावणी गीतों में प्रेम, विरह, समाज और राजनीति जैसे विषयों पर टिप्पणी की जाती है।

जट-जटिन (बिहार)

जट-जटिन बिहार का एक लोकनृत्य है, जिसमें पति-पत्नी के प्रेम और झगड़े को दर्शाया जाता है। इसमें पुरुष जट और महिला जटिन का अभिनय करते हैं। यह नृत्य विशेष रूप से होली के अवसर पर किया जाता है और इसमें हास्य और व्यंग्य का समावेश होता है।

कोलाट्टम (तमिलनाडु)

कोलाट्टम तमिलनाडु का एक लोकनृत्य है, जिसमें महिलाएँ हाथों में छोटी लकड़ियाँ (कोल) लेकर गोल घेरे में नृत्य करती हैं और ताल के साथ एक-दूसरे की लकड़ियों पर प्रहार करती हैं। यह नृत्य मुख्य रूप से मारियम्मन और अन्य ग्रामीण देवताओं के उत्सवों पर किया जाता है।

ओपाना (केरल)

ओपाना केरल के मुस्लिम समुदाय मोपला का पारंपरिक नृत्य है, जो विवाह और अन्य शुभ अवसरों पर किया जाता है। इसमें पुरुष गोल घेरे में बैठकर या खड़े होकर ताली बजाते हुए मैप्पिला गीत गाते हैं और धीरे-धीरे अपने शरीर को हिलाते हैं।

लोकनृत्य और पुराणों का अंतर्संबंध

भारतीय लोकनृत्य और पुराण एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं। अनेक लोकनृत्यों में पुराणिक कथाओं, देवी-देवताओं, महापुरुषों और पौराणिक घटनाओं का अभिनय किया जाता है। इस प्रकार, लोकनृत्य पुराणिक ज्ञान को सरल और आकर्षक रूप में आम जनता तक पहुंचाने का माध्यम बनते हैं।

उदाहरण के लिए, राजस्थान का राजस्थानी नृत्य कृष्ण की रासलीला से प्रेरित है, जिसका वर्णन भागवत पुराण में मिलता है। इसी प्रकार, उत्तर प्रदेश का रासलीला नृत्य भी कृष्ण और गोपियों की लीलाओं पर आधारित है। महाराष्ट्र का दशावतार नृत्य विष्णु के दस अवतारों को दर्शाता है, जिनका वर्णन विष्णु पुराण में मिलता है।

छत्तीसगढ़ का पंथी नृत्य गुरु घासीदास के जीवन और उपदेशों पर आधारित है, जिन्होंने सतनाम पंथ की स्थापना की थी। इस नृत्य में सत्य, अहिंसा, समानता जैसे दार्शनिक सिद्धांतों को अभिनय के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। तमिलनाडु का कावड़ी नृत्य मुरुगन (कार्तिकेय) की पूजा से जुड़ा है, जिनकी कथा स्कंद पुराण में वर्णित है। इस नृत्य में भक्त अपने कंधों पर कावड़ (एक प्रकार का बाँस का ढाँचा) लेकर

नृत्य करते हैं, जिसमें मुरुगन के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित करते हैं। केरल का पदयानी नृत्य काली की कथा पर आधारित है, जिसका वर्णन मार्कण्डेय पुराण में मिलता है। इस नृत्य में नर्तक विशाल मुखौटे पहनकर काली और अन्य देवी-देवताओं का अभिनय करते हैं।

लोकनृत्यों में न केवल पुराणिक कथाएँ, बल्कि पुराणों में वर्णित दार्शनिक सिद्धांत भी प्रतिबिंबित होते हैं। उदाहरण के लिए, अनेक लोकनृत्यों में प्रकृति पूजा, ऋतु चक्र, जीवन-मृत्यु का चक्र, आत्मा-परमात्मा का संबंध जैसे विषयों को अप्रत्यक्ष रूप से दर्शाया जाता है। लोकनृत्यों के माध्यम से पुराणिक ज्ञान सदियों से ग्रामीण और आदिवासी समुदायों तक पहुंचा है, जिनकी पुराणों तक सीधी पहुंच नहीं थी। इस प्रकार, लोकनृत्य पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण और प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

दर्शन का परिचय और महत्व

दर्शन शब्द संस्कृत के 'दृश' धातु से बना है, जिसका अर्थ है 'देखना' या 'निरीक्षण करना'। दर्शन का अर्थ है जीवन, जगत और सत्य को समझने का प्रयास। भारतीय दर्शन की एक विशेषता यह है कि यहाँ दर्शन केवल बौद्धिक चिंतन तक सीमित नहीं है, बल्कि जीवन जीने का एक तरीका भी है। भारतीय दर्शन को मुख्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता है - आस्तिक दर्शन और नास्तिक दर्शन। आस्तिक दर्शन वेदों को प्रमाण मानते हैं, जबकि नास्तिक दर्शन वेदों को प्रमाण नहीं मानते। आस्तिक दर्शन में सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और वेदांत शामिल हैं। नास्तिक दर्शन में चार्वाक, बौद्ध और जैन दर्शन शामिल हैं।

दर्शन का महत्व यह है कि यह हमें जीवन के मूलभूत प्रश्नों पर विचार करने के लिए प्रेरित करता है - मैं कौन हूँ? इस संसार की प्रकृति क्या है? जीवन का उद्देश्य क्या है? सत्य क्या है? अच्छाई और बुराई क्या है? इन प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास हमें अधिक जागरूक और समझदार बनाता है। दर्शन हमें तार्किक और आलोचनात्मक सोच विकसित करने में मदद करता है। यह हमें अपने विचारों, मान्यताओं और मूल्यों का परीक्षण करने के लिए प्रोत्साहित करता है। दर्शन हमें विभिन्न दृष्टिकोणों को समझने और सम्मान करने की क्षमता प्रदान करता है, जो सामाजिक सद्भाव और सहिष्णुता के लिए आवश्यक है। दर्शन केवल बौद्धिक विषय नहीं है, बल्कि जीवन के हर पहलू को प्रभावित करता है - हमारे आचार-विचार, हमारे संबंध, हमारी नैतिकता, हमारी राजनीति, हमारी अर्थव्यवस्था, हमारी कला, हमारा साहित्य। दर्शन हमें एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करता है, जिससे हम जीवन को अधिक गहराई से समझ सकते हैं।

प्रमुख भारतीय दार्शनिक सिद्धांत

भारतीय दर्शन में अनेक महत्वपूर्ण सिद्धांत हैं, जो भारतीय चिंतन की गहराई और विविधता को दर्शाते हैं। इनमें से कुछ प्रमुख सिद्धांत निम्नलिखित हैं:

आत्मा और परमात्मा

भारतीय दर्शन में आत्मा को अमर, अविनाशी और शाश्वत माना गया है। उपनिषदों में कहा गया है - "अयम् आत्मा ब्रह्म" (यह आत्मा ब्रह्म है) और "तत्त्वमसि" (वह तू है), जो आत्मा और परमात्मा के एकत्व को दर्शाता है। अद्वैत वेदांत के अनुसार, आत्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं है, दोनों एक ही हैं। विशिष्टाद्वैत के अनुसार, आत्मा परमात्मा का अंश है, लेकिन उससे अलग भी है। द्वैत के अनुसार, आत्मा और परमात्मा सदा अलग रहते हैं।

माया और ब्रह्म

अद्वैत वेदांत के अनुसार, यह संसार माया है, जो एक भ्रम या आभास है। माया के कारण हम सत्य (ब्रह्म) को नहीं देख पाते और अपने को शरीर, मन और बुद्धि से पहचानते हैं। जब माया का आवरण हटता है, तब हम अपने वास्तविक स्वरूप (आत्मा) को पहचानते हैं और ब्रह्म से एकत्व का अनुभव करते हैं।

कर्म और पुनर्जन्म

कर्म का सिद्धांत भारतीय दर्शन का एक मूलभूत सिद्धांत है। इसके अनुसार, हर कर्म का फल भोगना पड़ता है। अच्छे कर्म का अच्छा फल और बुरे कर्म का बुरा फल मिलता है। कर्मों के फल भोगने के लिए आत्मा को बार-बार जन्म लेना पड़ता है। यह जन्म-मरण का चक्र तब तक चलता रहता है, जब तक आत्मा मोक्ष प्राप्त नहीं कर लेती।

मोक्ष या मुक्ति

मोक्ष भारतीय दर्शन का परम लक्ष्य है, जिसे निर्वाण, कैवल्य, मुक्ति आदि नामों से भी जाना जाता है। मोक्ष का अर्थ है जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति और परम आनंद की प्राप्ति। विभिन्न दर्शनों में मोक्ष की अवधारणा

और उसकी प्राप्ति के मार्ग अलग-अलग हैं। ज्ञान मार्ग, कर्म मार्ग, भक्ति मार्ग और राज योग - ये सभी मोक्ष प्राप्ति के मार्ग हैं।

प्रकृति और पुरुष

सांख्य दर्शन के अनुसार, सृष्टि के दो मूल तत्व हैं - प्रकृति (जड़) और पुरुष (चेतन)। प्रकृति से ही इस दृश्यमान जगत की उत्पत्ति होती है। प्रकृति के तीन गुण हैं - सत्व, रज और तम। पुरुष निर्गुण, निष्क्रिय और द्रष्टा है। मोक्ष की प्राप्ति तब होती है जब पुरुष अपने को प्रकृति से अलग पहचान लेता है।

पंचमहाभूत

भारतीय दर्शन के अनुसार, इस संसार के सभी पदार्थ पांच महाभूतों - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश - से बने हैं। इन पांच तत्वों का संतुलन स्वास्थ्य और सामंजस्य के लिए आवश्यक है। आयुर्वेद और योग जैसे प्राचीन विज्ञान इसी सिद्धांत पर आधारित हैं।

अहिंसा और करुणा

अहिंसा (किसी भी प्राणी को हानि न पहुंचाना) और करुणा (सभी प्राणियों के प्रति दया भाव) भारतीय दर्शन के प्रमुख सिद्धांत हैं। जैन और बौद्ध दर्शन में इन सिद्धांतों पर विशेष बल दिया गया है। महात्मा गांधी ने अहिंसा को एक शक्तिशाली राजनीतिक उपकरण के रूप में प्रयोग किया और विश्व को एक नया दृष्टिकोण दिया।

दर्शन का लोकनृत्य और पुराणों से संबंध

दर्शन, लोकनृत्य और पुराण भारतीय संस्कृति के तीन अभिन्न अंग हैं, जो एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं। दर्शन जीवन और जगत के मूलभूत सिद्धांतों को प्रस्तुत करता है; पुराण इन सिद्धांतों को कथाओं और रूपकों के माध्यम से सरल बनाते हैं; और लोकनृत्य इन कथाओं और सिद्धांतों को अभिनय के माध्यम से जीवंत करते हैं।

पुराणों में वर्णित अनेक कथाएँ दार्शनिक सिद्धांतों का प्रतिनिधित्व करती हैं। उदाहरण के लिए, भागवत पुराण में वर्णित कृष्ण और अर्जुन के संवाद (जो बाद में गीता के रूप में प्रकट हुए) कर्म योग, ज्ञान योग

और भक्ति योग के दार्शनिक सिद्धांतों को स्पष्ट करते हैं। इसी प्रकार, शिव पुराण में शिव और पार्वती के संवाद अद्वैत वेदांत के सिद्धांतों को समझाते हैं। लोकनृत्यों में भी दार्शनिक सिद्धांत प्रतिबिंबित होते हैं। छत्तीसगढ़ का परधौनी नृत्य जीवन-मृत्यु के चक्र और पुनर्जन्म के सिद्धांत को दर्शाता है। केरल का थेय्यम नृत्य आत्मा और परमात्मा के एकत्व का प्रतीक है, जहाँ नर्तक देवता का रूप धारण कर लेता है। राजस्थान का गैर नृत्य अच्छाई और बुराई के बीच संघर्ष को दर्शाता है, जो द्वैत और अद्वैत के दार्शनिक विचारों से जुड़ा है। पुराणों ने लोकनृत्यों को प्रेरित किया है, और लोकनृत्यों ने पुराणिक कथाओं को जीवंत किया है। दोनों ने मिलकर दार्शनिक सिद्धांतों को आम जनता तक पहुंचाया है। इस प्रकार, ये तीनों - दर्शन, पुराण और लोकनृत्य - एक-दूसरे के पूरक हैं और सामूहिक रूप से भारतीय संस्कृति की समृद्धि और गहराई को बढ़ाते हैं।

आधुनिक समय में पुराणों, लोकनृत्यों और दर्शन की प्रासंगिकता

आधुनिक युग में वैज्ञानिक प्रगति, तकनीकी विकास और भौतिकवादी दृष्टिकोण के बावजूद, पुराण, लोकनृत्य और दर्शन अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए हैं। ये न केवल हमारी सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा हैं, बल्कि आज के समय में भी हमें महत्वपूर्ण सीख और मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। पुराणों में वर्णित कथाएँ और नैतिक मूल्य आज भी प्रासंगिक हैं। पुराणों में पर्यावरण संरक्षण, स्त्री सम्मान, सामाजिक न्याय, अहिंसा, सत्य, करुणा जैसे विषयों पर जो दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है, वह आज के वैश्विक समुदाय के लिए भी महत्वपूर्ण है। पुराणों में वर्णित 'वसुधैव कुटुम्बकम्' (पूरी दुनिया एक परिवार है) की अवधारणा आज के वैश्वीकरण के युग में और भी अधिक प्रासंगिक हो गई है। लोकनृत्य आज भी हमारी सांस्कृतिक पहचान का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। वे न केवल हमारी परंपराओं को जीवित रखते हैं, बल्कि समुदाय के बीच एकता और सद्भाव भी बढ़ाते हैं। आज के तनावपूर्ण जीवन में, लोकनृत्य मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए भी लाभदायक हैं। वे हमें अपनी जड़ों से जोड़े रखते हैं और हमारी सामूहिक स्मृति को संरक्षित करते हैं।

दर्शन आज भी हमें जीवन के गहरे प्रश्नों पर विचार करने के लिए प्रेरित करता है। आधुनिक समय में, जब हम भौतिक सुख-सुविधाओं के पीछे भाग रहे हैं, दर्शन हमें आत्म-चिंतन और आत्म-अन्वेषण का अवसर प्रदान करता है। दर्शन हमें यह याद दिलाता है कि जीवन का उद्देश्य केवल भौतिक उपलब्धियां नहीं, बल्कि आंतरिक शांति, संतोष और सद्भाव भी है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में पुराणों, लोकनृत्यों और दर्शन को शामिल करने की आवश्यकता है, ताकि नई पीढ़ी अपनी सांस्कृतिक विरासत से परिचित हो सके और

उसके मूल्यों को अपना सके। इससे न केवल उनका व्यक्तित्व विकास होगा, बल्कि वे वैश्विक नागरिक भी बनेंगे, जो विविधता का सम्मान करते हैं और सामंजस्य से रहते हैं। पुराणों, लोकनृत्यों और दर्शन का संरक्षण और प्रचार-प्रसार आज के समय की मांग है। इसके लिए सरकारी और गैर-सरकारी स्तर पर प्रयास किए जा रहे हैं, जैसे - संग्रहालयों की स्थापना, शोध संस्थानों का विकास, सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन, डिजिटल अभिलेखीकरण, अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन आदि।

पुराण, लोकनृत्य और दर्शन भारतीय संस्कृति के तीन महत्वपूर्ण स्तंभ हैं, जो एक-दूसरे से अंतर्संबंधित हैं और एक-दूसरे को पूरक हैं। पुराण हमारे प्राचीन ज्ञान, इतिहास और परंपराओं का भंडार हैं; लोकनृत्य हमारी सामूहिक अभिव्यक्ति और सांस्कृतिक पहचान का माध्यम हैं; और दर्शन हमारे जीवन और जगत की समझ का आधार है। पुराणों में वर्णित कथाएँ और सिद्धांत, लोकनृत्यों में अभिव्यक्त भाव और अभिनय, और दर्शन में प्रतिपादित विचार और चिंतन - ये सभी मिलकर भारतीय संस्कृति की समृद्धि और गहराई को दर्शाते हैं। ये हमें अपने अतीत से जोड़ते हैं, वर्तमान में मार्गदर्शन करते हैं और भविष्य के लिए प्रेरित करते हैं। आधुनिक समय में, जब हम वैश्विक संस्कृति और आधुनिकता के प्रभाव में हैं, पुराणों, लोकनृत्यों और दर्शन का महत्व और भी बढ़ जाता है। ये हमें अपनी जड़ों से जोड़े रखते हैं, हमारी सांस्कृतिक पहचान को मजबूत करते हैं और हमें एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। पुराणों के ज्ञान, लोकनृत्यों की जीवंतता और दर्शन की गहराई को समझना और अपनाना हमारे व्यक्तिगत और सामूहिक विकास के लिए आवश्यक है। ये हमें न केवल बेहतर मनुष्य बनाते हैं, बल्कि बेहतर समाज और बेहतर विश्व के निर्माण में भी योगदान देते हैं। अंत में, यह कहा जा सकता है कि पुराण, लोकनृत्य और दर्शन हमारी सांस्कृतिक विरासत के अमूल्य रत्न हैं, जिन्हें संरक्षित, संवर्धित और प्रचारित करना हमारा कर्तव्य है। इनके माध्यम से ही हम अपनी सांस्कृतिक विरासत को आने वाली पीढ़ियों तक पहुंचा सकते हैं और उन्हें अपनी जड़ों से जोड़े रख सकते हैं।

इकाई 12: नीति ग्रंथ, चाणक्य नीति, हितोपदेश, पंचतंत्र

प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा में नीति ग्रंथों का विशेष स्थान है। ये ग्रंथ केवल साहित्यिक कृतियां ही नहीं, बल्कि जीवन जीने की कला, राजनीति, समाज व्यवस्था, नैतिकता और व्यावहारिक बुद्धिमत्ता का अनमोल खजाना हैं। इस अध्याय में हम तीन महत्वपूर्ण नीति ग्रंथों - चाणक्य नीति, हितोपदेश और पंचतंत्र - का विस्तृत विश्लेषण करेंगे। ये ग्रंथ सदियों से भारतीय मानस को प्रभावित करते आए हैं और आज भी उतने

ही प्रासंगिक हैं। भारतीय नीति साहित्य की परंपरा अत्यंत समृद्ध है, जिसमें वेदों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत जैसे महाकाव्यों से लेकर विशेष रूप से नीति और व्यावहारिक ज्ञान पर केंद्रित ग्रंथों तक का समावेश है। इन ग्रंथों की विशेषता यह है कि इनमें जटिल जीवन सत्य और नैतिक मूल्यों को सरल कथाओं, उपमाओं और सूक्तियों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। ये न केवल अपने समय के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिदृश्य को प्रतिबिंबित करते हैं, बल्कि मानव स्वभाव की गहरी समझ भी प्रदान करते हैं। इस अध्याय में हम देखेंगे कि किस प्रकार चाणक्य नीति राजनीतिक चतुराई और प्रशासनिक कुशलता का खजाना है, हितोपदेश मित्रता और व्यावहारिक ज्ञान का स्रोत है, और पंचतंत्र कैसे अपनी रोचक कथाओं के माध्यम से जीवन के महत्वपूर्ण सबक सिखाता है। इन ग्रंथों की सार्वकालिक और सार्वभौमिक प्रासंगिकता का अध्ययन करते हुए, हम यह भी समझने का प्रयास करेंगे कि आधुनिक समय में इनका क्या महत्व है और हम इनसे क्या सीख सकते हैं।

चाणक्य नीति: राजनीतिक प्रज्ञा का अनमोल कोष

चाणक्य नीति, जिसे अर्थशास्त्र और कौटिल्य नीति के नाम से भी जाना जाता है, महान राजनीतिक विचारक और रणनीतिकार चाणक्य (जिन्हें कौटिल्य और विष्णुगुप्त के नाम से भी जाना जाता है) द्वारा रचित है। चाणक्य, जो मौर्य साम्राज्य के संस्थापक चंद्रगुप्त मौर्य के प्रधानमंत्री थे, एक कुशल राजनीतिज्ञ, अर्थशास्त्री और दूरदर्शी थे। उनका अर्थशास्त्र एक विस्तृत ग्रंथ है जो राज्य प्रशासन, अर्थव्यवस्था, युद्ध नीति और कूटनीति के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालता है, जबकि चाणक्य नीति सूत्रों का एक संग्रह है जो व्यक्तिगत आचरण, नैतिकता और राजनीतिक व्यवहार पर केंद्रित है।

चाणक्य नीति का ऐतिहासिक संदर्भ

चाणक्य का काल लगभग 350-275 ईसा पूर्व माना जाता है, जो भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण मोड़ था। यह वह समय था जब अलेक्जेंडर महान के आक्रमण के बाद भारत में एक शक्तिशाली एकीकृत राज्य की आवश्यकता महसूस की गई थी। चाणक्य ने इस चुनौतीपूर्ण समय में न केवल चंद्रगुप्त मौर्य को एक शक्तिशाली सम्राट बनने में मदद की, बल्कि एक विशाल साम्राज्य के सुचारु संचालन के लिए आवश्यक नीतियों और सिद्धांतों का भी विकास किया।

चाणक्य की रचनाएँ उस समय के राजनीतिक और सामाजिक परिदृश्य को प्रतिबिंबित करती हैं। उनके विचारों में प्रागमैटिज्म (व्यावहारिकता) और यथार्थवाद का अद्भुत संगम देखने को मिलता है। वे मानते थे कि राजा का प्रमुख कर्तव्य अपने राज्य और प्रजा की रक्षा और समृद्धि सुनिश्चित करना है, और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वे अवसर के अनुसार आचरण करने की अनुमति देते हैं।

चाणक्य नीति के प्रमुख सिद्धांत

चाणक्य नीति के प्रमुख सिद्धांतों में से कुछ इस प्रकार हैं:

1. **राज्य का सिद्धांत**: चाणक्य का मानना था कि एक सफल राज्य के लिए सात अनिवार्य तत्व होते हैं - स्वामी (राजा), अमात्य (मंत्री), जनपद (भूमि), दुर्ग (किला), कोष (खजाना), दंड (सेना) और मित्र (सहयोगी)। ये सातों तत्व एक-दूसरे पर निर्भर हैं और राज्य की समृद्धि के लिए आवश्यक हैं।

2. **मंडल सिद्धांत**: चाणक्य ने अंतरराष्ट्रीय संबंधों के लिए 'मंडल सिद्धांत' का प्रतिपादन किया, जिसमें राज्यों को मित्र, शत्रु, मध्यस्थ और उदासीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है। इस सिद्धांत के अनुसार, राजा को अपने निकटतम पड़ोसी को संभावित शत्रु मानना चाहिए और अपने पड़ोसी के पड़ोसी को संभावित मित्र।

3. **शासन का प्रकार**: चाणक्य ने राजतंत्र का समर्थन किया, लेकिन एक निरंकुश राजा के बजाय एक धर्मनिष्ठ और कर्तव्यपरायण राजा की वकालत की। उन्होंने राजा के लिए कठोर अनुशासन और नियमित दिनचर्या का सुझाव दिया, जिसमें अध्ययन, समीक्षा और लोगों की समस्याओं को सुनने का समय शामिल था।

4. **अर्थनीति**: चाणक्य ने एक मजबूत अर्थव्यवस्था पर जोर दिया और विस्तृत कर प्रणाली, व्यापार विनियमन और कृषि विकास के उपाय सुझाए। उन्होंने राजकोष के महत्व को समझाते हुए कहा कि "कोष मूलं हि राज्यं" अर्थात राज्य की जड़ खजाना है।

5. **दंड नीति**: चाणक्य का मानना था कि दंड (सजा) समाज में अनुशासन बनाए रखने का एक आवश्यक उपकरण है। उन्होंने न्यायपूर्ण दंड व्यवस्था का समर्थन किया, जहां अपराध के अनुसार सजा निर्धारित हो, न कि अपराधी के सामाजिक स्तर के अनुसार।

6. **गुप्तचर व्यवस्था**: चाणक्य ने एक व्यापक गुप्तचर नेटवर्क की स्थापना पर बल दिया, जो न केवल बाहरी खतरों से निपटने के लिए बल्कि आंतरिक प्रशासन की निगरानी के लिए भी आवश्यक था।

चाणक्य नीति के प्रमुख सूत्र और उनका अर्थ

चाणक्य नीति में अनेक सूत्र हैं जो आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं। कुछ महत्वपूर्ण सूत्र और उनके अर्थ इस प्रकार हैं:

1. **"माता शत्रु पिता वैरी येन बालो न पाठितः"** - माता शत्रु है और पिता दुश्मन है, जो अपने बच्चे को शिक्षा नहीं देते।

2. **"अशिक्षितो न पूज्यन्ते, हस्तिनोऽपि न पूज्यन्ते"** - बिना शिक्षा के व्यक्ति का सम्मान नहीं होता, जैसे बिना अंकुश के हाथी का।

3. **"सुखस्य मूलं धर्मः, धर्मस्य मूलं अर्थः, अर्थस्य मूलं राज्यं, राज्यस्य मूलं इन्द्रिय जयः"** - सुख का मूल धर्म है, धर्म का मूल अर्थ है, अर्थ का मूल राज्य है, और राज्य का मूल इंद्रियों पर विजय है।

4. **"एकेन शुष्कवृक्षेण दह्यमानेन वह्निना। दह्यते तद्वनं सर्वं कुपुत्रेण कुलं यथा॥"** - जैसे एक सूखे पेड़ से पूरा जंगल जल सकता है, वैसे ही एक कुपुत्र पूरे परिवार को बदनाम कर सकता है।

5. **"अतिविश्वासो न कर्तव्यः, अतिविश्वासात् हतः कर्णः"** - अत्यधिक विश्वास नहीं करना चाहिए, अत्यधिक विश्वास से कर्ण की मृत्यु हुई।

6. **"चतुरः आत्माम् न विश्वसेत्"** - चार व्यक्तियों पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए - अपराधी के रिश्तेदार, बेटे के साथ झगड़ा करने वाले, नौकर जिसे निकाल दिया गया हो, और स्त्री जिसका अपमान हुआ हो।

7. **"दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययाऽलंकृतोऽपि सन्। मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः॥"** - विद्वान होने पर भी दुर्जन से दूर रहना चाहिए। क्या मणि से सुशोभित सांप भयंकर नहीं होता?

8. **"अर्थार्थी जीवलोकोऽयं श्मशानमपि संश्रयेत्। त्यजेत् ज्ञातिमनर्थ्यं च निराकृत्य भयं तथा॥"** - धन के लिए लोग श्मशान भी जाते हैं। जो संबंधी लाभदायक न हो, उसे छोड़ देना चाहिए, भय को त्याग कर।

चाणक्य नीति का वर्तमान प्रासंगिकता

आज के समय में चाणक्य नीति की प्रासंगिकता अनेक स्तरों पर देखी जा सकती है:

1. **राजनीतिक रणनीति**: आधुनिक अंतरराष्ट्रीय संबंधों और राजनीतिक रणनीति में चाणक्य के सिद्धांत प्रासंगिक हैं। उनका मंडल सिद्धांत आज भी राष्ट्रों की विदेश नीति में दिखाई देता है।

2. **प्रबंधन और नेतृत्व**: चाणक्य के नेतृत्व और प्रबंधन पर विचार कॉर्पोरेट जगत में भी उपयोगी हैं। उनके द्वारा प्रतिपादित गुण जैसे दूरदर्शिता, रणनीतिक सोच, निर्णय लेने की क्षमता आदि आज के नेताओं के लिए भी महत्वपूर्ण हैं।

3. **व्यक्तिगत विकास**: चाणक्य के कई सूत्र व्यक्तिगत विकास, आत्म-अनुशासन और चरित्र निर्माण पर केंद्रित हैं। ये सिद्धांत आज भी व्यक्तित्व विकास में सहायक हैं।

4. **शिक्षा का महत्व**: चाणक्य शिक्षा के महत्व पर जोर देते हैं, जो आज के ज्ञान-आधारित समाज में और भी प्रासंगिक है।

5. **नैतिक मूल्य**: चाणक्य के नैतिक मूल्य और धर्म की अवधारणा आज भी व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के लिए मार्गदर्शक हो सकते हैं।

चाणक्य नीति की यह विशेषता है कि इसमें व्यावहारिकता और नैतिकता का अद्‌भुत संगम है। चाणक्य राजनीति में कूटनीति और चतुराई का समर्थन करते हैं, लेकिन साथ ही व्यक्तिगत धर्म और नैतिकता पर भी बल देते हैं। इस संतुलन ने उनके विचारों को कालातीत और सार्वभौमिक बना दिया है।

चाणक्य नीति की गहराई और व्यापकता इतनी अधिक है कि यह केवल एक राजनीतिक या प्रशासनिक ग्रंथ नहीं, बल्कि जीवन के विभिन्न पहलुओं पर एक व्यापक मार्गदर्शिका है। इसके सूत्र और सिद्धांत आज

भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने हजारों वर्ष पहले थे, जो इस ग्रंथ की महानता और चाणक्य की प्रतिभा का प्रमाण है।

हितोपदेश: मित्रता और व्यावहारिक ज्ञान का खजाना

हितोपदेश संस्कृत साहित्य का एक प्रसिद्ध कथा संग्रह है, जो मूलतः पंचतंत्र पर आधारित है। "हितोपदेश" शब्द का अर्थ है "हितकारी उपदेश" या "लाभदायक शिक्षा"। यह ग्रंथ नारायण पंडित द्वारा रचित माना जाता है, जो 12वीं शताब्दी के आसपास बंगाल के राजा धवलचंद्र के दरबार में थे। हितोपदेश की रचना का मुख्य उद्देश्य राजकुमारों को नीति, राजनीति, व्यवहार कुशलता और नैतिक मूल्यों की शिक्षा देना था।

हितोपदेश का ऐतिहासिक और साहित्यिक महत्व

हितोपदेश का महत्व इसके शैक्षिक और नैतिक मूल्य में निहित है। यह ग्रंथ शिक्षा के प्राचीन भारतीय दर्शन को प्रतिबिंबित करता है, जिसमें रोचक कथाओं के माध्यम से गंभीर नैतिक और व्यावहारिक सिद्धांतों को सिखाया जाता था। हितोपदेश की कथाएँ मनोरंजक होने के साथ-साथ शिक्षाप्रद भी हैं, और इसलिए ये सदियों से विभिन्न आयु वर्गों के लोगों के बीच लोकप्रिय रही हैं।

हितोपदेश का प्रभाव भारत की सीमाओं से परे भी देखा जा सकता है। इसका अनुवाद विश्व की अनेक भाषाओं में हुआ है और यह विश्व साहित्य का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया है। 19वीं शताब्दी में सर एडविन अर्नोल्ड द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित "द बुक ऑफ़ गुड काउंसेल" इसकी लोकप्रियता का एक उदाहरण है।

हितोपदेश की संरचना और विषयवस्तु

हितोपदेश चार खंडों में विभाजित है, प्रत्येक एक विशिष्ट विषय पर केंद्रित है:

1. **मित्रलाभ**: इस खंड में मित्रता प्राप्त करने और उसके महत्व पर कथाएँ हैं। यह बताता है कि कैसे सच्चे मित्र जीवन के संकटों में सहायक होते हैं।
2. **सुहृद्भेद**: यह खंड मित्रों के बीच मतभेद और विश्वासघात के परिणामों पर प्रकाश डालता है। इसमें चुगली और षड्यंत्र के खतरों के बारे में चेतावनी दी गई है।

3. **विग्रह**: इस खंड में युद्ध और संघर्ष के विषय पर कथाएँ हैं। यह राजनीतिक रणनीति और युद्ध के नियमों पर सिखाता है।

4. **संधि**: यह खंड शांति, सुलह और विवादों के शांतिपूर्ण समाधान पर केंद्रित है।

प्रत्येक खंड में कई उपकथाएँ हैं जो एक-दूसरे में गुंथी हुई हैं, जिसे "फ्रेम स्टोरी" या "स्टोरी विथिन अ स्टोरी" तकनीक कहा जाता है। इस तकनीक का उपयोग जटिल नैतिक सिद्धांतों को सरल और रोचक तरीके से प्रस्तुत करने के लिए किया गया है।

हितोपदेश की प्रमुख कथाएँ और उनके शिक्षाएँ

हितोपदेश में अनेक प्रसिद्ध कथाएँ हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख हैं:

1. **कौआ और सांप की कहानी**: एक कौए के घोंसले में सांप ने उसके बच्चों को खा लिया। कौए ने अपने मित्र लोमड़ी की सलाह से राजा के गले का हार चुराकर सांप के बिल पर डाल दिया, जिससे राजा के सैनिकों ने सांप को मार दिया। यह कहानी सिखाती है कि बुद्धि से बड़े शत्रु को भी हराया जा सकता है।

2. **तीन मछलियों की कहानी**: एक तालाब में तीन मछलियाँ रहती थीं - पहली दूरदर्शी, दूसरी आवश्यकता पड़ने पर निर्णय लेने वाली, और तीसरी भाग्यवादी। जब मछुआरे तालाब पर आक्रमण करने वाले थे, तो पहली मछली पहले ही भाग गई, दूसरी ने मरी हुई होने का नाटक किया और बच गई, जबकि तीसरी पकड़ी गई। यह कहानी दूरदर्शिता और त्वरित निर्णय लेने की क्षमता के महत्व को दर्शाती है।

3. **बंदर और मगरमच्छ की कहानी**: एक मगरमच्छ एक बंदर से मित्रता करता है और अपनी पत्नी की इच्छा पर उसे अपने घर आमंत्रित करता है, जिससे वह बंदर का दिल खा सके। बंदर चतुराई से अपना दिल पेड़ पर छोड़ आने का बहाना बनाकर बच निकलता है। यह कहानी सावधानी और चतुराई का महत्व सिखाती है।

4. **कछुए और दो हंसों की कहानी**: एक कछुआ अपने मित्र दो हंसों के साथ उड़कर नए तालाब जाना चाहता है। हंस एक लकड़ी के टुकड़े को पकड़कर उड़ते हैं और कछुए को उस लकड़ी को

मुंह से पकड़ने और बीच में नहीं बोलने की सलाह देते हैं। लेकिन जब लोग उसे देखकर आश्चर्य करते हैं, तो वह बोलने के लिए मुंह खोलता है और गिरकर मर जाता है। यह कहानी सलाह का पालन करने और वाणी संयम के महत्व को दर्शाती है।

5. **चतुर खरगोश की कहानी**: एक शेर रोज एक जानवर को खाता था। जब खरगोश की बारी आई, तो उसने शेर से कहा कि एक दूसरा शेर उसे रोक रहा था। वह शेर को एक कुएँ के पास ले गया, जहाँ शेर ने अपना प्रतिबिंब देखकर सोचा कि वह दूसरा शेर है और कुएँ में कूदकर मर गया। यह कहानी बुद्धिमत्ता और चतुराई का महत्व सिखाती है।

हितोपदेश के प्रमुख सिद्धांत और मूल्य

हितोपदेश के माध्यम से निम्नलिखित प्रमुख सिद्धांतों और मूल्यों का प्रचार किया गया है:

1. **मित्रता का महत्व**: हितोपदेश सच्ची मित्रता के महत्व पर जोर देता है और सिखाता है कि मित्र चुनते समय सावधानी बरतनी चाहिए।
2. **बुद्धिमत्ता और चतुराई**: यह ग्रंथ बुद्धिमत्ता को बल से ऊपर रखता है और दिखाता है कि चतुराई से बड़ी से बड़ी समस्या का समाधान किया जा सकता है।
3. **परिश्रम और दृढ़ संकल्प**: कई कहानियां परिश्रम, लगन और दृढ़ संकल्प के महत्व को उजागर करती हैं।
4. **दूरदर्शिता और योजना**: हितोपदेश सिखाता है कि आगे की सोच और अच्छी योजना सफलता की कुंजी है।
5. **वाणी संयम**: ग्रंथ में कई कहानियां बताती हैं कि कैसे अनावश्यक बोलना या गलत समय पर बोलना हानिकारक हो सकता है।
6. **अहंकार का त्याग**: अहंकार को एक नकारात्मक गुण के रूप में चित्रित किया गया है जो विनाश की ओर ले जाता है।
7. **कूटनीति और रणनीति**: हितोपदेश में राजनीतिक कूटनीति और रणनीति के विभिन्न पहलु

इकाई 13: स्त्री दृष्टिकोण और सामाजिक संरचना

समाज की संरचना में स्त्री का स्थान और उसकी भूमिका हमेशा से ही विचारणीय विषय रहा है। हजारों वर्षों से विभिन्न सभ्यताओं में स्त्री की स्थिति में उतार-चढ़ाव देखने को मिला है। कुछ प्राचीन संस्कृतियों में जहां स्त्रियों को देवी के समान पूजा जाता था, वहीं अधिकांश समाजों में उन्हें दोयम दर्जे का नागरिक माना गया। सामाजिक संरचना में स्त्री-पुरुष के बीच की खाई हमेशा से ही वैचारिक मंथन का विषय रही है। आधुनिक युग में स्त्री दृष्टिकोण से इस सामाजिक संरचना को समझना और उसका विश्लेषण करना महत्वपूर्ण हो गया है। यह अध्याय स्त्री दृष्टिकोण से सामाजिक संरचना के विभिन्न पहलुओं को समझने का प्रयास करता है। सामाजिक संरचना में स्त्री की भूमिका को समझने के लिए हमें इतिहास के पन्नों को पलटना होगा। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक स्त्री की स्थिति में जो बदलाव आए हैं, उनका अध्ययन इस बात को दर्शाता है कि स्त्री-पुरुष सम्बन्धी विचारधारा किस प्रकार विकसित हुई है। जब हम समाज को स्त्री के दृष्टिकोण से देखते हैं, तो हमें एक अलग ही परिप्रेक्ष्य मिलता है। यह परिप्रेक्ष्य न केवल स्त्री की स्थिति को बल्कि पूरी सामाजिक संरचना को नए सिरे से परिभाषित करता है। इस अध्याय में हम स्त्री दृष्टिकोण से सामाजिक संरचना के विभिन्न पहलुओं जैसे परिवार, शिक्षा, कार्यस्थल, राजनीति, कानून, संस्कृति, धर्म, आर्थिक व्यवस्था आदि का अध्ययन करेंगे। हम यह भी देखेंगे कि कैसे विभिन्न सामाजिक आंदोलनों ने स्त्री की स्थिति में बदलाव लाने का प्रयास किया है और इसका समाज की संरचना पर क्या प्रभाव पड़ा है। अंत में, हम भविष्य की दिशा पर भी विचार करेंगे और देखेंगे कि किस प्रकार एक समतामूलक समाज की स्थापना की जा सकती है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में स्त्री की स्थिति

इतिहास का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि विभिन्न कालखंडों में स्त्री की स्थिति भिन्न-भिन्न रही है। प्राचीन भारत में वैदिक काल के दौरान स्त्रियों को काफी सम्मान प्राप्त था। इस काल में स्त्रियां शिक्षा ग्रहण करती थीं, धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेती थीं और विवाह में भी उनकी इच्छा का सम्मान किया जाता था। गार्गी, मैत्रेयी जैसी विदुषी स्त्रियों ने अपने ज्ञान से सभी को प्रभावित किया था। इस काल में स्त्री और पुरुष दोनों को समान अधिकार प्राप्त थे। लेकिन धीरे-धीरे समय के साथ स्त्री की स्थिति में गिरावट आई। मध्यकाल में स्त्रियों की स्थिति अत्यंत दयनीय हो गई थी। इस काल में स्त्रियों को शिक्षा से वंचित कर दिया गया और उन्हें घर की चारदीवारी तक सीमित कर दिया गया। सती प्रथा, पर्दा प्रथा, बाल विवाह जैसी

कुरीतियों ने स्त्रियों की स्थिति को और भी बदतर बना दिया। स्त्रियों को केवल घर संभालने और बच्चों को जन्म देने तक सीमित कर दिया गया। आधुनिक काल में राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, महात्मा गांधी, डॉ. बी. आर. अम्बेडकर जैसे समाज सुधारकों के प्रयासों से स्त्रियों की स्थिति में सुधार आया। स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान ने स्त्री-पुरुष समानता को एक मौलिक अधिकार के रूप में स्वीकार किया। इसके बावजूद, वास्तविक जीवन में स्त्रियों को अभी भी कई प्रकार के भेदभाव का सामना करना पड़ता है।

विश्व के अन्य भागों में भी स्त्री की स्थिति में उतार-चढ़ाव देखने को मिला है। पश्चिमी देशों में औद्योगिक क्रांति के बाद स्त्रियों ने घर से बाहर निकलकर कार्य करना शुरू किया। दो विश्व युद्धों के दौरान जब पुरुष युद्ध में गए, तो स्त्रियों ने उनकी जगह लेकर कारखानों में काम किया। इससे स्त्रियों की आर्थिक स्वतंत्रता बढ़ी और उनकी सामाजिक स्थिति में भी सुधार आया। 20वीं सदी में नारीवादी आंदोलन के प्रभाव से स्त्रियों की स्थिति में और अधिक सुधार हुआ। स्त्रियों को मताधिकार मिला, शिक्षा के अवसर बढ़े और कार्यस्थल पर भी उनकी स्थिति मजबूत हुई। लेकिन अभी भी दुनिया के कई हिस्सों में स्त्रियां शोषण, हिंसा और भेदभाव का शिकार हैं। इतिहास से हम यह सीखते हैं कि सामाजिक संरचना में स्त्री की स्थिति स्थिर नहीं रही है, बल्कि यह समय और परिस्थितियों के अनुसार बदलती रही है। यह बदलाव सकारात्मक भी रहे हैं और नकारात्मक भी। आज की स्थिति पिछले कालखंडों से बेहतर है, लेकिन अभी भी वांछित लक्ष्य से काफी दूर है।

पितृसत्तात्मक समाज और स्त्री का स्थान

पितृसत्तात्मक समाज वह समाज होता है जिसमें पुरुष का वर्चस्व होता है और सत्ता, अधिकार और सम्पत्ति पर पुरुषों का नियंत्रण होता है। ऐसे समाज में स्त्रियों को दोयम दर्जे का स्थान दिया जाता है और उन्हें पुरुषों के अधीन माना जाता है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था केवल परिवार तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह समाज के हर क्षेत्र - शिक्षा, कार्यस्थल, राजनीति, कानून, संस्कृति, धर्म में व्याप्त है। पितृसत्तात्मक समाज में लड़के और लड़कियों का पालन-पोषण अलग-अलग तरीके से किया जाता है। लड़कियों को 'अच्छी लड़की' बनने के लिए विनम्र, आज्ञाकारी और त्यागी होने की शिक्षा दी जाती है, जबकि लड़कों को आक्रामक, महत्वाकांक्षी और स्वतंत्र होने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। यह अलग-अलग पालन-पोषण स्त्री और पुरुष में लैंगिक भूमिकाओं और व्यवहार के अंतर को जन्म देता है। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री

का मूल्यांकन उसकी प्रजनन क्षमता और पारिवारिक भूमिका के आधार पर किया जाता है। स्त्री को माँ, पत्नी, बहन, बेटी के रूप में ही देखा जाता है, न कि एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में। उसकी पहचान पुरुष के सम्बन्ध से ही परिभाषित होती है। स्त्री के योगदान को घर तक सीमित माना जाता है और उसके द्वारा किए गए घरेलू कार्यों को 'काम' नहीं माना जाता।

पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री के शरीर पर भी पुरुषों का नियंत्रण होता है। स्त्री के कपड़े, उसके आने-जाने, उसके यौन व्यवहार, यहां तक कि उसके प्रजनन अधिकारों पर भी समाज और परिवार का नियंत्रण होता है। इस प्रकार स्त्री न केवल आर्थिक और सामाजिक रूप से बल्कि शारीरिक रूप से भी पराधीन होती है। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री से अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं को परिवार के हित में त्याग दे। उसे सिखाया जाता है कि उसका सर्वोच्च कर्तव्य परिवार की सेवा करना है। स्त्री द्वारा अपने अधिकारों की मांग करना या अपनी इच्छाओं को प्राथमिकता देना 'अनुचित' माना जाता है। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री के विरुद्ध हिंसा को भी औचित्य प्रदान किया जाता है। घरेलू हिंसा, बलात्कार, यौन उत्पीड़न, भ्रूण हत्या, महिला शिशु हत्या जैसी समस्याएं पितृसत्तात्मक समाज की ही देन हैं। ये हिंसा के रूप न केवल स्त्री के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं, बल्कि उसके अस्तित्व को ही खतरे में डाल देते हैं। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की स्थिति में सुधार के लिए यह आवश्यक है कि समाज की इस संरचना को चुनौती दी जाए और इसे बदला जाए। स्त्री-पुरुष में भेदभाव करने वाली मान्यताओं, प्रथाओं और संस्थाओं को समाप्त करना होगा। स्त्री को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होना होगा और अपनी आवाज उठानी होगी। साथ ही, पुरुषों को भी इस बदलाव का हिस्सा बनना होगा और अपनी विशेषाधिकार प्राप्त स्थिति को त्यागना होगा।

स्त्री शिक्षा और सशक्तिकरण

शिक्षा किसी भी समाज के विकास की आधारशिला होती है। स्त्री शिक्षा का महत्व इस बात से और भी अधिक हो जाता है क्योंकि जब एक स्त्री शिक्षित होती है, तो पूरा परिवार शिक्षित होता है। स्त्री शिक्षा न केवल स्त्री के व्यक्तिगत विकास के लिए आवश्यक है, बल्कि यह समाज के समग्र विकास के लिए भी महत्वपूर्ण है। भारत में स्त्री शिक्षा का इतिहास उतार-चढ़ाव से भरा रहा है। वैदिक काल में स्त्रियां शिक्षा ग्रहण करती थीं और विद्वान बनती थीं। लेकिन मध्यकाल में स्त्रियों को शिक्षा से वंचित कर दिया गया। आधुनिक काल में समाज सुधारकों के प्रयासों से स्त्री शिक्षा को बढ़ावा मिला। ईश्वरचंद्र विद्यासागर,

सावित्रीबाई फुले, महात्मा गांधी जैसे समाज सुधारकों ने स्त्री शिक्षा के लिए अथक प्रयास किए। आज भारत में स्त्री शिक्षा की स्थिति में काफी सुधार हुआ है। सरकार द्वारा 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' जैसे अभियान चलाए जा रहे हैं। स्कूलों और कॉलेजों में लड़कियों के प्रवेश में वृद्धि हुई है। लेकिन अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्री शिक्षा की स्थिति संतोषजनक नहीं है। गरीबी, रूढ़िवादी विचारधारा, बाल विवाह, असुरक्षा जैसे कारणों से कई लड़कियां शिक्षा से वंचित रह जाती हैं।

स्त्री शिक्षा के साथ-साथ स्त्री सशक्तिकरण भी महत्वपूर्ण है। स्त्री सशक्तिकरण का अर्थ है स्त्री को ऐसी शक्ति प्रदान करना जिससे वह अपने जीवन से जुड़े निर्णय स्वयं ले सके। स्त्री सशक्तिकरण के लिए आर्थिक स्वतंत्रता, राजनीतिक भागीदारी, कानूनी अधिकार, शारीरिक स्वायत्तता और सामाजिक स्वीकृति आवश्यक है। स्त्री सशक्तिकरण के लिए विभिन्न स्तरों पर प्रयास किए जा रहे हैं। सरकार द्वारा नीतियां और कानून बनाए जा रहे हैं, गैर सरकारी संगठन स्त्री अधिकारों के लिए काम कर रहे हैं, और स्त्रियां स्वयं भी अपने अधिकारों के लिए आवाज उठा रही हैं। स्वयं सहायता समूह, माइक्रोफाइनेंस, कौशल विकास जैसे कार्यक्रम स्त्रियों के आर्थिक सशक्तिकरण में मदद कर रहे हैं। शिक्षा और सशक्तिकरण से स्त्री न केवल आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होती है, बल्कि उसका आत्मविश्वास भी बढ़ता है। वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होती है और उनकी रक्षा के लिए संघर्ष कर सकती है। शिक्षित और सशक्त स्त्री अपने परिवार, समुदाय और देश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। स्त्री शिक्षा और सशक्तिकरण के लिए यह आवश्यक है कि लैंगिक भेदभाव के विरुद्ध लड़ाई लड़ी जाए। लड़के और लड़कियों को समान अवसर मिलने चाहिए। पाठ्यपुस्तकों से लैंगिक रूढ़िवादिता को हटाना होगा और शिक्षा में लैंगिक संवेदनशीलता को शामिल करना होगा। स्त्रियों को व्यावसायिक प्रशिक्षण और कौशल विकास के अवसर उपलब्ध कराने होंगे ताकि वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन सकें।

परिवार और स्त्री की भूमिका

परिवार समाज की सबसे छोटी इकाई है, जो समाज की संरचना का आधार बनती है। परिवार में स्त्री की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। परंपरागत रूप से स्त्री को परिवार की देखभाल करने वाली, घर संभालने वाली और बच्चों का पालन-पोषण करने वाली के रूप में देखा जाता है। यह भूमिका स्त्री की पहचान का एक अभिन्न अंग बन गई है। पारिवारिक संरचना में स्त्री की भूमिका समय के साथ बदलती रही है। पहले स्त्री केवल घर तक ही सीमित थी, लेकिन आज वह घर के साथ-साथ बाहर भी काम करती है।

इस दोहरी भूमिका ने स्त्री के जीवन में नए चुनौतियों को जन्म दिया है। उसे घर और काम दोनों को संतुलित करना पड़ता है, जिससे उस पर मानसिक और शारीरिक दबाव बढ़ता है। परिवार में स्त्री की भूमिका को कम महत्व दिया जाता है। स्त्री द्वारा किए गए घरेलू कार्यों को 'काम' नहीं माना जाता और इसका कोई आर्थिक मूल्य नहीं आंका जाता। स्त्री को 24 घंटे काम करना पड़ता है, लेकिन उसका यह श्रम अदृश्य रहता है। इसके विपरीत, पुरुष द्वारा किए गए कार्य को 'वास्तविक काम' माना जाता है और उसे इसके लिए पैसे मिलते हैं।

परिवार में निर्णय लेने की प्रक्रिया में भी स्त्री की भूमिका सीमित होती है। महत्वपूर्ण निर्णय पुरुष लेते हैं, जबकि स्त्री को उन निर्णयों को मानना पड़ता है। इससे स्त्री की स्वायत्तता और स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगता है। परिवार में संसाधनों के वितरण में भी भेदभाव किया जाता है। स्त्री को कम भोजन, कम स्वास्थ्य सुविधाएं, कम शिक्षा और कम आराम मिलता है। आधुनिक समय में पारिवारिक संरचना में बदलाव आ रहा है। संयुक्त परिवार की जगह एकल परिवार ले रहे हैं। इससे स्त्री-पुरुष की भूमिकाओं में भी बदलाव आ रहा है। पुरुष अब घरेलू कार्यों में हाथ बंटा रहे हैं और स्त्रियां घर के बाहर के काम में अपना योगदान दे रही हैं। यह बदलाव सकारात्मक है, लेकिन अभी भी अधिकांश परिवारों में परंपरागत भूमिकाएं ही प्रचलित हैं। परिवार में स्त्री की स्थिति सुधारने के लिए यह आवश्यक है कि घरेलू कार्यों का महत्व स्वीकार किया जाए और उसे 'काम' का दर्जा दिया जाए। घरेलू कार्यों का समान वितरण होना चाहिए ताकि स्त्री पर अतिरिक्त बोझ न पड़े। परिवार में निर्णय लेने की प्रक्रिया में स्त्री की समान भागीदारी होनी चाहिए और उसकी राय का सम्मान किया जाना चाहिए। संसाधनों के वितरण में भी भेदभाव नहीं होना चाहिए।

कार्यस्थल और स्त्री चुनौतियां

आज स्त्रियां हर क्षेत्र में अपना योगदान दे रही हैं। शिक्षा, चिकित्सा, इंजीनियरिंग, विज्ञान, कला, खेल, राजनीति - हर क्षेत्र में स्त्रियों ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है और अपनी क्षमता का परिचय दिया है। लेकिन कार्यस्थल पर स्त्रियों को अभी भी कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। कार्यस्थल पर सबसे बड़ी चुनौती लैंगिक भेदभाव है। समान काम के लिए स्त्रियों को पुरुषों की तुलना में कम वेतन मिलता है। पदोन्नति के अवसर भी स्त्रियों को कम मिलते हैं। इसे 'ग्लास सीलिंग' (Glass Ceiling) कहा जाता है, जो स्त्रियों को उच्च पदों तक पहुंचने से रोकती है। निर्णय लेने वाली स्थितियों में स्त्रियों की संख्या कम होती है, जिससे उनकी आवाज कमजोर पड़ जाती है। कार्यस्थल पर स्त्रियों को यौन उत्पीड़न का भी सामना करना

पड़ता है। यौन उत्पीड़न न केवल स्त्री के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है, बल्कि उसके काम और कैरियर को भी नुकसान पहुंचाता है। कई स्त्रियां यौन उत्पीड़न के कारण अपनी नौकरी छोड़ देती हैं या अपना कैरियर बदल लेती हैं।

कार्यस्थल पर स्त्रियों के सामने आने वाली एक अन्य चुनौती है काम और परिवार के बीच संतुलन बनाना। स्त्री को घर और काम दोनों को संभालना पड़ता है, जिससे उस पर दोहरा बोझ पड़ता है। कई बार स्त्री को अपने कैरियर की कीमत पर परिवार को प्राथमिकता देनी पड़ती है, जिससे उसका पेशेवर विकास प्रभावित होता है। मातृत्व अवकाश और बच्चों की देखभाल भी स्त्रियों के कैरियर को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कारक हैं। कई नियोक्ता मातृत्व अवकाश को बोझ मानते हैं और स्त्रियों को नौकरी देने में हिचकिचाते हैं। कार्यस्थल पर क्रेच या शिशु देखभाल केंद्र की कमी के कारण स्त्रियों को अपने छोटे बच्चों की देखभाल के लिए परेशानी होती है।

आत्म मूल्यांकन प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न (MCQs)

1. रामायण के रचयिता कौन माने जाते हैं?

a) वेदव्यास

b) वाल्मीकि

c) तुलसीदास

d) कालिदास

2. महाभारत में कुल कितने पर्व (अध्याय) हैं?

a) 16

b) 18

c) 20

d) 24

3. पुराणों की कुल संख्या कितनी मानी जाती है?

a) 16

b) 18

c) 24

d) 36

4. भगवद्गीता किस महाकाव्य का हिस्सा है?

a) रामायण

b) महाभारत

c) हरिवंश पुराण

d) विष्णु पुराण

5. निम्नलिखित में से कौन-सा 'पंच महापुराण' में शामिल नहीं है?

a) विष्णु पुराण

b) शिव पुराण

c) मार्कण्डेय पुराण

d) शाकुन्तल पुराण

6. 'चाणक्य नीति' के रचयिता कौन हैं?

a) चाणक्य

b) विष्णु शर्मा

c) शुक्राचार्य

d) भर्तृहरि

7. 'पंचतंत्र' में कुल कितने तंत्र (भाग) होते हैं?

a) तीन

b) चार

c) पांच

d) सात

8. 'हितोपदेश' किस ग्रंथ का संक्षिप्त और सरल रूप माना जाता है?

a) पंचतंत्र

b) अर्थशास्त्र

c) नीतिशतक

d) रामायण

9. महाभारत का केंद्रीय विषय क्या है?

a) राम-रावण युद्ध

b) कौरव-पांडव युद्ध

c) अधर्म पर धर्म की विजय

d) कृष्ण की लीलाएं

10. निम्नलिखित में से कौन-सा प्रसंग भारतीय साहित्य में स्त्री-विमर्श का उदाहरण नहीं माना जाता?

a) द्रौपदी का चीरहरण प्रसंग

b) सीता की अग्निपरीक्षा

c) कुंती द्वारा कर्ण का त्याग

d) राम द्वारा रावण वध

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. रामायण में निहित मुख्य नैतिक मूल्यों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
2. महाभारत के अनुसार धर्म की अवधारणा क्या है? संक्षेप में समझाइए।
3. पुराणों का वर्गीकरण किस प्रकार किया गया है? संक्षिप्त जानकारी दीजिए।
4. भारतीय लोकनृत्य और पुराणों के बीच क्या संबंध है? उदाहरण सहित समझाइए।
5. चाणक्य नीति के मुख्य सिद्धांतों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

6. पंचतंत्र और हितोपदेश के बीच समानताएँ और अंतर स्पष्ट कीजिए।
7. महाकाव्यों में स्त्री पात्रों की भूमिका पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
8. प्राचीन भारतीय समाज में स्त्री के सामाजिक स्थान पर प्रकाश डालिए।
9. पुराणों में वर्णित सृष्टि के सिद्धांत का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
10. नीति साहित्य का व्यावहारिक महत्व क्या है? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. रामायण और महाभारत में निहित दार्शनिक विचारों और नैतिक मूल्यों का विस्तृत विश्लेषण कीजिए। वर्तमान समय में इनकी प्रासंगिकता पर प्रकाश डालिए।
2. "महाभारत केवल एक महाकाव्य नहीं, बल्कि भारतीय ज्ञान का विश्वकोश है।" इस कथन की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
3. पुराणों का वर्गीकरण, विषय-वस्तु और महत्व पर विस्तार से प्रकाश डालिए। भारतीय संस्कृति के संरक्षण में पुराणों की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।
4. भारतीय लोकनृत्य और पौराणिक कथाओं के बीच संबंध का विश्लेषण कीजिए। किन्हीं तीन लोकनृत्यों के पौराणिक संदर्भों पर विस्तार से चर्चा कीजिए।
5. चाणक्य नीति, अर्थशास्त्र तथा अन्य नीति ग्रंथों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कीजिए। आधुनिक राजनीति और प्रशासन में इनकी प्रासंगिकता पर प्रकाश डालिए।
6. पंचतंत्र और हितोपदेश के साहित्यिक, नैतिक और सामाजिक महत्व का विश्लेषण कीजिए। इन ग्रंथों का वैश्विक प्रभाव किस प्रकार रहा है?
7. प्राचीन भारतीय साहित्य में स्त्री-विमर्श का विस्तृत विवेचन कीजिए। महाकाव्यों और पुराणों में वर्णित स्त्री पात्रों के माध्यम से तत्कालीन स्त्री-जीवन और सामाजिक स्थिति का विश्लेषण कीजिए।

8. "प्राचीन भारतीय साहित्य में स्त्री केवल पूजनीय या त्याज्य के रूप में ही चित्रित की गई है।" इस कथन का विश्लेषणात्मक परीक्षण कीजिए।

9. प्राचीन भारतीय ग्रंथों में वर्णित सामाजिक संरचना का विस्तृत विवरण दीजिए। इसके सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं पर प्रकाश डालिए।

10. नीति साहित्य के माध्यम से प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का विश्लेषण कीजिए। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में इसके अनुप्रयोग की संभावनाओं पर चर्चा कीजिए।

मॉड्यूल 4

मध्यकालीन एवं आधुनिक भारतीय दर्शन और साहित्य

उद्देश्य

- भक्ति आंदोलन, ज्ञान मार्ग, प्रेम मार्ग और सूफी विचारधारा को समझना।
- तुलसीदास, कबीर और मीराबाई की काव्य परंपरा में दर्शन और भक्ति के समन्वय को पहचानना।
- मध्यकालीन संत साहित्य की भाषा, शैली और विचारधारा का विश्लेषण करना।
- सूफी संतों की शिक्षाओं का सांप्रदायिक सद्भाव की दृष्टि से मूल्यांकन करना।
- भारतीय पुनर्जागरण में दर्शन और साहित्य की भूमिका को समझना।
- आधुनिक भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक सुधारों में दर्शन की भागीदारी को जानना।
- मध्यकालीन और आधुनिक विचारकों की विचारधारा के प्रभाव का अध्ययन करना।
- भक्ति साहित्य की प्रासंगिकता को आज के सामाजिक संदर्भ में देखना।

इकाई 14: भक्ति आंदोलन, ज्ञान मार्ग, प्रेममार्ग, और सूफीवाद

भारतीय आध्यात्मिक और सांस्कृतिक इतिहास में भक्ति आंदोलन एक महत्वपूर्ण घटना रही है जिसने समाज के प्रत्येक पहलू को गहराई से प्रभावित किया। इस आंदोलन ने धार्मिक अनुष्ठानों और सामाजिक संरचनाओं में क्रांतिकारी परिवर्तन लाए, जिससे भारतीय संस्कृति का एक नया आयाम विकसित हुआ। भक्ति आंदोलन का मूल सिद्धांत था ईश्वर के प्रति अपने हृदय को समर्पित करना और प्रेम के माध्यम से उनसे एकाकार होना। इस आंदोलन ने जाति, वर्ग, लिंग और धर्म की सीमाओं को तोड़ दिया और एक ऐसा समाज बनाने का प्रयास किया जहां हर व्यक्ति को आध्यात्मिकता का अधिकार था। इसी के साथ-साथ ज्ञान मार्ग, प्रेममार्ग और सूफीवाद जैसे अन्य आध्यात्मिक मार्गों ने भी भारतीय समाज को अपने-अपने तरीके से प्रभावित किया। इन सभी आध्यात्मिक धाराओं में मुख्य अंतर उनके द्वारा ईश्वर प्राप्ति के लिए अपनाए गए मार्ग में था, लेकिन सभी का अंतिम लक्ष्य एक ही था - परमात्मा से मिलन। भक्ति आंदोलन का इतिहास

अत्यंत प्राचीन है और इसके मूल तत्व वेदों और उपनिषदों में भी देखे जा सकते हैं। हालांकि, आधुनिक भक्ति आंदोलन का उदय 6वीं शताब्दी में दक्षिण भारत के अलवार और नयनार संतों के साथ माना जाता है। ये संत शिव और विष्णु के अनन्य भक्त थे जिन्होंने तमिल भाषा में अपने भक्ति गीत गाए और आम जनता के बीच धार्मिक भावना का प्रसार किया। इन संतों का मानना था कि ईश्वर और भक्त के बीच का संबंध बहुत ही व्यक्तिगत और भावनात्मक होता है, जिसे केवल प्रेम और समर्पण के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है। इस विचारधारा ने बाद में पूरे भारत में फैले भक्ति आंदोलन का आधार बना। उत्तर भारत में रामानंद, कबीर, गुरु नानक, तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई और रसखान जैसे संतों ने इस आंदोलन को आगे बढ़ाया, जबकि दक्षिण में चैतन्य महाप्रभु, त्यागराज, पुरंदरदास और अन्य ने इसका प्रचार-प्रसार किया।

भक्ति आंदोलन के संतों ने आम जनता से जुड़ने के लिए अपनी बातें सरल भाषा में कहीं, जो उनकी अपनी मातृभाषा थी। यह एक क्रांतिकारी कदम था, क्योंकि उस समय तक धार्मिक ज्ञान केवल संस्कृत में ही उपलब्ध था, जिसे समझना आम लोगों के लिए मुश्किल था। इस प्रकार, भक्ति आंदोलन ने ज्ञान के लोकतंत्रीकरण का मार्ग प्रशस्त किया, जिससे समाज के हर वर्ग के लोग आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त कर सकें। उदाहरण के लिए, कबीर ने अपने दोहों के माध्यम से सरल हिंदी में गहन आध्यात्मिक सत्यों को प्रस्तुत किया, जिन्हें आम लोग आसानी से समझ सकते थे। इसी प्रकार, गुरु नानक ने पंजाबी भाषा में अपनी शिक्षाएँ दीं, जबकि चैतन्य महाप्रभु ने बंगाली और ओड़िया में अपने भक्ति गीत गाए। मीराबाई ने राजस्थानी और ब्रज भाषा में अपने पद रचे, जिनमें कृष्ण के प्रति उनके अटूट प्रेम और समर्पण की अभिव्यक्ति होती थी। भक्ति आंदोलन का एक महत्वपूर्ण पहलू यह था कि इसने जाति व्यवस्था और धार्मिक अंधविश्वासों के खिलाफ आवाज उठाई। इस आंदोलन के कई संत निम्न जाति से आते थे, जैसे कबीर जो जुलाहे थे, रविदास जो चमार थे, और नामदेव जो दर्जी थे। इन संतों ने अपने जीवन और शिक्षाओं से यह साबित किया कि आध्यात्मिक उन्नति के लिए जाति या वर्ग कोई मायने नहीं रखते। उनका मानना था कि ईश्वर के सामने सभी मनुष्य बराबर हैं और प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा परमात्मा का ही अंश है। कबीर ने अपने दोहों में स्पष्ट रूप से कहा है: "जाति-पाँति पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।" इसी प्रकार, गुरु नानक ने भी जाति व्यवस्था की निरर्थकता पर जोर दिया और मानवता की एकता का संदेश दिया।

भक्ति आंदोलन ने महिलाओं को भी आध्यात्मिक अभिव्यक्ति का अवसर प्रदान किया, जो उस समय के सामाजिक मानदंडों के अनुसार अभूतपूर्व था। मीराबाई, लल्लेश्वरी, अक्का महादेवी, जनाबाई, कान्होपात्रा

जैसी अनेक महिला संतों ने इस आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों को अपने भजनों और कविताओं के माध्यम से व्यक्त किया। ये महिला संत पारंपरिक सामाजिक बंधनों से मुक्त होकर अपने आध्यात्मिक मार्ग पर चलीं और समाज में महिलाओं की स्थिति को बदलने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उदाहरण के लिए, मीराबाई ने राजघराने की सभी सुख-सुविधाओं का त्याग कर कृष्ण भक्ति में अपना जीवन समर्पित कर दिया और राजस्थान से लेकर वृंदावन तक कृष्ण के भजन गाते हुए घूमतीं रहीं। भक्ति आंदोलन के अंतर्गत दो प्रमुख धाराएँ विकसित हुईं - सगुण भक्ति और निर्गुण भक्ति। सगुण भक्ति में ईश्वर को साकार रूप में पूजा जाता है, जिसमें राम और कृष्ण जैसे अवतारों की आराधना शामिल है। तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई इसी धारा के प्रमुख कवि थे। निर्गुण भक्ति में ईश्वर को निराकार, अदृश्य और अवर्णनीय माना जाता है। कबीर, गुरु नानक, रैदास जैसे संत निर्गुण भक्ति के समर्थक थे। इन दोनों धाराओं के बीच का मुख्य अंतर उनके द्वारा ईश्वर को देखने के नज़रिए में था, लेकिन दोनों ही धाराओं का अंतिम लक्ष्य ईश्वर से एकाकार होना था। सगुण भक्ति में भक्त अपने आराध्य देव के साथ विभिन्न संबंधों जैसे माता-पिता, मित्र, प्रेमी या स्वामी के रूप में संबंध स्थापित करता है और उनके प्रति अपनी भक्ति व्यक्त करता है। उदाहरण के लिए, सूरदास ने कृष्ण के बाल रूप की लीलाओं का वर्णन करते हुए उन्हें एक शरारती बालक के रूप में चित्रित किया है, जबकि मीराबाई ने कृष्ण को अपना प्रेमी और पति माना है।

ज्ञान मार्ग भारतीय दर्शन की एक प्राचीन परंपरा है जो वेदांत दर्शन पर आधारित है। इस मार्ग में ईश्वर प्राप्ति के लिए ज्ञान को सर्वोपरि माना जाता है। ज्ञान मार्ग के अनुसार, अविद्या या अज्ञान ही संसार के दुःखों का मूल कारण है और केवल ज्ञान के माध्यम से ही मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। इस मार्ग में तत्वमसि (वह तुम हो) और अहं ब्रह्मास्मि (मैं ब्रह्म हूँ) जैसे महावाक्यों पर चिंतन और मनन करके आत्मज्ञान प्राप्त करने पर जोर दिया जाता है। आदि शंकराचार्य को ज्ञान मार्ग का सबसे प्रभावशाली प्रचारक माना जाता है, जिन्होंने अद्वैत वेदांत के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। अद्वैत वेदांत के अनुसार, ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है और यह जगत माया है। आत्मा और परमात्मा में कोई अंतर नहीं है, यह अंतर केवल अज्ञान के कारण प्रतीत होता है। ज्ञान मार्ग में श्रवण, मनन और निदिध्यासन की प्रक्रिया का पालन किया जाता है। श्रवण में गुरु से वेदांत के महावाक्यों को सुनना, मनन में उन पर गहन विचार करना और निदिध्यासन में उन सिद्धांतों को अपने जीवन में उतारना शामिल है। इस प्रकार से आत्मज्ञान प्राप्त करने वाला व्यक्ति जीवनमुक्त हो जाता है, यानी जीवित रहते हुए भी मोक्ष प्राप्त कर लेता है। ज्ञान मार्ग में माया (भ्रम), अविद्या

(अज्ञान), जीव (व्यक्तिगत आत्मा), ब्रह्म (परमात्मा), और मोक्ष (मुक्ति) जैसे सिद्धांतों का विशेष महत्व है। इस मार्ग के अनुसार, हमारा वास्तविक स्वरूप आनंदमय, सच्चिदानंद (सत्, चित्, आनंद) है और इस सत्य को जानने से ही मोक्ष प्राप्त होता है। ज्ञान मार्ग का पालन करना हर किसी के लिए आसान नहीं है, क्योंकि इसमें गहन बौद्धिक क्षमता और आत्म-अनुशासन की आवश्यकता होती है। इस मार्ग में विवेक (सत्य और असत्य में भेद करने की क्षमता), वैराग्य (संसार के प्रति अनासक्ति), षट्संपत्ति (छह गुणों का संग्रह - शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान) और मुमुक्षुत्व (मोक्ष की तीव्र इच्छा) जैसे गुणों की आवश्यकता होती है। ये गुण साधक को ज्ञान मार्ग पर आगे बढ़ने में मदद करते हैं और उसे आत्मज्ञान की ओर ले जाते हैं। ज्ञान मार्ग में बौद्धिक विचार और तार्किक विश्लेषण का महत्व है, लेकिन इसका अंतिम लक्ष्य बुद्धि से परे है और केवल अनुभव से ही प्राप्त किया जा सकता है।

प्रेममार्ग या भक्ति मार्ग ईश्वर प्राप्ति का एक ऐसा मार्ग है जिसमें भक्त अपने आराध्य के प्रति प्रेम और समर्पण के माध्यम से उनसे एकाकार होने का प्रयास करता है। इस मार्ग में ज्ञान मार्ग की तरह बौद्धिक क्षमता की आवश्यकता नहीं होती, बल्कि यहां भावनात्मक गहराई और समर्पण का महत्व होता है। प्रेममार्ग में भक्त और भगवान के बीच का संबंध अत्यंत व्यक्तिगत और भावनात्मक होता है, जिसे विभिन्न भावों के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। भक्ति रस के नौ प्रकार या नवविध भक्ति - श्रवण (सुनना), कीर्तन (गाना), स्मरण (याद करना), पादसेवन (चरणों की सेवा), अर्चन (पूजा), वंदन (प्रणाम), दास्य (सेवक होना), सख्य (मित्र होना) और आत्मनिवेदन (आत्मसमर्पण) - इसी प्रेममार्ग के विभिन्न पहलू हैं। प्रेममार्ग में भक्त अपने आराध्य के साथ विभिन्न प्रकार के संबंधों की कल्पना करता है, जैसे दास्य भाव (सेवक के रूप में), सख्य भाव (मित्र के रूप में), वात्सल्य भाव (माता-पिता के रूप में) और माधुर्य भाव (प्रेमी के रूप में)। इन भावों के माध्यम से भक्त अपने आराध्य के साथ गहरा और व्यक्तिगत संबंध स्थापित करता है और इस प्रकार उनके प्रति अपनी भक्ति व्यक्त करता है। भक्ति के इस मार्ग में नाम-जप, कीर्तन, भजन-गायन और मूर्ति पूजा जैसी विधियों का विशेष महत्व है। इन विधियों के माध्यम से भक्त अपने हृदय को शुद्ध करता है और प्रभु के प्रति अपनी भक्ति को गहरा करता है।

प्रेममार्ग में ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम और समर्पण पर जोर दिया जाता है। भक्त अपने आराध्य को अपना सर्वस्व मानकर उन्हें अपना जीवन समर्पित कर देता है। इस मार्ग में ईश्वर की कृपा का विशेष महत्व है, क्योंकि यह माना जाता है कि ईश्वर की कृपा के बिना भक्ति पूर्ण नहीं हो सकती। इसी कारण प्रेममार्ग में प्रपत्ति (शरणागति) का सिद्धांत महत्वपूर्ण है, जिसमें भक्त अपने सभी कर्मों और उनके फलों को ईश्वर को

समर्पित कर देता है और पूरी तरह से उनकी इच्छा पर निर्भर हो जाता है। यह शरणागति ही प्रेममार्ग का सार है, जिसमें भक्त अपने अहंकार का त्याग करके ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण कर देता है। प्रेममार्ग के प्रमुख संतों में चैतन्य महाप्रभु, जयदेव, विद्यापति, नरसी मेहता, मीराबाई, सूरदास, तुलसीदास आदि शामिल हैं। इन संतों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रेममार्ग के सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार किया और आम जनता को प्रेम और भक्ति का मार्ग दिखाया। चैतन्य महाप्रभु के नाम-संकीर्तन आंदोलन ने बंगाल में भक्ति आंदोलन को नई दिशा दी, जिसमें हरिनाम संकीर्तन के माध्यम से भक्त अपनी भक्ति व्यक्त करते थे। इसी प्रकार, मीराबाई ने अपने पदों के माध्यम से कृष्ण के प्रति अपने अनन्य प्रेम को व्यक्त किया और समाज की परंपराओं को चुनौती दी। सूफीवाद इस्लाम की एक रहस्यवादी धारा है, जिसमें ईश्वर के प्रति प्रेम और समर्पण पर जोर दिया जाता है। सूफी संतों ने ईश्वर को प्रेमी और स्वयं को प्रेमिका के रूप में देखा, जिसका अंतिम लक्ष्य अपने प्रेमी (ईश्वर) से मिलन है। इस प्रकार, सूफीवाद में प्रेम और भक्ति का मार्ग प्रमुख है, जो भारतीय भक्ति परंपरा से मिलता-जुलता है। सूफीवाद का उदय 8वीं-9वीं शताब्दी में मध्य पूर्व में हुआ था, लेकिन यह 11वीं शताब्दी से भारत में प्रवेश करना शुरू हुआ। चिश्ती, सुहरावर्दी, कादिरी और नक्शबंदी जैसे विभिन्न सूफी सिलसिले (संप्रदाय) भारत में स्थापित हुए, जिन्होंने यहां की संस्कृति और विचारधारा को गहराई से प्रभावित किया।

सूफीवाद का मूल सिद्धांत है वहदत-अल-वजूद (अस्तित्व की एकता), जिसके अनुसार सभी अस्तित्व एक है और वह एक ही अल्लाह है। यह सिद्धांत अद्वैत वेदांत के ब्रह्म के विचार से मिलता-जुलता है। सूफी संतों का मानना था कि ईश्वर हर चीज में व्याप्त है और उसे केवल प्रेम और भक्ति के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है। सूफी साधना में जिक्र (अल्लाह के नाम का जाप), समा (संगीत और नृत्य के माध्यम से आध्यात्मिक आनंद की अनुभूति), मुराकबा (ध्यान) और फना (आत्मविलय) जैसी विधियों का विशेष महत्व है। इन साधनाओं के माध्यम से सूफी साधक अपने अंदर के अहंकार को मिटाकर अल्लाह में लीन होने का प्रयास करता है। भारत में सूफीवाद का प्रभाव मुख्य रूप से चिश्ती सिलसिले के माध्यम से हुआ, जिसके प्रमुख संत ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती, ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी, बाबा फरीद, निज़ामुद्दीन औलिया और अमीर खुसरो थे। इन सूफी संतों ने समाज में प्रेम, शांति और सद्भाव का संदेश फैलाया और धार्मिक कट्टरता का विरोध किया। वे मानते थे कि ईश्वर प्राप्ति के लिए किसी विशेष धर्म या जाति का होना जरूरी नहीं है, बल्कि हृदय की पवित्रता और प्रेम ही महत्वपूर्ण है। इस कारण, चिश्ती सूफी संतों के खानकाह (आश्रम) में हिंदू और मुस्लिम दोनों धर्मों के लोग आते थे और उनकी शिक्षाओं से लाभ उठाते थे।

सूफी संतों ने संगीत और काव्य के माध्यम से अपनी शिक्षाएँ प्रदान कीं, जिससे वे आम जनता से आसानी से जुड़ सके। अमीर खुसरो, जो निज़ामुद्दीन औलिया के शिष्य थे, ने हिंदवी (हिंदी-उर्दू का मिश्रण) में कविताएँ और गीत लिखे, जिन्होंने भारतीय संगीत और साहित्य को नई दिशा दी। उन्होंने क़व्वाली, ख़याल और तराना जैसी संगीत शैलियों का विकास किया, जो आज भी भारतीय संगीत का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। इसी प्रकार, बुल्ले शाह, शाह हुसैन, सुल्तान बाहू जैसे पंजाबी सूफी कवियों ने अपनी काफियों और गीतों के माध्यम से प्रेम और मानवता का संदेश दिया। इन सूफी कवियों की रचनाओं में प्रेम की पीड़ा, विरह की व्यथा और मिलन की उत्कट आकांक्षा का भावपूर्ण चित्रण मिलता है।

सूफीवाद ने भारतीय समाज पर गहरा प्रभाव डाला और यहां की सांस्कृतिक और धार्मिक परंपराओं को समृद्ध किया। सूफी संतों की दरगाहें आज भी हिंदू और मुस्लिम दोनों धर्मों के लोगों के लिए श्रद्धा के केंद्र हैं, जहां वे अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए जाते हैं। सूफीवाद की समन्वयवादी और उदार दृष्टि ने भारत में हिंदू-मुस्लिम एकता को बढ़ावा दिया और दोनों संस्कृतियों के बीच सेतु का काम किया। इसके अलावा, सूफी संतों की शिक्षाओं ने जाति-पाति और धार्मिक भेदभाव से ऊपर उठकर मानवता और प्रेम के महत्व पर जोर दिया, जो आज के समय में भी प्रासंगिक है। सूफी संतों के द्वारा प्रचारित समन्वय की भावना गंगा-जमुनी तहजीब का आधार बनी, जिसमें हिंदू और इस्लामिक संस्कृतियों का अद्भुत मिश्रण देखने को मिलता है। सूफीवाद की एक प्रमुख विशेषता इश्क़-ए-हक़ीक़ी (ईश्वर के प्रति सच्चा प्रेम) और इश्क़-ए-मजाज़ी (मानवीय प्रेम) की अवधारणा है। सूफी संतों का मानना था कि मानवीय प्रेम ईश्वरीय प्रेम का एक पूर्वाभ्यास है और इसके माध्यम से साधक ईश्वरीय प्रेम की ओर बढ़ सकता है। इसी कारण, सूफी काव्य में प्रेम के रूपक का व्यापक उपयोग किया गया है, जहां साधक को प्रेमिका (आशिक़) और ईश्वर को प्रेमी (माशूक़) के रूप में चित्रित किया गया है। यह अवधारणा भारतीय भक्ति परंपरा की राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला से समानता रखती है, जहां राधा (भक्त) कृष्ण (ईश्वर) के प्रति अनन्य प्रेम व्यक्त करती हैं। सूफी साधना में मुर्शिद (गुरु) का विशेष महत्व है, जो साधक (मुरीद) को आध्यात्मिक मार्ग पर आगे बढ़ने में मदद करता है। मुर्शिद और मुरीद के बीच का संबंध अत्यंत पवित्र और गहरा माना जाता है, जहां मुरीद अपने मुर्शिद के प्रति पूर्ण समर्पण और विश्वास रखता है। मुर्शिद अपने अनुभव और ज्ञान के आधार पर मुरीद को सूफी मार्ग के विभिन्न चरणों - शरीयत (धार्मिक कानून), तरीक़त (आध्यात्मिक मार्ग), हक़ीक़त (सत्य) और मारिफ़त (ईश्वरीय ज्ञान) - से होकर गुजरने में मदद करता है। ये चार चरण सूफी साधना के

क्रमिक विकास को दर्शाते हैं, जिनके माध्यम से साधक अपने अहंकार को मिटाकर अल्लाह में लीन हो जाता है।

सूफी संतों ने अपनी शिक्षाओं में प्रेम, सेवा, त्याग और आत्म-अनुशासन पर जोर दिया। उनका मानना था कि प्रेम ही वह शक्ति है जो मनुष्य को ईश्वर से जोड़ सकती है और उसे आध्यात्मिक उन्नति प्रदान कर सकती है। इसी कारण, सूफी कवियों की रचनाओं में प्रेम की महिमा का गुणगान मिलता है। बुल्ले शाह की प्रसिद्ध पंक्तियां - "पढ़ पढ़ इलम हज़ारां, किताबां कमाल कमायां, पर काजी होके किसे दा, नी तू पड़या इश्क नबी दा" (हज़ारों किताबें पढ़कर और ज्ञान हासिल करके भी, तुमने क़ाज़ी बनकर किसी का भला नहीं किया, क्योंकि तुमने पैगंबर के प्रेम को नहीं समझा) - इसी भाव को व्यक्त करती हैं। भक्ति आंदोलन और सूफीवाद के बीच कई समानताएँ हैं, जो इन दोनों आध्यात्मिक धाराओं के परस्पर प्रभाव को दर्शाती हैं। दोनों ही धाराओं में ईश्वर के प्रति प्रेम और समर्पण पर जोर दिया गया है और दोनों ने ही धार्मिक अनुष्ठानों की तुलना में हृदय की पवित्रता और प्रेम को अधिक महत्व दिया है। दोनों ही धाराओं ने जाति-पाति और धार्मिक भेदभाव का विरोध किया और मानवता की एकता का संदेश दिया। इसके अलावा, दोनों ही धाराओं ने संगीत और काव्य के माध्यम से अपनी शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार किया, जिससे वे आम जनता से आसानी से जुड़ सके।

भक्ति आंदोलन और सूफीवाद के इस समन्वय का एक उत्कृष्ट उदाहरण कबीर हैं, जिन्होंने दोनों धाराओं के तत्वों को अपनी शिक्षाओं में समाहित किया। कबीर जुलाहे परिवार में पले-बढ़े, जो मुस्लिम था, लेकिन उनके गुरु रामानंद हिंदू थे। कबीर ने दोनों धर्मों की अच्छाइयों को स्वीकार किया और दोनों की बुराइयों की आलोचना की। उन्होंने निर्गुण ब्रह्म की आराधना का समर्थन किया और बाह्याचारों का विरोध किया। उनका प्रसिद्ध दोहा - "मोको कहाँ ढूँढ़े बंदे, मैं तो तेरे पास में; ना मैं देवल ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलास में" - इसी समन्वयवादी दृष्टिकोण को दर्शाता है। ज्ञान मार्ग, प्रेममार्ग और सूफीवाद के अंतर्संबंध को समझने के लिए, हमें यह समझना होगा कि ये तीनों ही मार्ग मूलतः एक ही लक्ष्य - ईश्वर प्राप्ति या मोक्ष - की ओर ले जाते हैं, लेकिन इनके द्वारा अपनाए गए तरीके अलग-अलग हैं। ज्ञान मार्ग बौद्धिक विचार और आत्म-चिंतन पर जोर देता है, जहां साधक ज्ञान के माध्यम से अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानने का प्रयास करता है। प्रेममार्ग या भक्ति मार्ग भावनात्मक प्रेम और समर्पण पर जोर देता है, जहां भक्त अपने आराध्य के प्रति अनन्य प्रेम और भक्ति व्यक्त करता है। सूफीवाद इन दोनों मार्गों के बीच का एक सेतु है, जिसमें प्रेम और ज्ञान दोनों का समावेश है। सूफी साधना में जहां एक ओर ईश्वर के प्रति प्रेम और समर्पण

का महत्व है, वहीं दूसरी ओर आत्म-चिंतन और आत्म-अनुशासन का भी महत्व है। भक्ति आंदोलन, ज्ञान मार्ग, प्रेममार्ग और सूफीवाद ने भारतीय समाज और संस्कृति को विभिन्न तरीकों से प्रभावित किया है। इन आध्यात्मिक धाराओं ने न केवल धार्मिक विचारधारा को बल्कि साहित्य, संगीत, कला और समाज के ढांचे को भी प्रभावित किया है। इन धाराओं के प्रभाव से हिंदी, उर्दू, पंजाबी, बांग्ला, मराठी, तमिल जैसी क्षेत्रीय भाषाओं में समृद्ध साहित्य का निर्माण हुआ, जिसमें भक्ति और सूफी कवियों की रचनाएँ शामिल हैं। इसी प्रकार, भारतीय शास्त्रीय संगीत, लोक संगीत और सूफी संगीत ने भी इन आध्यात्मिक धाराओं से प्रेरणा ली है।

समाजिक स्तर पर, इन आध्यात्मिक धाराओं ने जाति-पाति, धर्म और लिंग के आधार पर होने वाले भेदभाव के खिलाफ आवाज उठाई और एक अधिक समतावादी और न्यायपूर्ण समाज की कल्पना की। उदाहरण के लिए, भक्ति आंदोलन के संतों ने निम्न जाति के लोगों और महिलाओं को भी आध्यात्मिक अभिव्यक्ति का अवसर प्रदान किया, जो उस समय के सामाजिक मानदंडों के अनुसार अभूतपूर्व था। इसी प्रकार, सूफी संतों ने भी हिंदू-मुस्लिम एकता और सामाजिक समरसता का संदेश दिया।

आज के समय में भी, भक्ति आंदोलन, ज्ञान मार्ग, प्रेममार्ग और सूफीवाद की शिक्षाएँ प्रासंगिक हैं। ये धाराएँ हमें सांप्रदायिकता, अंधविश्वास और कट्टरता से ऊपर उठकर प्रेम, सेवा और मानवता के मूल्यों को अपनाने की प्रेरणा देती हैं। इन धाराओं की समन्वयवादी और उदार दृष्टि आज के विभाजित और तनावपूर्ण समय में एक मार्गदर्शक प्रकाश की तरह है, जो हमें सदभाव और एकता के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती है। भक्ति आंदोलन के संदर्भ में तुलसीदास का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिन्होंने अपनी अमर कृति 'रामचरितमानस' के माध्यम से राम भक्ति का प्रचार-प्रसार किया। तुलसीदास की विशेषता यह थी कि उन्होंने अपनी रचना में ज्ञान, भक्ति और कर्म तीनों मार्गों का समन्वय किया। उन्होंने राम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित किया, जो न केवल भक्ति के आदर्श हैं बल्कि समाज में आदर्श आचरण के प्रतीक भी हैं। तुलसीदास की भक्ति में प्रेम और समर्पण के साथ-साथ आदर और श्रद्धा का भाव भी है, जो उनकी भक्ति को विशिष्ट बनाता है। उनकी पंक्तियां - "बिनु सतसंग विवेक न होई, राम कृपा बिनु सुलभ न सोई" (बिना सत्संग के विवेक नहीं होता और बिना राम की कृपा के सत्संग सुलभ नहीं होता) - ज्ञान और भक्ति के अटूट संबंध को दर्शाती हैं। वहीं, सूरदास कृष्ण भक्ति के प्रमुख कवि थे, जिन्होंने अपने पदों में कृष्ण के बाल रूप, किशोर रूप और राधा-कृष्ण के प्रेम का मनोहारी वर्णन किया है। सूरदास की भक्ति में वात्सल्य भाव और माधुर्य भाव का अद्भुत मिश्रण देखने को मिलता है। उनकी रचना 'सूरसागर' में कृष्ण

के विभिन्न रूपों और लीलाओं का वर्णन है, जो भक्त के हृदय में ईश्वर के प्रति प्रेम और भक्ति जगाता है। सूरदास की भक्ति में भावनात्मक गहराई और काव्यात्मक सौंदर्य का अद्भुत संगम है, जो उनकी कविताओं को अद्वितीय बनाता है। मीराबाई की भक्ति एक अलग स्तर की थी, जिसमें कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम और समर्पण की झलक मिलती है। मीराबाई ने कृष्ण को अपना पति मानकर उनकी आराधना की और उनके लिए अपना सर्वस्व त्याग दिया। उनके पदों में कृष्ण के प्रति प्रेम की तीव्रता और विरह की व्यथा का मार्मिक चित्रण मिलता है। मीराबाई की पंक्तियां - "पग घुंघरू बांध मीरा नाची रे, मैं तो मेरे नारायण की जाची रे" - उनके कृष्ण के प्रति समर्पण और प्रेम को दर्शाती हैं।

रैदास भक्ति आंदोलन के एक ऐसे संत थे, जिन्होंने जाति व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाई और समाज में व्याप्त असमानताओं की आलोचना की। चमार जाति से होने के बावजूद, रैदास ने अपनी आध्यात्मिक क्षमता के बल पर समाज में सम्मान प्राप्त किया और अपनी भक्ति के माध्यम से लोगों को प्रेरित किया। उनकी शिक्षाओं में ज्ञान और भक्ति का समन्वय था, जिसमें उन्होंने ईश्वर के प्रति प्रेम और समर्पण के साथ-साथ सामाजिक न्याय और समानता पर भी जोर दिया। उनकी पंक्तियां - "ऐसा चाहूँ राज मैं, जहां मिले सबन को अन्न, छोट बड़ो सब सम बसे, रैदास रहे प्रसन्न" - उनके समतावादी विचारों को दर्शाती हैं। चैतन्य महाप्रभु ने बंगाल में कृष्ण भक्ति का प्रचार-प्रसार किया और अपने नाम-संकीर्तन आंदोलन के माध्यम से समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन लाए। उन्होंने कृष्ण के प्रति प्रेम को भक्ति का सर्वोच्च रूप माना और इसे प्रेम-भक्ति या राधा भाव के नाम से प्रचारित किया। चैतन्य महाप्रभु की विशेषता यह थी कि उन्होंने अपने जीवन में कृष्ण भक्ति का आदर्श प्रस्तुत किया और स्वयं को राधा भाव में लीन कर लिया। उनके नाम-संकीर्तन आंदोलन ने जाति-पाति के भेदभाव को तोड़ा और समाज के हर वर्ग के लोगों को एक मंच पर लाकर कृष्ण भक्ति में एकाकार किया। संतों की इन शिक्षाओं से स्पष्ट होता है कि भक्ति आंदोलन का मुख्य उद्देश्य जाति, वर्ग और धर्म के आधार पर विभाजित समाज में एकता और समानता का संदेश देना था। इस आंदोलन ने धर्म को सरल और सुलभ बनाया, जिससे आम जनता ईश्वर से सीधे जुड़ सके, बिना किसी मध्यस्थ के। इसके अलावा, भक्ति आंदोलन ने साहित्य, संगीत और कला के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया, जिससे भारतीय संस्कृति समृद्ध हुई। ज्ञान मार्ग, प्रेममार्ग और सूफीवाद के संदर्भ में यह समझना महत्वपूर्ण है कि ये तीनों ही मार्ग अंततः एक ही लक्ष्य - ईश्वर प्राप्ति या मोक्ष - की ओर ले जाते हैं। ज्ञान मार्ग में आत्म-ज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान के माध्यम से मुक्ति प्राप्त करने पर जोर दिया जाता है, जबकि प्रेममार्ग में ईश्वर के प्रति प्रेम और समर्पण के माध्यम से उन्हें प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। सूफीवाद इन दोनों

मार्गों का एक संश्लेषण प्रस्तुत करता है, जिसमें प्रेम और ज्ञान दोनों का महत्व है। ये तीनों ही मार्ग विभिन्न प्रकार के साधकों के लिए उपयुक्त हैं, जो अपनी प्रकृति और क्षमताओं के अनुसार इनमें से किसी एक मार्ग को चुन सकते हैं।

ज्ञान मार्ग के प्रमुख आचार्य शंकराचार्य ने अद्वैत वेदांत के सिद्धांत का प्रतिपादन किया, जिसके अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है और यह जगत माया है। शंकराचार्य ने "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः" (ब्रह्म सत्य है, जगत मिथ्या है, जीव ब्रह्म से अलग नहीं है) का उपदेश दिया, जो अद्वैत वेदांत का मूल सिद्धांत है। उन्होंने ज्ञान को मोक्ष प्राप्ति का एकमात्र साधन माना और माया के बंधन से मुक्त होने के लिए आत्म-ज्ञान पर जोर दिया। इसके विपरीत, रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत वेदांत का प्रतिपादन किया, जिसमें ईश्वर और जीव के बीच एक विशेष संबंध की परिकल्पना की गई है। उनके अनुसार, जीव ईश्वर से अलग है, लेकिन अंततः उसी का अंश है। रामानुजाचार्य ने ज्ञान के साथ-साथ भक्ति को भी मोक्ष प्राप्ति का महत्वपूर्ण साधन माना और ईश्वर की कृपा पर जोर दिया। उनकी शिक्षाओं ने बाद में वैष्णव भक्ति आंदोलन को प्रेरित किया, जिसमें ईश्वर के प्रति प्रेम और समर्पण का महत्व है। मध्वाचार्य ने द्वैत वेदांत का प्रतिपादन किया, जिसके अनुसार ईश्वर और जीव पूर्णतया अलग हैं। उनके अनुसार, ईश्वर सर्वशक्तिमान और स्वतंत्र है, जबकि जीव ईश्वर के अधीन और परतंत्र है। मध्वाचार्य ने भक्ति को मोक्ष प्राप्ति का प्रमुख साधन माना और ईश्वर की कृपा को महत्व दिया। उनकी शिक्षाओं ने भी वैष्णव भक्ति आंदोलन को प्रभावित किया और ईश्वर के प्रति अनन्य भक्ति के महत्व पर जोर दिया। भारतीय दर्शन के इन विभिन्न विचारधाराओं ने भक्ति आंदोलन, ज्ञान मार्ग, प्रेममार्ग और सूफीवाद के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ये विचारधाराएँ एक दूसरे से अलग होते हुए भी एक दूसरे को प्रभावित करती रही हैं और भारतीय आध्यात्मिक परंपरा को समृद्ध करती रही हैं। इन विचारधाराओं का समन्वय ही भारतीय दर्शन की विशेषता है, जिसमें विविधता में एकता का दर्शन होता है। भारतीय संस्कृति में भक्ति आंदोलन, ज्ञान मार्ग, प्रेममार्ग और सूफीवाद का योगदान अद्वितीय है। इन आध्यात्मिक धाराओं ने न केवल धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और कलात्मक क्षेत्रों में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन लाए हैं। इन धाराओं के प्रभाव से भारतीय समाज में एक नई चेतना का उदय हुआ, जिसमें प्रेम, समानता, सेवा और मानवता के मूल्यों को महत्व दिया गया।

इकाई 15: तुलसीदास, कबीर, मीराबाई का दर्शन और भक्ति

भारतीय साहित्य और दर्शन के इतिहास में भक्ति आंदोलन एक महत्वपूर्ण मोड़ था, जिसने न केवल साहित्य बल्कि समाज और धर्म के स्वरूप को भी परिवर्तित किया। इस आंदोलन के तीन प्रमुख स्तंभों में तुलसीदास, कबीर और मीराबाई का नाम अग्रणी है। इन तीनों संतों ने अपने विशिष्ट दर्शन और भक्ति के माध्यम से न केवल तत्कालीन समाज को प्रभावित किया, बल्कि आज भी उनके विचार और भक्ति-भावना समकालीन समाज के लिए प्रासंगिक बनी हुई है। इस अध्याय में हम इन तीनों संतों के दार्शनिक विचारों और भक्ति के स्वरूप का विस्तृत विश्लेषण करेंगे।

तुलसीदास: राम भक्ति के महाकवि

गोस्वामी तुलसीदास हिंदी साहित्य के सबसे प्रभावशाली कवियों में से एक हैं। उनका जन्म 1532 ई. में राजापुर (वर्तमान उत्तर प्रदेश) में हुआ था। तुलसीदास का जीवन स्वयं में एक आदर्श था, जिसने उनके साहित्य और दर्शन को गहराई से प्रभावित किया। तुलसीदास की महान रचना 'रामचरितमानस' न केवल एक काव्य है, बल्कि यह भारतीय संस्कृति, धर्म और दर्शन का एक महत्वपूर्ण स्रोत भी है। यह रचना वाल्मीकि रामायण पर आधारित है, परंतु तुलसीदास ने इसे अपने दार्शनिक और भक्ति संबंधी विचारों से समृद्ध किया है।

तुलसीदास का दार्शनिक दृष्टिकोण

तुलसीदास का दर्शन मूलतः वैष्णव दर्शन पर आधारित है, जिसमें राम को सर्वोच्च ब्रह्म के रूप में स्वीकार किया गया है। तुलसीदास का मानना था कि परमात्मा सगुण और निर्गुण दोनों रूपों में विद्यमान है, परंतु वे सगुण ब्रह्म की उपासना को अधिक महत्व देते थे। उनके अनुसार, निर्गुण ब्रह्म की उपासना अत्यंत कठिन है और साधारण मनुष्य के लिए सगुण ब्रह्म की उपासना ही सरल और सहज मार्ग है।

तुलसीदास के दर्शन में मानव जीवन का लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति है, और मोक्ष प्राप्ति का सबसे सरल मार्ग भक्ति है। उन्होंने अपनी रचनाओं में भक्ति के विभिन्न रूपों का वर्णन किया है, जिनमें नवधा भक्ति (श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन) प्रमुख है। तुलसीदास के अनुसार, भक्ति मार्ग सभी वर्णों और जातियों के लिए खुला है, और इसे प्राप्त करने के लिए जन्म या कुल का महत्व नहीं है। तुलसीदास के दर्शन में कर्म का भी विशेष स्थान है। उन्होंने कर्म को मोक्ष प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण साधन माना है। उनके अनुसार, मनुष्य को अपने कर्तव्यों का पालन ईश्वर की प्रसन्नता के लिए करना चाहिए, न

कि फल की आशा से। यह विचार भगवद्गीता के निष्काम कर्म के सिद्धांत से प्रभावित है। तुलसीदास के दर्शन में सामाजिक व्यवस्था का भी महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने वर्णाश्रम धर्म का समर्थन किया है, परंतु उनका मानना था कि सभी वर्णों के लोग भक्ति के माध्यम से मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। उन्होंने जाति-पाँति के भेदभाव का विरोध किया और समाज में समानता और भाईचारे का संदेश दिया।

तुलसीदास की भक्ति का स्वरूप

तुलसीदास की भक्ति का स्वरूप अत्यंत विशिष्ट है। उनकी भक्ति में समर्पण, प्रेम और विश्वास का समन्वय दिखाई देता है। उन्होंने राम को अपना आराध्य देव माना और उनकी भक्ति में पूर्ण समर्पण का भाव है। तुलसीदास की भक्ति में दास्य भाव की प्रधानता है, जिसमें भक्त स्वयं को भगवान का दास मानता है और उनकी सेवा में अपना जीवन समर्पित कर देता है। तुलसीदास की भक्ति में प्रेम का तत्व भी महत्वपूर्ण है। उन्होंने राम के प्रति अपने प्रेम को विभिन्न रूपों में व्यक्त किया है। उनकी भक्ति में माधुर्य भाव की अपेक्षा दास्य और वात्सल्य भाव अधिक प्रमुख है। उन्होंने राम को पिता, माता, भाई, स्वामी आदि विभिन्न रूपों में देखा है और उनके प्रति अपने प्रेम को व्यक्त किया है। तुलसीदास की भक्ति में विश्वास का तत्व भी महत्वपूर्ण है। उन्होंने राम के प्रति अटूट विश्वास प्रकट किया है और उन्हें सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी माना है। उनका मानना था कि राम की भक्ति से ही मनुष्य के सभी दुःख और कष्ट दूर हो सकते हैं और वह मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

'रामचरितमानस' में तुलसीदास का दर्शन

'रामचरितमानस' तुलसीदास की सबसे महत्वपूर्ण रचना है, जिसमें उनके दार्शनिक विचारों का व्यापक प्रतिबिंब मिलता है। इस महाकाव्य में तुलसीदास ने राम के जीवन के माध्यम से अपने दार्शनिक और भक्ति संबंधी विचारों को प्रस्तुत किया है। 'रामचरितमानस' में तुलसीदास ने राम को सर्वोच्च ब्रह्म के रूप में प्रस्तुत किया है, जो मानव रूप में अवतरित हुए हैं। उन्होंने राम के चरित्र के माध्यम से आदर्श मानव जीवन का मार्ग दिखाया है। राम के चरित्र में धर्म, कर्तव्य, प्रेम, त्याग, समर्पण आदि गुणों का समावेश है, जो एक आदर्श मानव के लिए आवश्यक हैं। 'रामचरितमानस' में तुलसीदास ने भक्ति के विभिन्न रूपों का वर्णन किया है और भक्ति को मोक्ष प्राप्ति का सबसे सरल मार्ग बताया है। उन्होंने इस रचना में जाति-पाँति, ऊँच-नीच के भेदभाव का विरोध किया है और सभी के लिए भक्ति का मार्ग खुला रखा है। तुलसीदास के

अनुसार, राम की भक्ति से मनुष्य के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। उन्होंने 'रामचरितमानस' में लिखा है:

"राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।

तुलसी भीतर बाहेरहुँ, जौं चाहसि उजियार॥"

अर्थात, यदि तुम अपने मन और शरीर दोनों को प्रकाशित करना चाहते हो, तो अपनी जिह्वा रूपी द्वार पर राम नाम रूपी मणि का दीपक रखो।

तुलसीदास के अन्य ग्रंथों में दर्शन और भक्ति

'रामचरितमानस' के अलावा, तुलसीदास ने अन्य कई ग्रंथों की रचना की है, जिनमें 'विनय पत्रिका', 'दोहावली', 'कवितावली', 'गीतावली', 'बरवै रामायण', 'पार्वती मंगल', 'जानकी मंगल' आदि प्रमुख हैं। इन सभी ग्रंथों में तुलसीदास के दार्शनिक विचारों और भक्ति के स्वरूप का प्रतिबिंब मिलता है। 'विनय पत्रिका' में तुलसीदास ने अपने हृदय की वेदना और राम के प्रति अपनी अनन्य भक्ति को व्यक्त किया है। इस ग्रंथ में उन्होंने राम से अपने पापों की क्षमा याचना की है और उनकी कृपा की प्रार्थना की है। इस ग्रंथ में तुलसीदास की भक्ति का दास्य भाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। 'दोहावली' और 'कवितावली' में तुलसीदास ने अपने दार्शनिक विचारों और नैतिक मूल्यों को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया है। इन ग्रंथों में उन्होंने भक्ति के महत्व, कर्म के सिद्धांत, संसार की नश्वरता, मोक्ष प्राप्ति के मार्ग आदि विषयों पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। 'गीतावली' में तुलसीदास ने राम के जीवन की विभिन्न घटनाओं का गीतात्मक वर्णन किया है और उनके प्रति अपनी भक्ति को व्यक्त किया है। इस ग्रंथ में तुलसीदास की भक्ति का माधुर्य भाव अधिक प्रमुख है।

तुलसीदास के दर्शन और भक्ति का समकालीन महत्व

तुलसीदास के दार्शनिक विचार और भक्ति का स्वरूप आज भी प्रासंगिक है। उनके विचारों में सामाजिक समरसता, धार्मिक सहिष्णुता, नैतिक मूल्यों का महत्व, कर्तव्य पालन का महत्व आदि ऐसे तत्व हैं, जो आज के समाज के लिए भी महत्वपूर्ण हैं। तुलसीदास का भक्ति मार्ग सरल और सहज है, जिसे कोई भी अपना सकता है। उन्होंने जाति-पाँति, ऊँच-नीच के भेदभाव का विरोध किया है और सभी के लिए भक्ति का मार्ग

खुला रखा है। यह विचार आज के समाज में समानता और भाईचारे के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण है। तुलसीदास के कर्म सिद्धांत में निष्काम कर्म का महत्व है, जिसके अनुसार मनुष्य को फल की आशा के बिना अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। यह विचार आज के स्वार्थपरक समाज में अत्यंत प्रासंगिक है। तुलसीदास की भक्ति में प्रेम, समर्पण और विश्वास का समन्वय है, जो मानव जीवन को सार्थक बनाने में सहायक हो सकता है। उनकी भक्ति में आडंबर और दिखावे के लिए कोई स्थान नहीं है, बल्कि यह हृदय से निकलने वाली सच्ची भावना है।

कबीर: निर्गुण भक्ति के प्रवर्तक

संत कबीर भारतीय भक्ति आंदोलन के प्रमुख स्तंभों में से एक हैं। उनका जन्म 15वीं शताब्दी में काशी (वर्तमान वाराणसी) में हुआ था। कबीर एक निर्गुण भक्त कवि थे, जिन्होंने जाति-पाँति, ऊँच-नीच, हिंदू-मुस्लिम आदि भेदभावों का खुलकर विरोध किया और सभी मनुष्यों को एक समान माना। उन्होंने अपनी वाणी के माध्यम से समाज में व्याप्त बुराइयों पर प्रहार किया और सत्य, प्रेम और भक्ति का संदेश दिया।

कबीर का दार्शनिक दृष्टिकोण

कबीर का दर्शन अद्वैतवाद पर आधारित है, जिसमें ब्रह्म और आत्मा की एकता का सिद्धांत प्रमुख है। उनके अनुसार, परमात्मा निर्गुण और निराकार है, जिसे किसी भी रूप में बाँधा नहीं जा सकता। कबीर ने मूर्ति पूजा, अंधविश्वास, कर्मकांड आदि का विरोध किया और सच्ची भक्ति पर बल दिया। कबीर के दर्शन में ज्ञान का विशेष महत्व है। उनके अनुसार, सच्चा ज्ञान वही है जो मनुष्य को अपने अंतर में परमात्मा के दर्शन कराए। उन्होंने बाह्य ज्ञान की अपेक्षा आंतरिक ज्ञान को अधिक महत्व दिया और कहा कि सच्चा ज्ञान गुरु के माध्यम से ही प्राप्त होता है। कबीर के दर्शन में गुरु का विशेष स्थान है। उन्होंने गुरु को ईश्वर से भी बड़ा माना है, क्योंकि गुरु ही मनुष्य को ईश्वर का ज्ञान कराता है। उन्होंने अपने दोहों में गुरु की महिमा का बखान किया है:

"गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूं पाय। बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो बताय॥"

अर्थात, जब गुरु और गोविंद (ईश्वर) दोनों सामने खड़े हों, तो मैं किसके चरणों में प्रणाम करूँ? मैं अपने गुरु पर बलिहारी जाता हूँ, जिसने मुझे गोविंद का ज्ञान कराया।

कबीर के दर्शन में मानव जीवन के लक्ष्य को परमात्मा की प्राप्ति माना गया है। उनके अनुसार, मनुष्य का जन्म दुर्लभ है और इसका सदुपयोग परमात्मा की भक्ति में करना चाहिए। उन्होंने संसार की नश्वरता का वर्णन किया है और मनुष्य को इससे सावधान रहने का संदेश दिया है।

कबीर के दर्शन में सामाजिक समानता का भी महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने जाति-पाँति, ऊँच-नीच के भेदभाव का विरोध किया और सभी मनुष्यों को एक समान माना। उन्होंने हिंदू-मुस्लिम एकता पर बल दिया और कहा कि सभी धर्मों का लक्ष्य एक ही है - परमात्मा की प्राप्ति।

कबीर की भक्ति का स्वरूप

कबीर की भक्ति का स्वरूप निर्गुण भक्ति है, जिसमें परमात्मा को निर्गुण और निराकार माना जाता है। उन्होंने मूर्ति पूजा, अंधविश्वास, कर्मकांड आदि का विरोध किया और सच्ची भक्ति पर बल दिया। उनके अनुसार, सच्ची भक्ति वही है जो हृदय से निकलती है, न कि बाह्य आडंबरों से। कबीर की भक्ति में प्रेम का तत्व अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने परमात्मा के प्रति प्रेम को सच्ची भक्ति का आधार माना है। उनके अनुसार, प्रेम के बिना भक्ति अधूरी है और प्रेम ही मनुष्य को परमात्मा से जोड़ता है। उन्होंने अपने दोहों में प्रेम की महिमा का बखान किया है:

"पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय। ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय॥"

अर्थात, संसार के लोग पुस्तकें पढ़-पढ़कर मर गए, परंतु कोई भी विद्वान नहीं बन पाया। प्रेम के ढाई अक्षर (प्रे + म = ढाई अक्षर) जो पढ़ता है, वही सच्चा विद्वान है।

कबीर की भक्ति में समर्पण का भाव भी महत्वपूर्ण है। उन्होंने परमात्मा के प्रति पूर्ण समर्पण का भाव व्यक्त किया है और कहा है कि भक्त को अपना सब कुछ परमात्मा को समर्पित कर देना चाहिए। उनके अनुसार, परमात्मा की प्राप्ति तभी होती है जब मनुष्य अपने अहंकार का त्याग कर देता है और स्वयं को परमात्मा के प्रति समर्पित कर देता है।

कबीर की भक्ति में साधना का महत्व भी अत्यधिक है। उन्होंने परमात्मा की प्राप्ति के लिए निरंतर साधना पर बल दिया है। उनके अनुसार, परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग कठिन है और इसके लिए दृढ़ संकल्प, धैर्य और सतत प्रयास की आवश्यकता होती है।

कबीर के साहित्य में दर्शन और भक्ति

कबीर की रचनाएँ उनके दार्शनिक विचारों और भक्ति के स्वरूप का प्रतिबिंब हैं। 'बीजक', 'साखी', 'सबद', 'रमैनी' आदि उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं, जिनमें उनके विचारों का व्यापक प्रतिबिंब मिलता है। 'बीजक' कबीर की सबसे महत्वपूर्ण रचना है, जिसमें उनके दार्शनिक विचारों और भक्ति संबंधी विचारों का समावेश है। इस ग्रंथ में कबीर ने समाज में व्याप्त बुराइयों पर प्रहार किया है और सत्य, प्रेम और भक्ति का संदेश दिया है। 'साखी' कबीर के दोहों का संग्रह है, जिसमें उनके दार्शनिक विचारों का संक्षिप्त रूप मिलता है। इन दोहों में कबीर ने जीवन के विभिन्न पहलुओं पर अपने विचार व्यक्त किए हैं और मनुष्य को सही मार्ग दिखाया है। 'सबद' और 'रमैनी' में कबीर ने अपने भक्ति संबंधी विचारों को अधिक विस्तार से प्रस्तुत किया है। इन रचनाओं में उन्होंने परमात्मा के प्रति अपने प्रेम और समर्पण को व्यक्त किया है और सच्ची भक्ति का मार्ग दिखाया है। कबीर की भाषा सीधी और स्पष्ट है, जिसमें उन्होंने अपने विचारों को बिना किसी लाग-लपेट के प्रस्तुत किया है। उनकी भाषा में हिंदी, उर्दू, फारसी, अरबी आदि भाषाओं के शब्दों का समावेश है, जो उनके व्यापक ज्ञान और समन्वयवादी दृष्टिकोण का परिचायक है।

कबीर के दर्शन और भक्ति का समकालीन महत्व

कबीर के दार्शनिक विचार और भक्ति का स्वरूप आज भी प्रासंगिक है। उनके विचारों में सामाजिक समानता, धार्मिक सहिष्णुता, मानवीय मूल्यों का महत्व आदि ऐसे तत्व हैं, जो आज के समाज के लिए भी महत्वपूर्ण हैं। कबीर ने जाति-पाँति, ऊँच-नीच के भेदभाव का विरोध किया है और सभी मनुष्यों को एक समान माना है। यह विचार आज के समाज में जाति-धर्म के नाम पर होने वाले भेदभाव और हिंसा के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण है। कबीर ने हिंदू-मुस्लिम एकता पर बल दिया है और कहा है कि सभी धर्मों का लक्ष्य एक ही है - परमात्मा की प्राप्ति। यह विचार आज के धार्मिक कट्टरता और असहिष्णुता के युग में अत्यंत प्रासंगिक है।

कबीर ने मूर्ति पूजा, अंधविश्वास, कर्मकांड आदि का विरोध किया है और सच्ची भक्ति पर बल दिया है। यह विचार आज के धार्मिक आडंबर और पाखंड के युग में अत्यंत महत्वपूर्ण है। कबीर की भक्ति में प्रेम, समर्पण और साधना का समन्वय है, जो मानव जीवन को सार्थक बनाने में सहायक हो सकता है। उनकी भक्ति में आडंबर और दिखावे के लिए कोई स्थान नहीं है, बल्कि यह हृदय से निकलने वाली सच्ची भावना है।

मीराबाई: प्रेम और समर्पण की भक्ति

मीराबाई का जन्म राजपूत राजघराने में हुआ था, जहां वैभव और शासन की चकाचौंध थी, पर उनका हृदय तो बचपन से ही कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम से भरा था। जब अन्य राजकुमारियों का मन राजसी वस्त्राभूषणों में रमता था, तब मीरा का मन कृष्ण की मूर्ति के सामने भजन गाने में लगा रहता था। उनके पिता रतन सिंह राठौड़ मेड़ता के शासक थे और उनका परिवार राजपूताना के प्रतिष्ठित परिवारों में से एक था। मीरा के बचपन की एक घटना प्रसिद्ध है, जब एक बारात निकल रही थी और बालिका मीरा ने वरवेश में सजे दूल्हे को देखकर अपनी माता से पूछा था, "माँ, मेरा दूल्हा कौन होगा?" माता ने मुस्कुराते हुए कृष्ण की मूर्ति की ओर इशारा कर दिया था, और तभी से मीरा ने कृष्ण को अपना पति मान लिया था। इस घटना ने मीरा के जीवन को एक नई दिशा दे दी थी, जिसमें वे आजीवन कृष्ण की अनन्य भक्त बनी रहीं। मीरा की प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा राजसी परिवार के अनुरूप हुई थी, पर उनका मन तो सदैव कृष्ण की भक्ति में ही लीन रहता था। वे घंटों तक कृष्ण की मूर्ति के सामने बैठकर भजन गाती रहती थीं। बचपन से ही उनका झुकाव आध्यात्मिकता की ओर था, और वे अक्सर साधु-संतों के प्रवचन सुनने जाया करती थीं। उन्होंने रामानंद और कबीर के विचारों का अध्ययन किया था, जिससे उनकी आध्यात्मिक चेतना और भी प्रगाढ़ हो गई थी। मीरा का विवाह मेवाड़ के राणा सांगा के पुत्र भोजराज से हुआ था, जो उस समय के प्रतापी राजपूत शासक थे। विवाह के बाद मीरा को चित्तौड़गढ़ ले जाया गया, जहां उन्हें राजघराने की बहू के रूप में नई जिम्मेदारियों का निर्वाह करना था।

चित्तौड़गढ़ के राजमहल में मीरा का जीवन कठिन था। राजघराने के रीति-रिवाज और मर्यादाएं उनके भक्तिभाव के मार्ग में बाधा बनते थे। वहां की महिलाओं को पर्दे में रहना पड़ता था और बाहरी दुनिया से उनका संपर्क सीमित था, परंतु मीरा कृष्ण की भक्ति में इतनी तल्लीन थीं कि वे इन सामाजिक बंधनों से परे थीं। वे अक्सर मंदिर जाकर सार्वजनिक रूप से भजन गाती थीं और कृष्ण के भक्तों के साथ नृत्य करती थीं। यह व्यवहार राजघराने की प्रतिष्ठा के विरुद्ध माना जाता था, इसलिए मीरा को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उनके पति भोजराज को भी मीरा के इस व्यवहार से असहजता होती थी, परंतु वे मीरा के प्रति समझदारी और सहिष्णुता का भाव रखते थे। मीरा का वैवाहिक जीवन अधिक समय तक नहीं चला। भोजराज का युद्ध में निधन हो गया और मीरा विधवा हो गईं। राजघराने में विधवा होने का अर्थ था और भी अधिक प्रतिबंधों में जीना, परंतु मीरा ने इसे कृष्ण के प्रति अपने समर्पण को और गहरा करने का अवसर माना। अब वे और भी खुलकर कृष्ण की भक्ति में लीन हो गईं। वे सार्वजनिक मंदिरों में जाकर

भजन गाती थीं, नृत्य करती थीं और संतों के संग में रहती थीं। यह व्यवहार राजघराने की दृष्टि में अस्वीकार्य था, विशेषकर एक राजघराने की विधवा के लिए। इसलिए मीरा पर अनेक प्रकार के दबाव बनाए गए और उन्हें प्रताड़ित भी किया गया। मीरा पर अत्याचार करने वालों में सबसे आगे थे उनके देवर विक्रमादित्य, जो भोजराज के बाद चित्तौड़ के शासक बने थे। उन्होंने मीरा को कई बार जहर देने का प्रयास किया, परंतु मीरा हर बार बच गईं, जिसे उन्होंने कृष्ण की कृपा माना। एक प्रसिद्ध कथा है कि विक्रमादित्य ने मीरा को विष मिला हुआ प्रसाद भेजा और आदेश दिया कि वे उसे कृष्ण को अर्पित करके स्वयं भी ग्रहण करें। मीरा ने प्रसाद कृष्ण को अर्पित किया और फिर स्वयं भी ग्रहण किया, परंतु कृष्ण की कृपा से वह विष अमृत में बदल गया और मीरा को कोई हानि नहीं हुई। ऐसी अनेक कथाएं मीरा के जीवन से जुड़ी हैं, जो उनके अटूट विश्वास और कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम को दर्शाती हैं।

राजघराने के अत्याचारों से तंग आकर अंततः मीरा ने चित्तौड़ छोड़ने का निर्णय लिया और वे कृष्ण के प्रसिद्ध तीर्थस्थल वृंदावन चली गईं। वृंदावन में मीरा को वह वातावरण मिला, जिसकी वे हमेशा से खोज में थीं। वहां के भक्तिपूर्ण माहौल में वे पूरी तरह से कृष्ण की भक्ति में डूब गईं। वे वृंदावन के विभिन्न मंदिरों में जाकर भजन गाती थीं और कृष्ण की लीलाओं का गुणगान करती थीं। वृंदावन में मीरा ने कई प्रसिद्ध संतों और भक्तों से भेंट की, जिनमें जीव गोस्वामी और रूप गोस्वामी जैसे प्रसिद्ध वैष्णव संत शामिल थे। इन संतों के संपर्क में आकर मीरा की भक्ति और भी प्रगाढ़ हो गई। वृंदावन से मीरा द्वारिका गईं, जो कृष्ण की नगरी के रूप में प्रसिद्ध है। वहां के रणछोड़राय मंदिर में मीरा कई वर्षों तक रहीं और भजन-कीर्तन में लीन रहीं। द्वारिका में मीरा ने अपने अधिकांश प्रसिद्ध भजन रचे, जिनमें उनके हृदय की पीड़ा और कृष्ण के प्रति अतुलनीय प्रेम की अभिव्यक्ति है। मीरा की अंतिम यात्रा द्वारिका से राजस्थान के मेड़ता की ओर थी, जहां से वे फिर से अपनी जन्मस्थली की ओर लौट रही थीं। परंतु मीरा का अंतिम समय द्वारिका में ही आया, जहां वे रणछोड़राय मंदिर में विलीन हो गईं। ऐसी मान्यता है कि मीरा कृष्ण की मूर्ति के सामने भजन गा रही थीं, और एक क्षण में वे मूर्ति में समा गईं, अर्थात उनका कृष्ण से साक्षात्कार हो गया। मीरा की कविता में उनके जीवन के अनुभवों और भावनाओं की स्पष्ट झलक मिलती है। उनके भजनों में राजसी वैभव के त्याग, विरह की वेदना, कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम और समर्पण की अभिव्यक्ति है। मीरा के भजन सरल और भावपूर्ण भाषा में हैं, जिन्हें आम जनता भी आसानी से समझ और गा सकती है। इसीलिए मीरा के भजन आज भी उतने ही लोकप्रिय हैं जितने उनके समय में थे। मीरा के भजनों में ब्रज भाषा, राजस्थानी

और गुजराती भाषाओं का मिश्रण देखने को मिलता है, जो उनके जीवन में विभिन्न स्थानों पर रहने का प्रमाण है।

मीरा की कविता में मुख्य रूप से कृष्ण के प्रति प्रेम और विरह की अभिव्यक्ति है। वे कृष्ण को अपना प्रियतम मानती थीं और उनसे मिलने के लिए व्याकुल रहती थीं। उनके भजनों में कृष्ण के विभिन्न रूपों का वर्णन मिलता है - कभी वे कृष्ण को गिरिधर गोपाल के रूप में देखती हैं, तो कभी रणछोड़राय के रूप में। मीरा के भजनों में कहीं-कहीं सूफ़ी प्रेम काव्य की झलक भी मिलती है, जहां आत्मा और परमात्मा के मिलन की व्याकुलता का वर्णन है। मीरा का एक प्रसिद्ध भजन है - "मैं तो संवरिया के रंग राची", जिसमें वे कहती हैं कि वे पूरी तरह से कृष्ण के प्रेम में रंग गई हैं और अब उनका कोई अस्तित्व नहीं रह गया है। इस प्रकार के भजनों में आत्मा का परमात्मा में विलय होने की अद्वैत भावना झलकती है। मीरा के भजनों में सामाजिक बंधनों से मुक्ति की चाह भी दिखाई देती है। वे कहती हैं कि लोग उन्हें पागल कहते हैं, परंतु वे इस पागलपन में आनंद का अनुभव करती हैं क्योंकि यह पागलपन कृष्ण के प्रति उनके प्रेम का परिणाम है। मीरा ने अपने समय के सामाजिक रूढ़ियों और बंधनों को तोड़ा और स्त्री होते हुए भी अपने आध्यात्मिक पथ पर दृढ़ता से चलती रहीं। इसलिए वे न केवल एक महान भक्त बल्कि एक साहसी समाज सुधारक भी थीं, जिन्होंने अपने व्यक्तिगत आचरण से समाज को एक नई दिशा दिखाई।

मीरा की भक्ति मार्ग की अनूठी विशेषता यह थी कि उन्होंने भक्ति को जीवन का अभिन्न अंग बना लिया था। उनके लिए भक्ति महज एक अनुष्ठान या धार्मिक क्रिया नहीं थी, बल्कि जीवन जीने का एक तरीका था। वे कृष्ण में इतनी तल्लीन थीं कि उनके हर कर्म, हर विचार और हर शब्द में कृष्ण के प्रति प्रेम झलकता था। मीरा ने कभी भी कृष्ण को अपने से अलग नहीं माना, बल्कि वे हमेशा कृष्ण के साथ एकाकार होने की अनुभूति में रहती थीं। यह अद्वैत भाव मीरा की भक्ति का मूल तत्व था, जिसमें भक्त और भगवान के बीच की दूरी समाप्त हो जाती है। मीरा के जीवन और उनकी कविताओं का प्रभाव उनके समकालीन समाज पर गहरा था। उन्होंने न केवल भक्ति आंदोलन को एक नई ऊंचाई दी, बल्कि समाज में स्त्रियों की स्थिति के प्रति भी लोगों का दृष्टिकोण बदला। मीरा ने अपने साहस और दृढ़ संकल्प से दिखाया कि एक स्त्री भी आध्यात्मिक पथ पर चलकर परमात्मा को प्राप्त कर सकती है। उन्होंने जाति, वर्ग और लिंग के भेदभाव को नकारा और सभी को समान रूप से भक्ति का अधिकार दिया। मीरा के इस समतावादी दृष्टिकोण ने तत्कालीन समाज में एक नई चेतना का संचार किया। मीरा के जीवन की सबसे बड़ी विशेषता थी उनका समर्पण। वे पूरी तरह से कृष्ण को समर्पित थीं और उनके लिए कृष्ण ही सब कुछ

थे। उन्होंने राजसी वैभव, सामाजिक प्रतिष्ठा और यहां तक कि अपना जीवन भी कृष्ण के प्रेम के लिए त्याग दिया। यह समर्पण भाव मीरा की भक्ति का मूल आधार था, जिसने उन्हें इतना महान बनाया। मीरा के जीवन से हमें यह शिक्षा मिलती है कि सच्चा प्रेम और भक्ति में पूर्ण समर्पण की भावना होती है, जहां अपने स्वार्थ और अहंकार का कोई स्थान नहीं होता।

मीरा के भजनों में एक और महत्वपूर्ण विशेषता है - वे भजन गाती हैं तो गीत और संगीत का उत्कृष्ट मिश्रण देखने को मिलता है। मीरा की भाषा सरल और प्रवाहपूर्ण है, जिसमें श्रोता आसानी से खो जाता है। उनके भजनों में एक लयात्मकता है, जो हृदय को छू लेती है। इसीलिए आज भी मीरा के भजन भारत के हर कोने में गाए जाते हैं और लोगों को भक्ति के मार्ग पर प्रेरित करते हैं। मीरा के भजनों के माध्यम से हम उनके हृदय की गहराई में झांक सकते हैं और उनके अनुभवों को समझ सकते हैं। उनके भजन उनके जीवन का आईना हैं, जिनमें उनकी यात्रा, उनकी पीड़ा और उनका प्रेम झलकता है। मीरा के भजनों में प्रेम की विभिन्न दशाओं का वर्णन मिलता है। कभी वे प्रेम की प्रथम अनुभूति का वर्णन करती हैं, तो कभी विरह की वेदना का। कभी वे कृष्ण के साथ मिलन की खुशी व्यक्त करती हैं, तो कभी उनके विछोह का दर्द। इन सभी भावनाओं का चित्रण मीरा ने बड़ी सहजता और प्रामाणिकता से किया है, जिससे उनके भजन पाठक या श्रोता के हृदय को गहराई से छू लेते हैं। मीरा के भजनों की यह विशेषता है कि वे केवल भक्ति या आध्यात्मिकता तक सीमित नहीं हैं, बल्कि मानवीय भावनाओं और अनुभूतियों का भी समावेश करते हैं। इसीलिए मीरा के भजन हर युग और हर समाज में प्रासंगिक रहे हैं और आगे भी रहेंगे। मीरा के जीवन और उनकी कविताओं का प्रभाव आज भी भारतीय समाज और संस्कृति पर गहरा है। भक्ति काल की प्रमुख कवयित्री के रूप में मीरा का स्थान अद्वितीय है। उन्होंने न केवल भक्ति काव्य की परंपरा को समृद्ध किया, बल्कि स्त्री सशक्तिकरण का भी एक अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया। मीरा के जीवन से प्रेरित होकर आज भी कई स्त्रियां अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाती हैं और सामाजिक बंधनों से मुक्ति की चाह रखती हैं। मीरा का जीवन और उनकी कविताएं आज के समय में भी उतनी ही प्रासंगिक हैं, जितनी उनके समय में थीं। वे हमें सिखाती हैं कि सच्चा प्रेम और भक्ति सभी बंधनों से परे है और यह हमें आंतरिक मुक्ति और आनंद प्रदान करता है।

मीरा के जीवन और उनकी भक्ति का एक और महत्वपूर्ण पहलू है उनका आत्मसमर्पण। मीरा ने अपने आप को पूरी तरह से कृष्ण को समर्पित कर दिया था और उनके लिए कृष्ण ही उनका सब कुछ थे। वे अपने भजनों में कहती हैं कि वे कृष्ण की दासी हैं और उनके चरणों में ही उनका स्थान है। यह

आत्मसमर्पण की भावना मीरा की भक्ति का मूल तत्व थी, जिसने उन्हें इतना महान बनाया। मीरा का कृष्ण के प्रति समर्पण इतना अद्वितीय था कि वे अपने आप को कृष्ण से अलग ही नहीं मानती थीं। उनके लिए कृष्ण उनके अंदर और बाहर, हर जगह विद्यमान थे। यह अद्वैत भावना मीरा की भक्ति का सबसे गहरा पहलू था। मीरा के जीवन की एक और महत्वपूर्ण विशेषता थी उनका साहस। उन्होंने अपने समय के सामाजिक रूढ़ियों और बंधनों को तोड़ा और अपने आध्यात्मिक पथ पर दृढ़ता से चलती रहीं। राजघराने की एक स्त्री के लिए सार्वजनिक रूप से भजन गाना और नृत्य करना, संतों के संग में रहना और यहां तक कि घर छोड़कर तीर्थयात्रा पर जाना - ये सभी उस समय के समाज में अस्वीकार्य थे। परंतु मीरा ने इन सभी बंधनों को तोड़ा और अपने आध्यात्मिक जीवन को जिया। इस साहस के कारण ही मीरा न केवल एक महान भक्त बल्कि एक समाज सुधारक भी बनीं, जिन्होंने स्त्रियों को आध्यात्मिक स्वतंत्रता का मार्ग दिखाया। मीरा के भजनों में भक्ति की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन मिलता है। कभी वे कृष्ण के प्रति प्रेम की प्रथम अनुभूति का वर्णन करती हैं, तो कभी विरह की वेदना का। कभी वे कृष्ण के साथ मिलन की खुशी व्यक्त करती हैं, तो कभी उनके विछोह का दर्द। इन सभी भावनाओं का चित्रण मीरा ने बड़ी सहजता और प्रामाणिकता से किया है, जिससे उनके भजन पाठक या श्रोता के हृदय को गहराई से छू लेते हैं। मीरा के भजनों का एक प्रसिद्ध उदाहरण है - "पायो जी मैंने राम रतन धन पायो", जिसमें वे कहती हैं कि उन्हें कृष्ण के रूप में जीवन का सबसे बड़ा धन मिल गया है और अब उन्हें किसी और चीज की आवश्यकता नहीं है। इस भजन में मीरा की आंतरिक संतुष्टि और आनंद की अभिव्यक्ति है, जो उन्हें कृष्ण की भक्ति से प्राप्त हुआ है।

मीरा के भजनों में प्रेम और भक्ति का अद्भुत संगम है। वे कृष्ण को अपना प्रियतम, अपना प्रेमी और अपना पति मानती थीं और उनके प्रति अनन्य प्रेम रखती थीं। यह प्रेम इतना गहरा था कि वे कृष्ण के बिना एक क्षण भी नहीं रह सकती थीं। उनके भजनों में इस प्रेम की तीव्रता और गहराई का वर्णन मिलता है। मीरा कहती हैं कि उनका कृष्ण के साथ ऐसा बंधन है जो जन्म-जन्मांतर तक चलेगा। यह आध्यात्मिक प्रेम की परिपूर्णता है, जिसमें आत्मा का परमात्मा से मिलन होता है। मीरा के जीवन और उनकी भक्ति का प्रभाव भारतीय संस्कृति और समाज पर गहरा और स्थायी रहा है। वे आज भी भक्ति और प्रेम की प्रतीक हैं और उनके भजन हर घर में गूंजते हैं। मीरा का जीवन हमें सिखाता है कि सच्चा प्रेम और भक्ति सभी बंधनों और सीमाओं से परे है और यह हमें आंतरिक मुक्ति और आनंद प्रदान करता है। मीरा की भक्ति की विशेषता यह थी कि वह सरल, सहज और प्रत्यक्ष थी। उन्होंने कभी भी कठिन साधनाओं या अनुष्ठानों का

मार्ग नहीं अपनाया, बल्कि सीधे कृष्ण से प्रेम किया और उनके साथ एक अंतरंग संबंध स्थापित किया। यह सहज भक्ति मार्ग आज भी प्रासंगिक है और हमें सिखाता है कि भक्ति के लिए किसी विशेष ज्ञान या योग्यता की आवश्यकता नहीं है, बल्कि केवल प्रेम और समर्पण की भावना चाहिए। मीरा की भक्ति में सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार के तत्व मिलते हैं। एक ओर वे कृष्ण के सगुण रूप - उनके नीले रंग, उनकी मुरली, उनके मोर मुकुट आदि का वर्णन करती हैं, तो दूसरी ओर वे कृष्ण को सर्वव्यापी चेतना के रूप में भी देखती हैं, जो हर जगह मौजूद है। यह सगुण और निर्गुण का समन्वय मीरा की भक्ति को एक अद्वितीय

इकाई 16: भारतीय पुनर्जागरण में दर्शन की भूमिका

भारतीय पुनर्जागरण एक ऐसी अवधि थी जिसने भारतीय समाज, संस्कृति और विचारधारा में आमूलचूल परिवर्तन लाए। यह पुनर्जागरण 19वीं शताब्दी के मध्य से लेकर 20वीं शताब्दी के प्रारंभ तक फैला था, जिसमें भारतीय समाज में व्याप्त अंधविश्वासों, रूढ़िवादिता, और पश्चिमी औपनिवेशिक प्रभावों के प्रति एक सजग और आलोचनात्मक प्रतिक्रिया के रूप में अनेक सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक आंदोलन उभरे। इस पुनर्जागरण में दर्शन की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही, क्योंकि यह वह माध्यम था जिसके द्वारा भारतीय चिंतकों ने अपनी सांस्कृतिक विरासत का पुनर्मूल्यांकन किया और समकालीन चुनौतियों का सामना करने के लिए नवीन विचारधाराओं का विकास किया। भारतीय पुनर्जागरण की पृष्ठभूमि में औपनिवेशिक शासन के दौरान पश्चिमी शिक्षा और विचारों का प्रवेश था, जिसने भारतीय बुद्धिजीवियों को अपनी परंपराओं और मूल्यों पर पुनर्विचार करने के लिए प्रेरित किया। इस काल में राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी, और रवींद्रनाथ टैगोर जैसे महान विचारकों ने भारतीय दर्शन की प्राचीन परंपराओं को नए संदर्भों में व्याख्यायित किया और उनके माध्यम से आधुनिक समस्याओं के समाधान की तलाश की। भारतीय पुनर्जागरण में दर्शन की भूमिका को समझने के लिए, हमें पहले भारतीय दर्शन की मूलभूत विशेषताओं और उसके ऐतिहासिक विकास को समझना होगा। भारतीय दर्शन की परंपरा वेदों से प्रारंभ होकर उपनिषदों, बौद्ध और जैन दर्शन, षड्दर्शन, और मध्यकालीन भक्ति आंदोलनों तक फैली हुई है। इस दार्शनिक परंपरा की मुख्य विशेषता यह रही है कि इसने हमेशा सिद्धांत और व्यवहार, ज्ञान और आचरण के बीच संतुलन बनाए रखने का प्रयास किया है। भारतीय दर्शन में आत्मा, ब्रह्म, माया, कर्म, मोक्ष जैसी अवधारणाएँ केंद्रीय स्थान रखती हैं, और इन्हीं अवधारणाओं के आधार पर पुनर्जागरण के विचारकों ने अपनी नवीन व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं। पुनर्जागरण काल में, भारतीय दार्शनिक चिंतन की विशेषता थी प्राचीन और आधुनिक, पूर्व और पश्चिम के बीच एक सांस्कृतिक संवाद स्थापित करना। राजा राममोहन

राय, जिन्हें अक्सर "आधुनिक भारत के जनक" कहा जाता है, ने उपनिषदों के अद्वैतवाद और पश्चिमी तर्कवाद का समन्वय करते हुए धार्मिक सुधारों की नींव रखी। उन्होंने वेदांत दर्शन की एकेश्वरवादी व्याख्या प्रस्तुत की और मूर्तिपूजा, सती प्रथा, और बाल विवाह जैसी कुरीतियों के विरुद्ध आवाज उठाई। राजा राममोहन राय ने ब्रह्म समाज की स्थापना करके न केवल हिंदू धर्म में सुधार का प्रयास किया, बल्कि एक ऐसे धार्मिक दर्शन का प्रचार किया जो मानवतावादी मूल्यों पर आधारित था।

इसी प्रकार, स्वामी दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज के माध्यम से वैदिक धर्म की पुनर्व्याख्या की और "वेदों की ओर लौटो" का नारा दिया। उन्होंने वेदों को आधुनिक विज्ञान और तर्क के अनुरूप व्याख्यायित करने का प्रयास किया और हिंदू धर्म में व्याप्त अंधविश्वासों और कुरीतियों का विरोध किया। स्वामी दयानंद का दर्शन धार्मिक पुनरुत्थान और राष्ट्रीय जागरण का मिश्रण था, जिसने आगे चलकर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को भी प्रभावित किया। स्वामी विवेकानंद ने अद्वैत वेदांत के दर्शन को नए आयाम दिए और उसे वैश्विक मंच पर प्रस्तुत किया। 1893 में शिकागो में आयोजित विश्व धर्म सम्मेलन में उनके भाषण ने पश्चिमी जगत को भारतीय दर्शन की गहराई और व्यापकता से परिचित कराया। विवेकानंद ने वेदांत दर्शन को केवल सैद्धांतिक चिंतन तक सीमित न रखकर उसे सामाजिक सेवा और राष्ट्रीय उत्थान से जोड़ा। उनका प्रैक्टिकल वेदांत का सिद्धांत, जिसमें आध्यात्मिक साधना के साथ-साथ समाज सेवा पर बल दिया गया था, पुनर्जागरण काल के दार्शनिक चिंतन का महत्वपूर्ण योगदान था। महात्मा गांधी ने अपने दर्शन में भारतीय परंपराओं और पश्चिमी विचारों का अनूठा समन्वय किया। उन्होंने गीता के कर्मयोग, जैन दर्शन की अहिंसा, और बौद्ध धर्म की करुणा को अपने राजनीतिक और सामाजिक दर्शन का आधार बनाया। गांधी जी के सत्य और अहिंसा के सिद्धांत केवल नैतिक आदर्श ही नहीं थे, बल्कि वे सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन के प्रभावशाली उपकरण भी थे। उन्होंने स्वराज, स्वदेशी, और सर्वोदय के सिद्धांतों के माध्यम से भारतीय समाज के सर्वांगीण विकास का विजन प्रस्तुत किया, जिसका आधार भारतीय दर्शन की मूल अवधारणाएँ थीं। रवींद्रनाथ टैगोर ने अपने दार्शनिक और साहित्यिक कार्यों के माध्यम से भारतीय आध्यात्मिकता और मानवतावाद का संश्लेषण किया। उनके दर्शन में प्रकृति और मानव के बीच सामंजस्य, व्यक्ति की स्वतंत्रता, और विश्वबंधुत्व के आदर्श प्रमुख थे। शांतिनिकेतन की स्थापना के माध्यम से, उन्होंने ऐसी शिक्षा प्रणाली का विकास किया जो भारतीय दर्शन के मूल्यों पर आधारित थी और वैश्विक दृष्टिकोण रखती थी।

श्री अरविंद ने अपने पूर्णयोग के दर्शन के माध्यम से वेदांत और आधुनिक विकासवाद का समन्वय किया। उनके अनुसार, मानव चेतना का विकास एक निरंतर प्रक्रिया है, जिसका उद्देश्य अतिमानस चेतना की प्राप्ति है। श्री अरविंद का दर्शन न केवल व्यक्तिगत आध्यात्मिक विकास पर केंद्रित था, बल्कि वह सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन के लिए भी एक आधार प्रदान करता था। भारतीय पुनर्जागरण में महिला विचारकों की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही है। पंडिता रमाबाई, सरोजिनी नायडू, और एनी बेसेंट जैसी महिलाओं ने न केवल स्त्री शिक्षा और अधिकारों के लिए संघर्ष किया, बल्कि उन्होंने भारतीय दर्शन की परंपराओं में स्त्री दृष्टिकोण से नवीन व्याख्याएँ भी प्रस्तुत कीं। भारतीय पुनर्जागरण के दौरान, भारतीय दर्शन की कई महत्वपूर्ण अवधारणाओं का पुनर्विचार और पुनर्व्याख्या हुई। इनमें से कुछ प्रमुख अवधारणाएँ थीं:

आत्मनिर्भरता और स्वदेशी: गांधी जी, अरविंद घोष, और अन्य विचारकों ने आत्मनिर्भरता के भारतीय दार्शनिक आदर्श को राजनीतिक और आर्थिक स्वाधीनता के रूप में प्रस्तुत किया। स्वदेशी आंदोलन भारतीय अर्थव्यवस्था और संस्कृति के पुनरुत्थान का प्रतीक बन गया, जिसका दार्शनिक आधार था कि वास्तविक स्वतंत्रता केवल आर्थिक और सांस्कृतिक आत्मनिर्भरता से ही आ सकती है।

अहिंसा और शांति: भारतीय दर्शन में अहिंसा का सिद्धांत प्राचीन काल से ही महत्वपूर्ण रहा है, विशेषकर जैन और बौद्ध परंपराओं में। पुनर्जागरण काल में महात्मा गांधी ने अहिंसा को न केवल एक नैतिक आदर्श के रूप में, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन के एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में प्रस्तुत किया। गांधी जी का अहिंसा का सिद्धांत केवल हिंसा का निषेध नहीं था, बल्कि यह सकारात्मक प्रेम और सेवा का भाव भी था।

धर्म की सार्वभौमिकता: पुनर्जागरण काल के विचारकों ने धर्म को संकीर्ण सांप्रदायिकता से ऊपर उठाकर उसके सार्वभौमिक मूल्यों पर जोर दिया। राजा राममोहन राय से लेकर स्वामी विवेकानंद तक, अनेक विचारकों ने विभिन्न धर्मों के अंतर्निहित एकत्व पर बल दिया और धार्मिक सहिष्णुता और समन्वय का संदेश दिया।

समाज सुधार और आधुनिकता: भारतीय पुनर्जागरण के विचारकों ने प्राचीन भारतीय दर्शन की नैतिक और आध्यात्मिक अवधारणाओं को आधुनिक समाज की चुनौतियों के संदर्भ में पुनर्व्याख्यायित किया।

उन्होंने जाति व्यवस्था, लैंगिक असमानता, और अन्य सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध प्राचीन भारतीय दर्शन के मानवतावादी और समतावादी पहलुओं का आह्वान किया।

राष्ट्रवाद और विश्वबंधुत्व: भारतीय पुनर्जागरण के विचारकों ने राष्ट्रवाद और विश्वबंधुत्व के बीच एक नाजुक संतुलन बनाए रखने का प्रयास किया। उन्होंने भारतीय संस्कृति और परंपराओं के प्रति गर्व को बढ़ावा दिया, लेकिन साथ ही विश्व शांति और मानव एकता के आदर्शों को भी प्रोत्साहित किया। भारतीय दर्शन की "वसुधैव कुटुम्बकम्" की अवधारणा पुनर्जागरण काल में फिर से महत्वपूर्ण हो गई। भारतीय पुनर्जागरण काल में दर्शन ने केवल सैद्धांतिक चिंतन ही नहीं, बल्कि व्यावहारिक सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस काल के विचारकों ने भारतीय दर्शन की परंपराओं को आधुनिक संदर्भों में पुनर्व्याख्यायित करके उन्हें समकालीन समस्याओं के समाधान के लिए प्रासंगिक बनाया। उन्होंने भारतीय संस्कृति और विचारों की श्रेष्ठता पर गर्व करते हुए भी, पश्चिमी ज्ञान और विज्ञान से सीखने की तत्परता दिखाई।

भारतीय पुनर्जागरण के दार्शनिक चिंतन का एक महत्वपूर्ण पहलू था उसका समन्वयवादी दृष्टिकोण। इस काल के विचारकों ने पूर्व और पश्चिम, परंपरा और आधुनिकता, विज्ञान और आध्यात्मिकता के बीच संवाद स्थापित करने का प्रयास किया। स्वामी विवेकानंद ने कहा था कि भारत को पश्चिम से भौतिक विज्ञान सीखना चाहिए, जबकि पश्चिम को भारत से आध्यात्मिक ज्ञान। यह समन्वयवादी दृष्टिकोण भारतीय दर्शन की विशेषता रहा है, जिसने विभिन्न विचारधाराओं और परंपराओं के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया है। पुनर्जागरण काल में भारतीय दर्शन ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन को भी गहराई से प्रभावित किया। विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं ने स्वतंत्रता संग्राम के विभिन्न पहलुओं को आकार दिया। महात्मा गांधी के सत्याग्रह का सिद्धांत भारतीय दर्शन की अहिंसा और सत्य की अवधारणाओं पर आधारित था। बाल गंगाधर तिलक ने गीता के कर्मयोग को राजनीतिक कार्यवाही के दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया। सुभाष चंद्र बोस ने वेदांत के अद्वैतवाद को राष्ट्रीय एकता के आदर्श के रूप में देखा। इसके अलावा, पुनर्जागरण काल में भारतीय दर्शन ने शिक्षा के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। रवींद्रनाथ टैगोर के शांतिनिकेतन, महात्मा गांधी के बुनियादी शिक्षा के सिद्धांत, और स्वामी विवेकानंद के रामकृष्ण मिशन जैसे शैक्षिक प्रयोग भारतीय दर्शन की मूल अवधारणाओं पर आधारित थे। इन शिक्षा प्रणालियों का उद्देश्य न केवल ज्ञान का प्रसार करना था, बल्कि छात्रों के चरित्र और व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना भी था। भारतीय पुनर्जागरण के दार्शनिक चिंतन ने दुनिया भर में अन्य विचारकों और आंदोलनों को भी प्रभावित

किया। लियो टॉल्स्टॉय, मार्टिन लूथर किंग जूनियर, और नेल्सन मंडेला जैसे वैश्विक शख्सियतों ने भारतीय दर्शन, विशेषकर गांधीवादी विचारों से प्रेरणा ली। अमेरिका में ट्रांसेंडेंटलिज्म और यूरोप में नव-वेदांत जैसे आंदोलनों पर भारतीय दर्शन का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

समकालीन संदर्भ में, भारतीय पुनर्जागरण के दार्शनिक विचार आज भी प्रासंगिक हैं। वैश्विक समस्याओं जैसे पर्यावरण संकट, सांप्रदायिक तनाव, और आर्थिक असमानता के समाधान में भारतीय दर्शन की अवधारणाएँ महत्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं। गांधी जी के सादा जीवन और पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता के विचार, विवेकानंद के समावेशी और मानवतावादी दृष्टिकोण, और टैगोर के विश्वबंधुत्व के आदर्श आज के वैश्विक समुदाय के लिए प्रेरणादायक हो सकते हैं। इस प्रकार, भारतीय पुनर्जागरण में दर्शन की भूमिका बहुआयामी रही है। इस काल के विचारकों ने भारतीय दर्शन की प्राचीन परंपराओं को नए संदर्भों में पुनर्व्याख्यायित करके उन्हें समकालीन चुनौतियों के सामने प्रासंगिक बनाया। उन्होंने पूर्व और पश्चिम, परंपरा और आधुनिकता के बीच संवाद स्थापित करने का प्रयास किया और भारतीय समाज के सर्वांगीण विकास के लिए एक समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। भारतीय पुनर्जागरण के दार्शनिक चिंतन का प्रभाव न केवल भारत तक सीमित रहा, बल्कि इसने वैश्विक विचारधाराओं और आंदोलनों को भी प्रभावित किया। किसी भी राष्ट्र के इतिहास में ऐसे क्षण आते हैं जब वह अपने अतीत की ओर देखकर अपनी पहचान और मूल्यों को पुनर्परिभाषित करता है। भारतीय पुनर्जागरण भी ऐसा ही एक क्षण था, जिसमें भारतीय समाज ने अपनी प्राचीन परंपराओं और ज्ञान को नए सिरे से खोजने और समझने का प्रयास किया। इस प्रक्रिया में दर्शन ने एक महत्वपूर्ण उत्प्रेरक की भूमिका निभाई, जो न केवल अतीत और वर्तमान के बीच सेतु बना, बल्कि भविष्य के लिए भी एक नया विजन प्रस्तुत किया। भारतीय पुनर्जागरण के दौरान प्रमुख दार्शनिक धाराओं और विचारकों का विस्तृत विश्लेषण इस बात की पुष्टि करता है कि इस काल में दर्शन केवल बौद्धिक अभ्यास तक सीमित नहीं था, बल्कि वह सामाजिक परिवर्तन और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का एक शक्तिशाली उपकरण भी था। राजा राममोहन राय से लेकर महात्मा गांधी तक, अनेक विचारकों ने भारतीय दर्शन की समृद्ध परंपराओं से प्रेरणा लेकर समकालीन समस्याओं के समाधान की तलाश की और भारतीय समाज के लिए एक नया मार्ग प्रशस्त किया।

आज, जब भारत और विश्व अनेक जटिल चुनौतियों का सामना कर रहे हैं, भारतीय पुनर्जागरण के दार्शनिक विचार फिर से प्रासंगिक हो जाते हैं। विवेकानंद के समावेशी अध्यात्म, गांधी जी के अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धांत, और टैगोर के विश्वबंधुत्व के आदर्श आज भी हमें पथ प्रदर्शित कर सकते हैं। भारतीय

पुनर्जागरण का दार्शनिक आदर्श था - 'प्राचीन मूल्यों का अध्ययन और नवीन संदर्भों में उनकी पुनर्व्याख्या'। यही आदर्श आज भी हमारे लिए प्रासंगिक है, जब हम अपनी सभ्यता की जड़ों को समझते हुए भविष्य की ओर बढ़ रहे हैं। इस प्रकार, भारतीय पुनर्जागरण में दर्शन की भूमिका का अध्ययन न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह वर्तमान और भविष्य के लिए भी महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। यह हमें यह समझने में मदद करता है कि कैसे एक समाज अपनी दार्शनिक परंपराओं से प्रेरणा लेकर अपने समय की चुनौतियों का सामना कर सकता है और अपने लिए एक नया भविष्य निर्मित कर सकता है।

भारतीय पुनर्जागरण में दर्शन की भूमिका का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू था इसका विविधतापूर्ण और बहुआयामी चरित्र। इस काल में अनेक दार्शनिक धाराएँ और विचारधाराएँ समानांतर रूप से विकसित हुईं, जिन्होंने भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों और क्षेत्रों को प्रभावित किया। इनमें से कुछ प्रमुख धाराएँ थीं:

धार्मिक सुधार और पुनरुत्थानवाद: राजा राममोहन राय के ब्रह्म समाज, स्वामी दयानंद सरस्वती के आर्य समाज का अध्ययन

भारतीय इतिहास का 19वीं शताब्दी का कालखंड विशेष महत्व रखता है। यह वह समय था जब भारत अपनी सामाजिक-धार्मिक चेतना के पुनर्जागरण से गुज़र रहा था। पश्चिमी शिक्षा और संस्कृति के प्रभाव से भारतीय समाज में कई परिवर्तन हो रहे थे। इसी समय अनेक प्रबुद्ध चिंतकों और सुधारकों ने भारतीय समाज की कुरीतियों और अंधविश्वासों को दूर करने का बीड़ा उठाया। धार्मिक सुधार आंदोलनों की इस श्रृंखला में राजा राममोहन राय द्वारा स्थापित ब्रह्म समाज और स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा स्थापित आर्य समाज का विशेष स्थान है। इन दोनों समाजों का उद्देश्य भारतीय धर्म और संस्कृति को उसके मूल स्वरूप में लौटाना था। दोनों ही सुधारकों ने प्राचीन वैदिक धर्म के सिद्धांतों का आह्वान करते हुए, धर्म में आ चुकी विकृतियों, अंधविश्वासों और कुरीतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाई। राजा राममोहन राय और स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपने-अपने समय में भारतीय समाज पर गहरा प्रभाव डाला, जिसका असर आज भी हमारे समाज में देखा जा सकता है। इस अध्याय में हम ब्रह्म समाज और आर्य समाज के इतिहास, सिद्धांतों, कार्यों और उनके प्रभावों का विस्तृत अध्ययन करेंगे। साथ ही, इन दोनों समाजों के बीच समानताओं और अंतरों का भी विश्लेषण करेंगे।

19वीं शताब्दी का भारतीय समाज: पृष्ठभूमि

19वीं शताब्दी के भारतीय समाज की स्थिति अत्यंत जटिल थी। एक ओर प्राचीन परंपराएँ और रूढ़िवादिता थी, तो दूसरी ओर पश्चिमी शिक्षा और संस्कृति का बढ़ता प्रभाव। ब्रिटिश शासन के कारण भारतीय समाज में अनेक परिवर्तन आ रहे थे। अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त युवा वर्ग में पाश्चात्य विचारों का प्रभाव बढ़ रहा था। इस समय भारतीय समाज में कई कुरीतियाँ व्याप्त थीं जैसे - बाल विवाह, सती प्रथा, विधवा विवाह निषेध, जाति प्रथा, छुआछूत आदि। इसी समय के दौरान, धार्मिक क्षेत्र में भी कई विकृतियाँ आ चुकी थीं। मूर्ति पूजा, बहुदेववाद, अंधविश्वास, तंत्र-मंत्र, जादू-टोना आदि का प्रचलन बढ़ गया था। वेदों के मूल ज्ञान को भुला दिया गया था और धर्म के नाम पर अनेक प्रकार के आडंबर फैल गए थे। पुरोहितवाद का वर्चस्व बढ़ गया था और धर्म के नाम पर शोषण का चक्र चल रहा था।

इस सामाजिक-धार्मिक पतन के विरुद्ध कई सुधारकों ने आवाज़ उठाई। इनमें राजा राममोहन राय और स्वामी दयानंद सरस्वती प्रमुख थे, जिन्होंने क्रमश: ब्रह्म समाज और आर्य समाज की स्थापना कर भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों के विरुद्ध संघर्ष किया।

राजा राममोहन राय: जीवन परिचय और पृष्ठभूमि

राजा राममोहन राय का जन्म 22 मई, 1772 को बंगाल के हुगली जिले के राधानगर नामक स्थान पर एक संपन्न ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पिता रामकांत राय एक कुलीन ब्राह्मण थे और मुगल दरबार में उच्च पद पर कार्यरत थे। राममोहन राय की प्रारंभिक शिक्षा परंपरागत तरीके से हुई। उन्होंने बंगाली, संस्कृत, फारसी और अरबी भाषाओं का अध्ययन किया। बाद में उन्होंने अंग्रेज़ी, हिब्रू, यूनानी और लैटिन भाषाओं का भी ज्ञान प्राप्त किया। राममोहन राय बचपन से ही जिज्ञासु और विचारशील स्वभाव के थे। उन्होंने हिंदू धर्मग्रंथों के अतिरिक्त इस्लाम और ईसाई धर्म के ग्रंथों का भी अध्ययन किया। विभिन्न धर्मों के अध्ययन से उनमें धार्मिक सहिष्णुता और एकेश्वरवाद के प्रति आस्था विकसित हुई। उन्होंने मूर्ति पूजा का विरोध किया और वेदांत दर्शन के अद्वैतवाद को अपनाया। राजा राममोहन राय प्रारंभ में ईस्ट इंडिया कंपनी में काम करते थे, परंतु बाद में वे समाज सुधार की ओर उन्मुख हुए। वे आधुनिक भारत के प्रथम सुधारक माने जाते हैं और उन्हें "आधुनिक भारत का जनक" भी कहा जाता है।

ब्रह्म समाज की स्थापना और सिद्धांत

राजा राममोहन राय ने 20 अगस्त, 1828 को कोलकाता (तत्कालीन कलकत्ता) में ब्रह्म समाज की स्थापना की। इसका प्रारंभिक नाम "ब्रह्म सभा" था, जिसे बाद में "ब्रह्म समाज" के नाम से जाना गया। ब्रह्म समाज की स्थापना का मुख्य उद्देश्य हिंदू धर्म को उसके मूल स्वरूप में लौटाना और समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करना था।

ब्रह्म समाज के प्रमुख सिद्धांत निम्नलिखित थे:

1. एकेश्वरवाद: ब्रह्म समाज का मुख्य सिद्धांत एकेश्वरवाद था। राजा राममोहन राय ने बहुदेववाद और मूर्ति पूजा का विरोध किया और एक ईश्वर की उपासना पर बल दिया। उन्होंने वेदांत दर्शन के अद्वैतवाद को अपनाया, जिसके अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है और वही सृष्टि का निर्माता है।

2. वेदों का प्रामाण्य: ब्रह्म समाज ने वेदों को धर्म का आधार माना, परंतु उन्होंने वेदों की व्याख्या तर्क और विवेक के आधार पर की। उन्होंने उपनिषदों पर विशेष बल दिया और उनके मूल सिद्धांतों को अपनाया।

3. सामाजिक कुरीतियों का विरोध: ब्रह्म समाज ने सती प्रथा, बाल विवाह, बहुविवाह, जाति प्रथा, छुआछूत आदि सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया। राजा राममोहन राय ने विधवा विवाह का समर्थन किया और स्त्री शिक्षा पर बल दिया।

4. धार्मिक सहिष्णुता: ब्रह्म समाज ने सभी धर्मों के प्रति सम्मान की भावना रखी और धार्मिक सहिष्णुता का प्रचार किया। उन्होंने विभिन्न धर्मों के सार को ग्रहण करने की बात की।

5. तर्क और विवेक: ब्रह्म समाज ने अंधविश्वासों और रूढ़िवादिता का विरोध किया और धार्मिक मामलों में भी तर्क और विवेक के प्रयोग पर बल दिया।

6. सार्वभौमिक धर्म: ब्रह्म समाज का लक्ष्य एक सार्वभौमिक धर्म की स्थापना करना था, जो सभी धर्मों के सार को समाहित करे और मानवता की एकता पर आधारित हो।

ब्रह्म समाज का विकास और विभाजन

राजा राममोहन राय की मृत्यु के बाद ब्रह्म समाज का नेतृत्व देवेंद्रनाथ टैगोर ने संभाला। उन्होंने 1843 में "तत्त्वबोधिनी सभा" की स्थापना की और ब्रह्म समाज के सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार किया। देवेंद्रनाथ टैगोर ने ब्रह्म समाज के लिए एक विधान तैयार किया, जिसे "ब्रह्म धर्म" कहा गया। केशवचंद्र सेन के आगमन के साथ ब्रह्म समाज में नया मोड़ आया। केशवचंद्र सेन 1857 में ब्रह्म समाज से जुड़े और जल्द ही उसके प्रमुख नेता बन गए। उन्होंने समाज सुधार पर अधिक बल दिया और ईसाई धर्म से भी प्रभावित थे। उनके राडिकल विचारों के कारण 1866 में ब्रह्म समाज का पहला विभाजन हुआ और "भारतीय ब्रह्म समाज" का गठन हुआ, जिसका नेतृत्व देवेंद्रनाथ टैगोर ने किया, जबकि केशवचंद्र सेन ने "ब्रह्म समाज ऑफ इंडिया" की स्थापना की। 1878 में केशवचंद्र सेन की पुत्री का विवाह कूच बिहार के राजकुमार से होने के कारण ब्रह्म समाज में दूसरा विभाजन हुआ। इस विवाह में बाल विवाह और बहुविवाह जैसी प्रथाओं का पालन हुआ, जिनका ब्रह्म समाज विरोध करता था। इस घटना के बाद आनंदमोहन बोस और शिवनाथ शास्त्री के नेतृत्व में "साधारण ब्रह्म समाज" का गठन हुआ। इन विभाजनों के बावजूद, ब्रह्म समाज ने भारतीय समाज में धार्मिक और सामाजिक सुधारों के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया और आधुनिक भारत के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

स्वामी दयानंद सरस्वती: जीवन परिचय और पृष्ठभूमि

स्वामी दयानंद सरस्वती का जन्म 12 फरवरी, 1824 को गुजरात के टंकारा नामक स्थान पर एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनका मूल नाम मूलशंकर था। उनके पिता करसन जी तिवारी शिव के भक्त थे और वैदिक परंपरा के अनुयायी थे। मूलशंकर की प्रारंभिक शिक्षा संस्कृत, वेद और अन्य धार्मिक ग्रंथों में हुई। मूलशंकर के जीवन में एक महत्वपूर्ण घटना घटी जब वे 14 वर्ष के थे। शिवरात्रि की रात में उन्होंने देखा कि शिवलिंग पर चूहे दौड़ रहे हैं। इस घटना ने उनके मन में मूर्ति पूजा के प्रति संदेह उत्पन्न किया। उन्होंने अपने पिता से इस बारे में प्रश्न किया, परंतु संतोषजनक उत्तर न मिलने पर वे आध्यात्मिक सत्य की खोज में घर छोड़कर चले गए। अपनी आध्यात्मिक यात्रा के दौरान, मूलशंकर ने कई गुरुओं से शिक्षा प्राप्त की और अंततः स्वामी विरजानंद से संस्कृत और वेदों का अध्ययन किया। स्वामी विरजानंद ने उन्हें 'दयानंद' नाम दिया और उनसे वादा लिया कि वे वेदों के प्रचार-प्रसार के लिए अपना जीवन समर्पित करेंगे। स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपने गुरु से वेदों का गहन अध्ययन किया और उनके मूल सिद्धांतों को समझा। उन्होंने महसूस किया कि वर्तमान हिंदू धर्म में कई विकृतियाँ आ चुकी हैं और वेदों के मूल सिद्धांतों को

भुला दिया गया है। इसलिए उन्होंने "वेदों की ओर लौटो" का नारा दिया और वैदिक धर्म के पुनरुत्थान का बीड़ा उठाया।

आर्य समाज की स्थापना और सिद्धांत

स्वामी दयानंद सरस्वती ने 10 अप्रैल, 1875 को मुंबई (तत्कालीन बॉम्बे) में आर्य समाज की स्थापना की। बाद में उन्होंने पंजाब में इसका प्रचार-प्रसार किया, जहाँ यह आंदोलन अधिक सफल रहा। आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य वैदिक धर्म का पुनरुत्थान करना और हिंदू समाज को उसकी मूल वैदिक परंपराओं की ओर लौटाना था।

आर्य समाज के प्रमुख सिद्धांत निम्नलिखित थे:

1. वेदों का प्रामाण्य: आर्य समाज का मुख्य सिद्धांत वेदों का प्रामाण्य था। स्वामी दयानंद सरस्वती के अनुसार, वेद ईश्वर प्रदत्त ज्ञान हैं और वे अपौरुषेय (मनुष्य द्वारा न रचित) हैं। उन्होंने वेदों को सभी ज्ञान का स्रोत माना और उनकी व्याख्या अपने विचारों के अनुरूप की।

2. एकेश्वरवाद: आर्य समाज ने एकेश्वरवाद पर बल दिया और मूर्ति पूजा का विरोध किया। स्वामी दयानंद सरस्वती के अनुसार, ईश्वर एक है और वह निराकार, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी है।

3. कर्मकांड और अंधविश्वासों का विरोध: आर्य समाज ने कर्मकांड, अंधविश्वास, तंत्र-मंत्र, जादू-टोना आदि का विरोध किया और तर्क एवं विवेक पर आधारित धर्म का समर्थन किया।

4. सामाजिक सुधार: आर्य समाज ने सामाजिक सुधारों पर बल दिया और बाल विवाह, सती प्रथा, विधवा विवाह निषेध जैसी कुरीतियों का विरोध किया। उन्होंने स्त्री शिक्षा और जाति प्रथा उन्मूलन का समर्थन किया।

5. शुद्धि आंदोलन: आर्य समाज ने शुद्धि आंदोलन चलाया, जिसके अंतर्गत उन हिंदुओं को पुनः हिंदू धर्म में लाया गया, जो अन्य धर्मों में परिवर्तित हो गए थे।

6. स्वदेशी और स्वराज: आर्य समाज ने स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग और स्वराज (स्वतंत्रता) की भावना को प्रोत्साहित किया। स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपनी पुस्तक "सत्यार्थ प्रकाश" में भारतीय स्वतंत्रता का समर्थन किया।

7. गुरुकुल शिक्षा प्रणाली: आर्य समाज ने प्राचीन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया और इस दिशा में कई गुरुकुलों की स्थापना की।

स्वामी दयानंद सरस्वती ने इन सिद्धांतों को अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "सत्यार्थ प्रकाश" में विस्तार से प्रतिपादित किया, जो आर्य समाज का मूल ग्रंथ माना जाता है।

आर्य समाज का विकास और प्रभाव

स्वामी दयानंद सरस्वती की मृत्यु के बाद भी आर्य समाज का विकास जारी रहा। लाला हंसराज, पंडित गुरुदत्त, लाला लाजपत राय जैसे नेताओं ने आर्य समाज के सिद्धांतों को आगे बढ़ाया। आर्य समाज का प्रभाव विशेष रूप से पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश और राजस्थान में अधिक रहा। आर्य समाज ने शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया। उसने दयानंद एंग्लो-वैदिक (डी.ए.वी.) स्कूलों और कॉलेजों की स्थापना की, जिनका उद्देश्य पाश्चात्य विज्ञान और भारतीय संस्कृति का समन्वय करना था। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की स्थापना भी आर्य समाज की देन थी। आर्य समाज ने हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपनी रचनाएँ संस्कृत और हिंदी में लिखीं और हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित करने का समर्थन किया। आर्य समाज ने राष्ट्रीय आंदोलन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। लाला लाजपत राय जैसे आर्य समाजी नेता स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय रहे। आर्य समाज के स्वदेशी और स्वराज के सिद्धांतों ने राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित किया। आर्य समाज के शुद्धि आंदोलन ने हिंदू धर्म की रक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसने हिंदू धर्म में धर्मांतरित लोगों को पुनः हिंदू धर्म में लाने का प्रयास किया और इस प्रकार हिंदू समाज को संगठित किया।

ब्रह्म समाज और आर्य समाज की तुलना

ब्रह्म समाज और आर्य समाज, दोनों ही 19वीं शताब्दी के धार्मिक सुधार आंदोलन थे, जिनका उद्देश्य हिंदू धर्म को उसके मूल स्वरूप में लौटाना और समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करना था। दोनों ही समाजों

ने एकेश्वरवाद पर बल दिया और मूर्ति पूजा का विरोध किया। दोनों ही समाजों ने सामाजिक सुधारों, जैसे - बाल विवाह, सती प्रथा, विधवा विवाह निषेध आदि का विरोध किया और स्त्री शिक्षा का समर्थन किया।

परंतु इन समानताओं के बावजूद, दोनों समाजों में कई अंतर भी थे:

1. स्थापना और क्षेत्र: ब्रह्म समाज की स्थापना 1828 में बंगाल में हुई थी और इसका प्रभाव मुख्य रूप से बंगाल और पूर्वी भारत तक सीमित रहा। जबकि आर्य समाज की स्थापना 1875 में मुंबई में हुई थी और इसका प्रभाव मुख्य रूप से पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश और राजस्थान में रहा।
2. वेदों के प्रति दृष्टिकोण: ब्रह्म समाज ने वेदों को सम्मान दिया, परंतु उनकी व्याख्या तर्क और विवेक के आधार पर की। उन्होंने उपनिषदों पर विशेष बल दिया। जबकि आर्य समाज ने वेदों को अपौरुषेय और अभ्रांत माना और उन्हें सभी ज्ञान का स्रोत माना।
3. धार्मिक सहिष्णुता: ब्रह्म समाज ने सभी धर्मों के प्रति सम्मान की भावना रखी और एक सार्वभौमिक धर्म की स्थापना का प्रयास किया। जबकि आर्य समाज वैदिक धर्म की श्रेष्ठता पर बल देता था और अन्य धर्मों की आलोचना करता था।
4. पश्चिमी प्रभाव: ब्रह्म समाज पाश्चात्य विचारों और ईसाई धर्म से अधिक प्रभावित था। जबकि आर्य समाज पूर्णतः वैदिक परंपरा पर आधारित था और पश्चिमी प्रभावों का विरोध करता था।
5. शुद्धि आंदोलन: आर्य समाज ने शुद्धि आंदोलन चलाया, जबकि ब्रह्म समाज में ऐसा कोई आंदोलन नहीं था।
6. राष्ट्रीय भावना: आर्य समाज में स्वदेशी और स्वराज की भावना अधिक प्रबल थी और उसने राष्

आत्म मूल्यांकन प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न (MCQs)

1. भक्ति आंदोलन का प्रारंभ भारत के किस भाग से हुआ था?

a) उत्तर भारत

b) पूर्वी भारत

c) दक्षिण भारत

d) पश्चिमी भारत

2. निम्नलिखित में से कौन प्रेममार्गी भक्ति के प्रमुख कवि थे?

a) कबीर

b) तुलसीदास

c) मीराबाई

d) रैदास

3. 'रामचरितमानस' के रचयिता कौन हैं?

a) कबीरदास

b) सूरदास

c) तुलसीदास

d) जायसी

4. सूफी संत अमीर खुसरो किस सूफी सिलसिले से जुड़े थे?

a) चिश्ती

b) काद्रिया

c) नक्शबंदी

d) सुहरावर्दी

5. निर्गुण भक्ति धारा के प्रमुख संत कौन माने जाते हैं?

a) तुलसीदास

b) सूरदास

c) कबीरदास

d) विद्यापति

6. मीराबाई किस देवता की उपासक थीं?

a) राम

b) शिव

c) कृष्ण

d) गणेश

7. भारतीय पुनर्जागरण के प्रमुख नेता कौन थे?

a) महात्मा गांधी

b) जवाहरलाल नेहरू

c) राजा राममोहन राय

d) भगत सिंह

8. स्वामी विवेकानंद किसके शिष्य थे?

a) रामकृष्ण परमहंस

b) स्वामी दयानंद

c) रामानुजाचार्य

d) शंकराचार्य

9. आर्य समाज की स्थापना किसने की थी?

a) स्वामी विवेकानंद

b) स्वामी दयानंद सरस्वती

c) राजा राममोहन राय

d) रवींद्रनाथ टैगोर

10. "सत्यार्थ प्रकाश" ग्रंथ के लेखक कौन हैं?

a) स्वामी विवेकानंद

b) स्वामी दयानंद सरस्वती

c) महात्मा गांधी

d) रवींद्रनाथ टैगोर

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भक्ति आंदोलन के प्रमुख कारणों और उद्देश्यों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
2. ज्ञान मार्ग और प्रेम मार्ग में क्या अंतर है? संक्षेप में समझाइए।
3. सूफी मत के मूल सिद्धांतों और भारतीय समाज पर इसके प्रभाव को संक्षिप्त रूप से बताइए।
4. तुलसीदास के समन्वयवादी दृष्टिकोण पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
5. कबीर के दर्शन की मुख्य विशेषताओं का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
6. मीराबाई की भक्ति भावना की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
7. भारतीय पुनर्जागरण का अर्थ और महत्व स्पष्ट कीजिए।
8. राजा राममोहन राय के समाज सुधार कार्यों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
9. स्वामी विवेकानंद के दार्शनिक विचारों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
10. आधुनिक भारत के निर्माण में दार्शनिक चिंतन की भूमिका पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भक्ति आंदोलन के उद्भव, विकास और प्रभाव का विस्तृत विश्लेषण कीजिए। इसके सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. ज्ञान मार्ग, प्रेम मार्ग और सूफीवाद के सिद्धांतों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कीजिए। इन तीनों धाराओं के बीच समानताएँ और अंतर स्पष्ट कीजिए।
3. मध्यकालीन भारत में सूफी आंदोलन के योगदान का विस्तृत विवेचन कीजिए। हिंदू-मुस्लिम एकता की स्थापना में इसकी भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।
4. तुलसीदास के दार्शनिक और धार्मिक विचारों का विस्तृत विश्लेषण कीजिए। रामचरितमानस के माध्यम से उन्होंने किस प्रकार अपने दार्शनिक विचारों को प्रस्तुत किया?

5. कबीर के समाज सुधारक और दार्शनिक रूप का विस्तृत मूल्यांकन कीजिए। वर्तमान समय में उनके विचारों की प्रासंगिकता पर प्रकाश डालिए।

6. मीराबाई की भक्ति साधना और उनके काव्य में अभिव्यक्त दार्शनिक तत्वों का विश्लेषण कीजिए। स्त्री सशक्तिकरण के संदर्भ में उनके योगदान का मूल्यांकन कीजिए।

7. भारतीय पुनर्जागरण के कारणों, विशेषताओं और प्रभावों पर विस्तार से चर्चा कीजिए। आधुनिक भारत के निर्माण में इसकी भूमिका का विश्लेषण कीजिए।

8. "19वीं शताब्दी का भारतीय पुनर्जागरण मूलतः पश्चिमी प्रभाव का परिणाम था।" इस कथन का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

9. आधुनिक भारतीय दर्शन के विकास में स्वामी विवेकानंद के योगदान का विस्तृत विवेचन कीजिए। वैश्विक स्तर पर भारतीय दर्शन के प्रचार-प्रसार में उनकी भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।

10. "भारतीय पुनर्जागरण एक ऐसा आंदोलन था जिसमें प्राचीन मूल्यों और आधुनिक विचारों का समन्वय किया गया।" इस कथन की विस्तृत व्याख्या कीजिए। भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में इसके प्रभाव का विश्लेषण कीजिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. **शर्मा, चन्द्रधर – भारतीय दर्शन का इतिहास**

2. **राधाकृष्णन, एस. – भारतीय दर्शन (भाग** 1 **एवं** 2)

3. **दयाकृष्ण – भारतीय दर्शन की पुनर्व्याख्या**

4. **टी.एम.पी. महादेवन** – Introduction to Indian Philosophy

5. **हजारीप्रसाद द्विवेदी – भारतीय संस्कृति के आधार**

6. **सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त** – A History of Indian Philosophy

7. **स्वामी हरिहरानंद** – Indian Philosophy and Spirituality

8. **अनामिका प्रियदर्शिनी – भारतीय ज्ञान परंपरा और शिक्षा दर्शन**

9. **गोविंद चन्द्र पांडेय – भारतीय संस्कृति और समकालीन चिंतन**

10. **के.सी. भट्टाचार्य** – Studies in Indian Philosophy

11. **नागार्जुन – माध्यमिक कारिका (टीका सहित)**

12. **बृहदारण्यक उपनिषद् (शंकर भाष्य सहित)**

13. **गीता प्रेस – भगवद्गीता (शंकर भाष्य सहित)**

14. **पं. श्रीराम शर्मा आचार्य – वैदिक ज्ञान और विज्ञान**

15. **विनयकांत वर्मा – भारतीय ज्ञान परंपरा : एक समग्र दृष्टि**

MATS UNIVERSITY

MATS CENTER FOR OPEN & DISTANCE EDUCATION

UNIVERSITY CAMPUS : Aarang Kharora Highway, Aarang, Raipur, CG, 493 441

RAIPUR CAMPUS: MATS Tower, Pandri, Raipur, CG, 492 002

T : 0771 4078994, 95, 96, 98 M : 9109951184, 9755199381 Toll Free : 1800 123 819999

eMail : admissions@matsuniversity.ac.in Website : www.matsodl.com